श्री विश्वतारक रत्नत्रयी विद्या राजितं

त्रिवर्षीय जैनिज़म कोर्स

खण्ड–2

- खण्ड–9
- खण्ड–8
- खण्ड–7
- खण्ड–6
- खण्ड–5
- खण्ड–4
- खण्ड–3
- खण्ड–2
- खण्ड–1

लेखिका–सा. मणिप्रभा श्री

WELCOME to the world of JAINISM

श्री विश्वतारक रत्नत्रयी विद्या राजितं

त्रिवर्षीय जैनिज़म कोर्स

आशीर्वाद दाता - प.पू. राष्ट्रसंत शिरोमणि गच्छाधिपति वर्तमानाचार्य देवेश

श्रीमद्विजय हेमेन्द्रसूरीश्वरजी म.सा.

लेखिका-सा. मणिप्रभा श्री

जिसमें आनंद है, पर संक्लेश नहीं... जिसमें मस्ती है, पर परवशता नहीं... जिसमें प्रसन्नता है, पर पाप नहीं... जिसमें सुख है, पर लाचारी नहीं... जिसमें ताजगी है, पर गुलामी नहीं...

आज की शिक्षा प्रणाली ने विद्यार्थियों की शिक्षा के महल तो बड़ें, ऊँचे और भव्य बना दिए, लेकिन उनमें संस्कारों की सीढ़ियों का नितांत अभाव है। सीढ़ियों के बिना महल के ऊपर की मंजिले व्यर्थ है। उन सीढ़ियों को बनाने का एक मात्र आधार है जैनिज़म कोर्स ... ऐसे कई छोटे-छोटे गाँव है जहाँ कोई साधु-साध्वी नहीं पहुँच पाते अथवा चातुर्मास नहीं होते। भारत भर के ऐसे छोटे बड़े सभी गाँव में इसका प्रचार कर घर-घर में घट-घट में सम्यक्त्व का दीप जलाकर मोक्षाभिमुख करना, अनंत-आनंद का सच्चा मार्ग-दर्शन देना।

JAINISM HOLD THE KEY TO SUCCESS

जैनिज़म की प्रत्येक पुस्तक में निम्न Five Chapter है :-

क्या आप अपने जीवन को परमात्मा के बताये हुए मार्गानुसारी शुद्ध क्रिया द्वारा प्रोज्ज्वल करना चाहते हो... ???

तो देखिए First Chapter **क्रिया शुद्धि।**

क्या आप अपने जीवन को स्वर्ग जैसा सुंदर बनाकर मैत्री सरोवर में झूमना चाहते हो ... ???

तो अपने जीवन में उतारिये Second Chapter **सुखी परिवार की चाबी।**

क्या आप गणधर रचित सूत्र-अर्थ द्वारा अपने कर्म मल धोकर प्रभु भक्ति से आत्म-शुद्धि करना चाहते हो... ???

तो कंठस्थ कीजिए Third Chapter **सूत्र-अर्थ एवं काव्य विभाग**

क्या आप महापुरुषों के पद्चिन्हों पर चलकर महापुरुष की तरह अमर बनना चाहते हो... ???

तो पढ़िये Fourth Chapter **आदर्श जीवन चरित्र।**

क्या आप जीव-विचार, नव-तत्त्व, कर्मग्रन्थादि गहन तत्त्वों को बातों-बातों में सीख लेना चाहते हो... ???

तो सीखिए Fifth Chapter **तत्त्वज्ञान।**

प्र. २६८२

।। श्री मोहनखेड़ा तीर्थ मण्डन आदिनाथाय नमः।।
।। श्री राजेन्द्र-धनचन्द्र-भूपेन्द्र-यतीन्द्र-विद्याचन्द्र सूरि गुरुभ्यो नमः।।

श्री विश्वतारक रत्नत्रयी विद्या राजितं

त्रिवर्षिय जैनिज़म कोर्स खण्ड 2

: आशीर्वाद दाता :

प.पू. राष्ट्रसंत शिरोमणि गच्छाधिपति वर्तमानाचार्य देवेश

श्रीमद्विजय हेमेन्द्रसूरीश्वरजी म.सा.

स्व. महत्तरिका पू.सा. **श्री ललितश्रीजी म.सा.**

स्व. प्रवर्तिनी पू.सा. **श्री मुक्तिश्रीजी म.सा.**

पू. वात्सल्य वारिधि सेवाभावी सा. **श्री संघवणश्रीजी म.सा.**

: लेखिका :

सा. मणिप्रभाश्री

: प्रोत्साहक :

कुमारपाल वी. शाह

प्रकाशक :

श्री आदिनाथ राजेन्द्र जैन श्वे. पेढ़ी

श्री मोहनखेड़ा तीर्थ, राजगढ़ (धार) म.प्र.

इस पुस्तक का सर्वाधिकार लेखक एवं प्रकाशक के अधीन है।

प्रकाशन वर्ष : सं. 2068

प्रथम आवृत्ति : 3000 प्रतियाँ

मूल्य : 60/- रु.

प्रकाशक : श्री मोहनखेड़ा तीर्थ

आधार ग्रन्थ

* श्राद्ध विधि
* धर्म संग्रह
* आहार शुद्धि ग्रंथ
* डायनींग टेबल
* गणधर रचित आवश्यक सूत्र
* कल्पसूत्र बालावबोध
* श्रीपाल रास
* बृहत्संग्रहणी
* लोकप्रकाश
* नवतत्त्व
* कर्मग्रन्थ

चित्र निम्न पुस्तक से साभार लिए गये है-

* बालपोथी
* दो प्रतिक्रमण सूत्र आल्बम
* कल्पसूत्र
* पाप की मजा नरक की सजा

इस पुस्तक का सर्वाधिकार लेखक एवं प्रकाशक के अधीन है।

: मुख्य कार्यालय :

श्री विश्वतारक रत्नत्रयी विद्या राजितं समिति

20/21 साई बाबा शॉपींग सेंटर

के.के. मार्ग, नवजीवन पोस्ट ऑफिस के सामने, मुंबई सेंट्रल

मुंबई -8 (महाराष्ट्र) फोन : **022 65500387**

मुद्रक: ***कंचन ग्राफिक्स*** - राजगढ़ (मोहनखेड़ा) म.प्र.

मो. 09893005032, 09926277871

।। श्री शंखेश्वर पार्श्वनाथाय नमः।।

तव चरणं शरणं मम

जिनकी कृपा, करुणा, आशिष, वरदान एवं वात्सल्य धारा इस कोर्स पर सतत बरस रही है। जिनके पुण्य प्रभाव से यह कोर्स प्रभावित है, ऐसे विश्व मंगल के मूलाधार प्राणेश्वर, हृदयेश्वर, सर्वेश्वर श्री शंखेश्वर पार्श्वनाथ प्रभु के चरणों में .....

जिनकी क्षायिक प्रीति भक्ति ने इस कोर्स को प्रभु से अभेद बनाया है, ऐसे सिद्धगिरि मंडन ऋषभदेव भगवान के चरणों में....

इस कोर्स को पढ़कर निर्मल आराधना कर आने वाले भव में महाविदेह क्षेत्र में जिनके पास जाकर चारित्र ग्रहण कर मोक्ष को प्राप्त करना है, ऐसे मोक्ष दातारी सीमंधर स्वामी के चरणों में ....

जिनकी अनंत लब्धि से यह कोर्स मोक्षदायी लब्धि सम्पन्न बना है ऐसे परम श्रद्धेय समर्पण के सागर गौतम स्वामी के चरणों में....

जो समवसरण में प्रभु मुख कमल में बिराजित है, जो जिनवाणी के रूप में प्रकाशित बनती है, जो सर्व अक्षर, सर्व वर्ण एवं स्वर माला की भगवती माता है, जो इस कोर्स के प्रत्येक अक्षर को सम्यग् ज्ञान में परिणमन कर रही है ऐसी तीर्थेश्वरी सिद्धेश्वरी माता के चरण कमलों में .....

शताब्दि वर्ष में जिनकी अपार कृपा से जिनके सानिध्य में इस कोर्स रचना के सुंदर मनोरथ पैदा हुए एवं जिनके अविरत आशिष से इस कोर्स का निर्माण हुआ। जो जन-जन के आस्था के केन्द्र है, जो इस कोर्स को विश्व व्यापी बना रहे हैं। जो पू.धनचन्द्रसूरि, पू.भूपेन्द्रसूरि, पू.यतीन्द्रसूरि, पू.विद्याचन्द्रसूरि आदि परिवार से शोभित है ऐसे समर्पित परिवार के तात विश्व पूज्य प्रातः स्मरणीय पू. दादा गुरुदेव राजेन्द्र सूरीश्वरजी म.सा. के चरण कमलों में.....

जिनकी कृपावारि से सतत मुझे इस कोर्स के लिए प्रोत्साहित किया ऐसे वर्तमान आचार्यदेवेश श्रीमद् विजय हेमेन्द्र सूरीश्वरजी म.सा., पू. गुरुणीजी विद्याश्रीजी म.सा, पू. प्रवर्तिनी मानश्रीजी म.सा., पू. महत्तरिका ललितश्रीजी म.सा., पू प्रवर्तिनी मुक्ति श्रीजी म.सा., सेवाभावी गुरुमैय्या संघवणश्रीजी म.सा. के चरण कमलों में....

इस कोर्स का प्रत्येक खंड, प्रत्येक चेप्टर, प्रत्येक अक्षर आपका आपश्री के चरणों में

सादर समर्पणम्

सा. मणिप्रभाश्री
5/4/2010, सोमवार
भीनमाल

अनुक्रमणिका

जैन इतिहास

मेरे सर्वस्व मेरे प्रभु 1
भाई हो तो ऐसा 1
प्रभु भक्ति की होड़ 4
बाप से बेटा सवाया 5
मंत्रीश्वर पेथड़शाह 7
भक्ति से मिला तीर्थंकर पद 10
सम्राट सिद्धराज और दंडनायक साजन 10
भीलनी भाव से भजे भगवान! 12
प्रभु भक्त जगड़ 12
आरस या वारस 13
भीमा कुंडलिया 14
सती सुलसा 17
बाहड़ मंत्री 19
संप्रति महाराजा 21

तत्त्वज्ञान

चौदह राजलोक 23
अधोलोक 23
नरक में कौन जाते है? 24
परमाधामी देव 25
प्रथम नरक पृथ्वी 28
मेरु पर्वत 30
ज्योतिष चक्र 31
उर्ध्वलोक 32
देवलोक संबंधी विशेष विचारणा 36
कौन से जीव कौन से देवलोक तक जा सकते है? 36
देव मरकर कहाँ तक जा सकते है? 37

जैनाचार

धर्म क्रिया कैसे करे? 41
प्रत्येक क्रिया के प्राणिधान 41
सामायिक 44
सामायिक के उपकरण 45

सामायिक से लाभ 48
सामायिक लेने के हेतु 48
सामायिक पारने के हेतु 50
सामायिक मंडल 51
सीमंधर स्वामी के पास हमें जाना है 55
प्रभु के विहार का रोमांचक दृश्य 59
समवसरण रचना 61
श्री सीमंधर स्वामी भक्ति गीत 63

रिश्तों में मधुरता

प्रेम का नशा जिंदगी में सजा 65
ज़हर बना अमृत 76

सूत्र एवं अर्थ विभाग

मुझे पढ़कर ही आगे बढ़े 99
पुक्खरवर दीवड्ढे सूत्र (श्रुतस्तव) 100
सिद्धाणं बुद्धाणं सूत्र 101
वेयावच्चगराणं सूत्र 102
भगवानहं सूत्र 102
सव्वस्सवि सूत्र 102
देवसियं आलोउं सूत्र 103
नाणंमि सूत्र 104
वांदणा (बृहद् गुरुवन्दन) सूत्र 105
सात लाख सूत्र 107
पहले प्राणातिपात (18 पापस्थानक) सूत्र 108
मुद्राओं की विशेष समझ एवं उपयोग 110
मुँहपत्ति पडिलेहण करने की मुद्रा 111

जैन इतिहास

नेमिनाथ प्रभु का चरित्र 115
काम विजेता स्थूलिभद्र 119
रुपसेन और सुनंदा 130

तत्त्वज्ञान

तिर्च्छालोक - जम्बूद्वीप 139
जम्बूद्वीप के मुख्य पदार्थ 143
महाविदेह क्षेत्र 148
जम्बूद्वीप के 635 शाश्वत जिन चैत्य 152
कब क्या कहना? 157
शास्त्रानुसार अंगुल के तीन प्रकार 158

ओपनबुक एक्जाम

प्रश्नपत्र 159
उत्तर पत्र 165

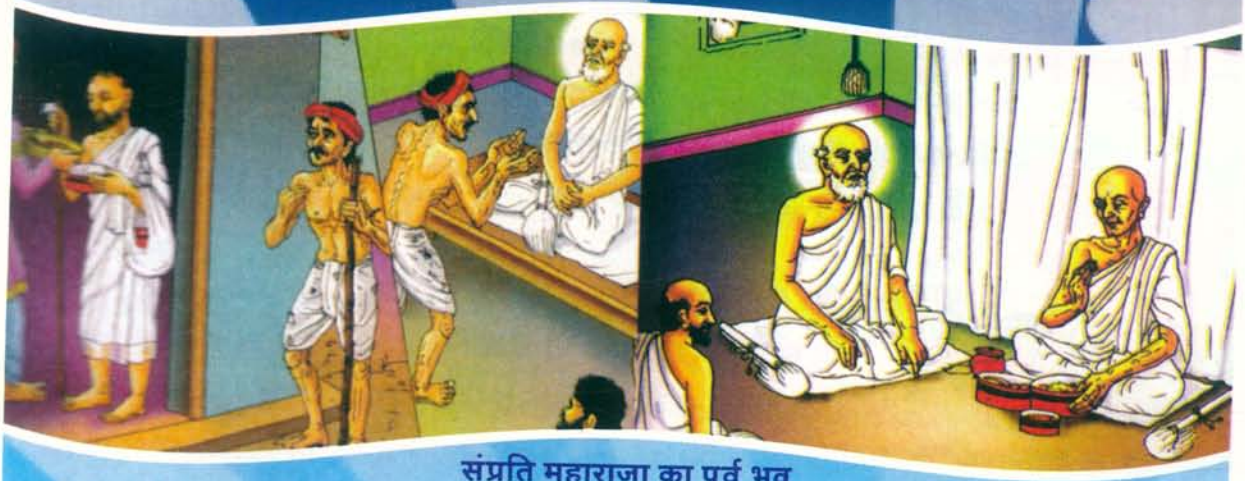

संप्रति महाराजा का पूर्व भव

जैन इतिहास

(मुझे पढ़कर तुम भी मेरे पथ पर चलना)

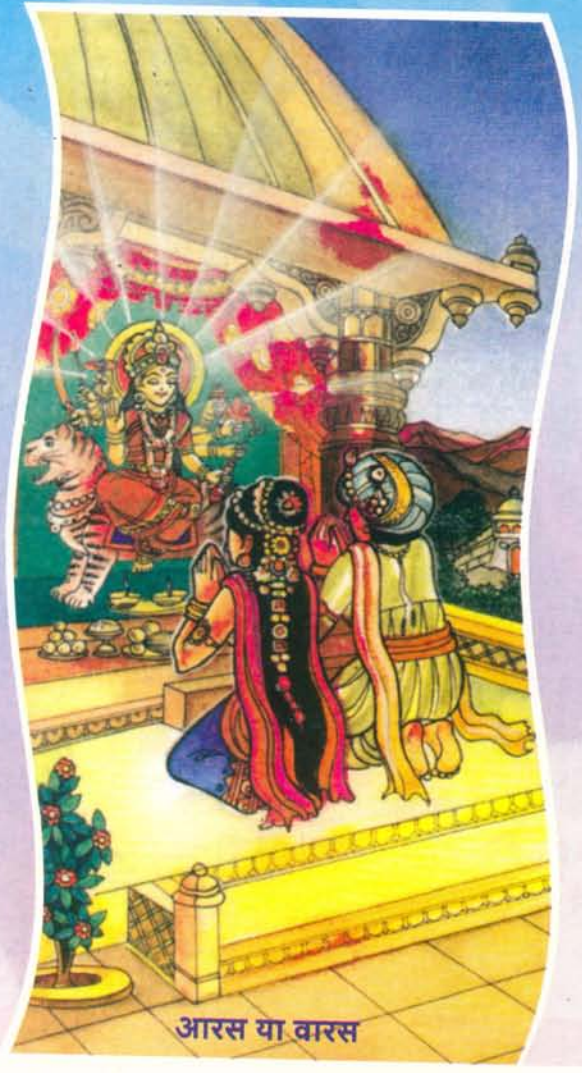

आरस या वारस

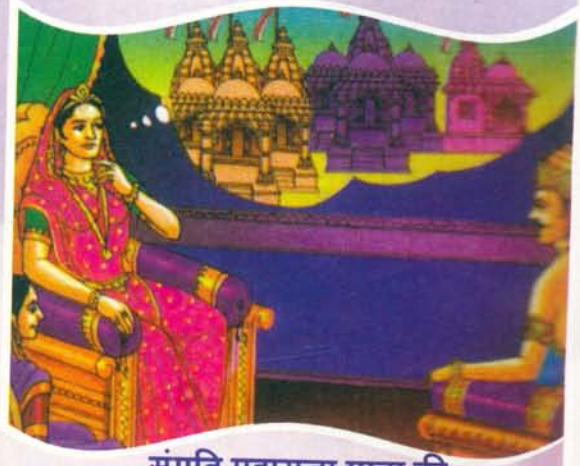

संप्रति महाराजा माता की
प्रेरणा से जिनालय निर्माण

क्षायिक प्रीति भक्ति एवं विश्वमंगल का अनमोल नजराना - पद्मनंदी

सुबह उठते ही जिनके मुख से सर्वे जीवों मोक्षे जाओ ये शब्द निकलते है वो है पद्मनंदी। प्रभु की प्रीति भक्ति जिनके जीवन में बचपन से ही थी। प्रभु की प्रीत से जीवन भी प्रभु के चरणों में समर्पित करने हेतु दीक्षा लेने की भावना हो गई थी लेकिन संयोग ऐसे बने कि माता-पिता की वृद्धावस्था एवं सेवा के कारण संयम मार्ग पर अग्रसर न बन सके। अत: आजीवन ब्रह्मचर्य का व्रत लेकर अपना जीवन प्रभु-भक्ति में समर्पित कर दिया। 15 वर्ष की उम्र से प्रतिदिन 6 घंटे प्रभु के साथ व्यतीत करने लगे। प्रभु प्रीत में से प्रभु के अभिषेक में इन्हें आनंद की अनुभूति होने लगी। पूर्व भव के कल्याणकों की साधना इस भव में उदय में आई हो इस तरह प्रभु की अभिषेक धारा विश्वमंगल में परिणमने लगी। पद्मनंदी का यह अभिषेक बाह्य न होकर चौद राजलोक के जीवों को मोक्ष में ले जाने की एक विशिष्ट प्रक्रिया रूप बन गया। इसका प्रमाण है इनके स्तवन।

उनकी दिनचर्या पर नज़र करे तो सुबह का नाश्ता मात्र 5 मिनिट में फिर प्रात: 8 बजे से 2 बजे तक प्रभु के अभिषेक के साथ कभी प्रभु के पंचकल्याणक की भावधारा चलती है, तो कभी गुणों को नमस्कार की भावधारा, कभी क्षपक श्रेणी, वीतरागता, केवलज्ञान के आनंद वंदन के भावों में, तो कभी सर्वे जीवों मोक्षे जाओ की विश्वमंगल धारा में मग्न बन जाते है। दोपहर का चाय-नाश्ता 5 मिनिट में निपटाकर प्रभु के स्तवन बनाते है या प्रभु प्रीति की प्यासी आत्माएँ इनके पास प्रभु महिमा सुनने आए तो उनके साथ प्रभु के स्वरुप दर्शन में ओत-प्रोत बन जाते है।

शाम का भोजन 15-20 मिनिट में पूर्ण कर 6 से 8.30 बजे तक प्रभु भक्ति में लीन बन जाते है। इस प्रकार दिन में प्रभु के प्रति अहोभाव धारा से विश्व मंगल धारा चलती है। जब सो जाते है तब प्रभु के प्रीत की संवेदना में योग निद्रा में लीन बनते है। इस तरह शरीर संबंधी एवं व्यवहार संबंधी सारे कार्य शीघ्र पूर्ण कर अपनी भक्ति में सदा अप्रमत्त बने रहते है।

प्रेम, उदारता, कारुण्य आदि गुण जिनके रोम रोम में ठाँस-ठाँस कर भरे हुए है। जब पालीताणा जाते है तब डोली करने के बाद यदि कोई दूसरा डोली वाला आ जाए तो उसे अपने चप्पल पकड़ने के लिए देकर उसे भी अपने साथ ले जाते है। आए हुए व्यक्ति को निराश नहीं करना, हर व्यक्ति को संतोष देना इनके जीवन का मूल मंत्र है।

- सा. मणिप्रभाश्री

मेरे सर्वस्व मेरे प्रभु

परमात्मा के लिए अपना सर्वस्व अर्पण करने में जिन्होंने कुछ भी कमी नहीं रखी, ऐसे महापुरुषों के जीवन संबंधित कुछ दृष्टांत यहाँ दिए गए है। इन दृष्टांतों को यदि स्थिरता पूर्वक पढ़ेंगे तो उन महापुरुषों के दिल की यह आवाज़ सुनाई देगी।

'' हे मेरे सर्वस्व मेरे प्रिय प्रभु! इस विशाल सचराचर सृष्टि में कितनी ही अद्‌भुत वस्तुएँ, संपत्ति समृद्धि भरी हुई है। फिर भी अखिल विश्व में इस हृदय ने प्रभु आपकी पसंदगी की है। आप मुझे बहुत ही प्रिय हो। मैं आपको बहुत ही प्रेम करता हूँ और आपको प्रेम करने में मैं अवर्णनीय आनंद एवं परमशांति का अनुभव करता हूँ। मेरे जीवन का एक क्षण भी शासन के काम आ जाए तो मैं उसे अपना परम सौभाग्य मानूँगा। ''हे प्रभु! आपकी सेवा, यही मेरा अहोभाग्य है, यही मेरा अतिशय पुण्य है''

इन महापुरुषों की भावना जानकर अब हम भी इनके मार्ग पर चलकर अपना जीवन उज्जवल बनाये।

भाई हो तो ऐसा...

एक पिता के चार पुत्रों में से दो छोटे पुत्रों का नाम तो सारी दुनिया जानती है। परंतु बड़े पुत्र के नाम से तो करीब-करीब सभी अपरिचित ही है। उसमें से सबसे बड़े पुत्र का नाम लुणिग, दूसरा मालदेव, तीसरा वस्तुपाल, एवं चौथा तेजपाल था। कुछ ही दिनों के बाद अपने चारों पुत्रों को छोड़कर पिता सेठ आसराज स्वर्ग सिधारे। उनकी विदाई होने के साथ-साथ लक्ष्मी ने भी घर से विदाई ले ली। लुणिग बिमारी की चपेट में आ गया और उसका शरीर बुखार से तपने लगा। रोग-शय्या पर पड़े लुणिग की सेवा में तीनों भाई दिन-रात हाज़िर रहते। जंगल में से जड़ी-बूटी और औषधि लाकर उसका काढ़ा बनाकर भाई को पिलाते, परंतु सारे उपाय निष्फल गए। दिन प्रतिदिन उसका शरीर क्षीण होता गया। एक दिन उसकी नब्ज धीमी पड़ने लगी। जीवन-दीप बुझने लगा। उसी समय अचानक उसकी आँखों से आँसू बहने लगे।

भाई की आँखों में आँसू देखकर वस्तुपाल ने पूछा - बड़े भैया ! क्या हुआ?

वस्तुपाल - आपकी आँखों में आँसू? (लुणिग मौन रहा।) '' क्या मौत से डर लग रहा है?''

लुणिग - नहीं।

वस्तुपाल - तो फिर यह आँसू किसलिए?

लुणिग - भाई ! वर्षों से मेरे मन में रही भावना को मैं सफल न बना सका और ना ही भावी में बना सकूँगा।

वस्तुपाल - भैया ! कैसी भावना?

लुणिग - ''आजीविका के लिए जिंदगी के कई वर्षों तक मैं गामो-गाम भटकता रहा हूँ। मैं जहाँ भी गया वहाँ

के जिनमंदिर में जाकर दर्शन-वंदन-पूजन द्वारा मैंने अखूट पुण्य का उपार्जन किया। वर्तमान जीवन के इस पापोदय के बीच भी पुण्यबंध के निमित्त देकर कितने ही मंदिर बंधाने वाले नामी-अनामी आत्माओं के भार के नीचे मैं दबा हुआ हूँ। इससे मेरे मन में एक ऐसी भावना पैदा हुई कि, मैं भी ऐसा एक जिनमंदिर बनवाऊँ। जिसमें अनेक आत्माएँ उत्कृष्ट पुण्योपार्जन कर अपने भविष्य को उज्जवल बनाये। संक्षिप्त में अनेक आत्मा मेरे पुण्य बंध में सहायक बनी है तो अनेक आत्माओं के पुण्यबंध में मैं भी सहायक क्यों न बनूँ ? लेकिन आर्थिक स्थिति कभी सुधरी ही नहीं, अत: यह भावना मेरे मन में ही रह गई। इस समय मेरी आँखों में ये आँसू ना ही मौत के डर के है और ना ही किसी दु:ख के है। अपने शुभ भावों को मैं सफल नहीं बना सका और भविष्य में भी सफल नहीं बना पाऊँगा। इस दु:ख के है यह आँसू।'' कहते-कहते लुणिग जोर से रो पड़ा। उसके शब्द आँखों में से अश्रु बनकर बहने लगे।

लुणिग के रोने का कारण जानकर उनके भाईयों की आँखों से भी अश्रुधारा बहने लगी। कुछ ही समय में स्वस्थ हो कर उन्होंने अपने आँसू पोंछ लिए। वस्तुपाल भाई की मनोदशा पहचान गए। आँखों में अश्रु, रूंधता हुआ स्वर, धीमी पड़ती हुई नाड़ी और टूटती हुई साँसे देखकर वस्तुपाल ने नज़दीक में रहे हुए पानी के घड़े में से थोड़ा पानी अपनी हथेली में लेकर लुणिग के समक्ष प्रतिज्ञा पूर्वक कहा कि- ''भैया ! आज चाहे हमारे दिन अच्छे नहीं है, आर्थिक स्थिति ठीक नहीं है, परंतु देव-गुरु पर विश्वास रखकर आपके समक्ष हाथ में पानी लेकर मैं आपको वचन देता हूँ कि आपके नाम से आपका भाई आबू की धरती पर भव्य जिनालय बनवाकर ही रहेगा। मुझे चाहे मजदूर बनकर सिर पर मिट्टी के तगारे क्यों न उठाने पड़े ? जो भी करना पड़े वह करुँगा, परंतु आपकी मनोकामना पूरी करके ही रहूँगा।'' शतपत्र कमल की तरह लुणिग के नेत्र पुलकित हो गए। लुणिग ने कहा - ''भाई! तेरी भावना की हार्दिक अनुमोदना करता हूँ।''

''अरिहंते सरणं पवज्जामि '' यह बोलते हुए लुणिग ने अपने प्राण छोड़ दिए। भाई रोने लगे। लुणिग के बिना उन्हें घर सूना-सूना लगने लगा। अन्तिम संस्कार की विधि निपटाकर सब घर लौटे। भाई को दिया गया वचन किस प्रकार जल्द से जल्द पूरा किया जा सके, उसकी योजना सबके मन में बनने लगी।

प्रभु के मन्दिर निर्माण की भावना क्षण-क्षण अशुभ कर्मों की निर्जरा एवं पुण्य का बंध करने वाली है। इस मन्दिर-मूर्ति निर्माण की भावना ने उनके भाग्य को ही पलट दिया। देखते ही देखते निर्धन गिने जाने वाले वस्तुपाल-तेजपाल धोलका नरेश के मंत्रीश्वर पद पर आसीन हुए। लक्ष्मीजी भी अपनी कृपा बरसाने लगी। एक दिन वस्तुपाल धन गाढ़ने के लिए खड्डा खोद रहे थे, तब उसमें से नया धन प्राप्त हुआ। आगे जाकर फिर दूसरी बार खड्डा खोदा तब पुन: एक सोने का चरू (घड़ा) मिला। थोड़े आगे जाकर तीसरी बार फिर से खड्डा खोदा तब पुन: धन मिला।

इस प्रकार धन गाढ़ने के लिए बार-बार खड्डा खोदते देखकर अनुपमा ने कहा-यदि ऐसे ही धन को नीचे गाढ़ोगे तो हमें भी नीचे दुर्गति में जाना पड़ेगा। यदि धन को ऊपर लगाया जाये तो हम भी ऊपर सद्गति में जायेंगे। वस्तुपाल ने कहा-भाभी! मैं आपका तात्पर्य समझा नहीं। आप क्या कहना चाहती हो? धन को ऊपर कहाँ लगाया जाए? अनुपमा ने कहा-याद कीजिए अपने भाई को दी हुई प्रतिज्ञा को। अर्थात् इस धन से आबू पर विशाल मन्दिर बनाया जाए।

अनुपमा की बात सुनकर वस्तुपाल-तेजपाल ने आबू पर मंदिर बनवाने का कार्य शुरु करवाया। उस समय अत्यधिक ठंडी होने से कारीगरों के हाथ एकदम ठंड़े हो जाते थे, अत: वस्तुपाल ने अंगीठियों (सगड़ियों) की व्यवस्था करवाई। शिल्पकार शोभनराज ने अपने 1500 कारीगरों को काम पर लगाया। प्रत्येक कारीगर के पीछे एक आदमी सेवा करने वाला और एक आदमी दीपक पकड़ कर खड़ा रहे, ऐसी व्यवस्था की गई। तीन वर्ष तक दिन-रात सतत काम चला। देखते ही देखते मंदिर का कार्य पूर्ण हो गया। वस्तुपाल-तेजपाल ने मंदिर का कार्य देखकर कारीगरों से कहा -'' मंदिर में जो नक्काशी की है उसमें से जितना संगमरमर का चूर्ण निकालोंगे उसके वज़न जितनी चाँदी तोलकर दी जायेगी।'' यह घोषणा होते ही जोरदार हथौड़ियों की ध्वनि गूंजने लगी। अल्प समय में काम पूर्ण हो गया। दोनों भाईयों ने घोषणानुसार कारीगरों को चूर्ण के वजन जितनी चाँदी ईनाम में दी।

पुन: निरीक्षण करने पर दोनों भाईयों ने सोचा इसमें से और भी कुछ निकल सकता है, अत: उन्होंने फिर कारीगरों से कहा- ''अब इस नक्काशी से जितना चूर्ण निकालोंगे उसके वज़न जितना सोना तोलकर दिया जायेगा'' कारीगरों ने नक्काशी को और बारीक करने का कार्य शुरु किया।

कार्य पूर्ण होने पर घोषणानुसार ईनाम दिया गया तथा पुन: घोषणा की-'अब इस नक्काशी से जितना चूर्ण निकालोंगे उसके वज़न जितने मोती तोलकर दिये जायेंगे।' कारीगर पुन: लगन व मेहनत से कार्य में जुट गये।

कार्य पूर्ण होने पर दोनों भाइयों ने घोषणानुसार ईनाम दिया तथा फिर कहा - ''इससे भी बारीक नक्काशी करोंगे और जितना चूर्ण निकालोंगे उसके अनुसार आपको रत्न तोलकर दिए जायेंगे।''

तब कारीगरों ने कहा-''सेठजी यदि आप अभी रत्न तो क्या रत्न की माला भी दे दे तो भी हम इस नक्काशी से कुछ भी नहीं निकाल सकते। '' इस प्रकार उस समय में कुल 12 करोड़ 53 लाख सोना मोहरें व्यय कर वस्तुपाल-तेजपाल ने अति उल्लास के साथ भव्य मंदिर का निर्माण करवाया । बड़े भाई की स्मृति में मंदिर का नाम रखा गया 'लुणिग वसही'। आज सात सौ वर्ष बीत जाने के बाद भी वह जिनालय मजबूती से खड़ा है। जिसकी शिल्प कलाकृतियों की भव्यता की मिसाल दुनिया में नहीं मिलेगी। उसके आगे तो

अजंता, एल्लोरा या कोणार्क की शिल्प कलाकृतियों को भी लज्जित होना पड़ता है। मंत्रीश्वर वस्तुपाल-तेजपाल ने अपने जीवन काल में कुल 5000 जिनालयों का निर्माण करवाया एवं सवा लाख जिनबिंब भरवायें।

एक भाई वह था जिसने मृत्यु की शय्या पर लेटे हुए भी अपनी अंतिम इच्छा के रूप में जिन मंदिर बनवाने की भावना प्रगट की और एक भाई वह था जिसने अपने भाई की इच्छा को पूर्ण करने के लिए अपने दिन-रात एक कर दिए। दोनों भाइयों के मन की शुभ भावना को देखकर मन कह उठता है कि '' भाई हो तो ऐसा''।

प्रभु भक्ति की होड़

महामात्य वस्तुपाल एवं तेजपाल की बंधु-जोड़ी ने अपनी धर्मपत्नी ललितादेवी तथा अनुपमादेवी के साथ सात लाख यात्रिकों सहित गिरनारजी का छःरी पालित संघ निकाला। कुछ दिनों में श्रीसंघ आबालब्रह्मचारी देवाधिदेव श्री नेमिनाथ प्रभु के चरणारविंद में पहुँच गया।

प्रवेश के दिन महादेवी अनुपमा के शरीर पर कुल बत्तीस लाख सोना मोहरों के आभूषण शोभित हो रहे थे। जिनपूजा करते-करते अनुपमा के हृदय में प्रभु के प्रति ऐसे भाव आये कि मैं मेरे सर्वालंकार प्रभु के चरणों में चढ़ा दूँ। उसने एक साथ सर्व अलंकार उतारकर जल से शुद्ध कर प्रभु के चरणों में रख दिए। उसी वक्त एक करोड़ पुष्पों से परमात्मा की पूजा करके बाहर निकले हुए तेजपाल ने अनुपमा की भक्ति से खुश होकर बत्तीस लाख सोना मोहर खर्च कर अनुपमा को सर्व आभूषण नये बनवाकर देने का वचन दिया। अल्प समय में ही उसे सर्व अलंकार बनवाकर दिये। एकदम निरालंकार बनी हुई अनुपमा देवी पुनः सालंकार बनकर शोभित होने लगी।

गिरनार की यात्रा पूर्ण कर सब युगादिदेव श्री आदिनाथ के दर्शन करने शत्रुंजय की ओर चले। चलते-चलते एक दिन सब पालीताणा नगर में आ पहुँचे। सुबह गिरिराज पर चढ़े। वहाँ नहा-धोकर पूजन सामग्री लेकर सब रंगमंडप में आ पहुँचे। जैसे-जैसे पूजा का वक्त नज़दीक आता गया महादेवी अनुपमा अपने हृदय पर काबू न रख पायी। '' हे प्रभु! हे नाथ ! यह तो बता, तुझसे अधिक दुनिया में और कौन है ? मेरे प्यारे प्रभु! तू ही मेरे लिये सर्वस्व है। मेरा जो कुछ है, वह तेरा ही है।'' अनुपमा बोलती गयी और गले के हार, कान की बूटी, चूड़ियाँ, कंगन, कड़े, कुंडल, अंगुठियाँ एवं सोने का कटिसूत्र आदि अलंकार उतार कर क्षणभर में तो बत्तीस लाख सोना मोहरों के ये नये गहने भी प्रभु-चरणों में समर्पित कर दिये।

देवरानी का भक्तिभाव देखकर जेठानी ललितादेवी का हृदय भी द्रवित हो उठा। वह भी गहने उतारने लगी। देखते ही देखते उसने भी बत्तीस लाख के आभूषण प्रभु के चरणों में समर्पित कर दिये। देवरानी-

जेठानी की यह आभूषण पूजा देख रही थी...घर की दासी। उसका नाम था शोभना। शोभना का शरीर भी एक लाख सोना मोहर के मूल्य वाले गहनों से शोभित था। प्रभु भक्ति की यह अद्‌भुत छटा देखकर उसका हृदय भी पिघल उठा और वह बोली -'अरे सेठानीजी ! यदि आपको गहनों की नहीं पड़ी है, तो मुझे भी नहीं चाहिए ये गहने। ऐसा कहते हुए उसने भी अपने सारे आभूषण प्रभु के चरणों में समर्पित कर दिये।

मंदिर के एक कोने में खड़े रहकर इस भक्ति को देख रहे थे धाईदेव श्रावक जो देवगिरि से यात्रा करने के लिये आये थे। अलंकार पूजा की यह स्पर्धा देखकर उनसे भी रहा नहीं गया। उनके पास हीरे, मोती, माणेक, परवाला तथा सोने के फूल आदि जो कुछ भी थे। उससे प्रभु की आंगी रचकर नौ लाख चंपा के फूलों से प्रभु की पुष्पपूजा की।

वाह! अनुपमा! वाह! शाबाश! धन्य है तुम्हें! तुम गहने उतार भी सकती हो और दूसरों के उतरवा भी सकती हो। वाह! ललितादेवी! वाह! देवरानी के कदमों पर चलकर तुमने भी कमाल कर दिया! और दासी शोभना! तुम्हारे हृदय को भी नमस्कार है। तुम्हारा यह समर्पण कभी भुलाया न जा सकेगा।

ओ महामात्य वस्तुपाल एवं तेजपाल! आप भी धन्य है। प्रियतमाओं ने लाखों के गहने न्यौछावर कर दिये, फिर भी उन्हें न डाँटा, न फटकारा, न धमकाया। अरे ऊपर से आनंदित होकर प्रभु भक्ति की अनुमोदना की! यदि दिल में प्रभु न बसे हो तो, ऐसी उदारता आए भी कहाँ से ? वंदन है आपकी उदारता को! नमन है आपके भक्ति भरे हृदयों को!

अनुपमा, ललिता और शोभना ने जितनी किंमत के अलंकार भगवान को चढ़ाये, उससे भी अधिक किंमत के गहने वस्तुपाल मंत्री ने सबको पुन: नये बनवाकर दिये।

बाप से बेटा सवाया

परमात्मा महावीर स्वामी के परम भक्त मगध सम्राट श्रेणिक थे। वे परमात्मा की उपस्थिति में जितना अमारी प्रवर्तन नहीं करा सके। उससे भी कई गुना अधिक अमारी प्रवर्तन परमात्मा की सर्वथा अनुपस्थिति में अठारह-अठारह देशों में करने का सफल पुरुषार्थ करने वाले ऐसे कुमारपाल राजा और उनके एक मात्र पुत्र थे- नृपदेवसिंह।

फल के आधार पर जिस प्रकार बीज का निर्णय किया जाता है, उसी प्रकार पिता के संस्कार देखकर पुत्र के संस्कारों का निर्णय किया जा सकता है। यह बात नृपदेवसिंह के जीवन से प्रत्यक्ष झलकती थी। अपने पिता की तरह नृपदेवसिंह भी जीवदया के विषय में कट्टर थे। इनके पिता की प्रभुभक्ति गजब थी तो इनकी प्रभुभक्ति भी कुछ कम नहीं थी। सभी लोग नृपदेवसिंह को जिनशासन प्रभावक की नज़र से देखते थे।

परन्तु कर्म को कुछ और ही मंज़ूर था। छोटी उम्र में उनकी काया रोग ग्रस्त बन गई। अच्छे से अच्छे वैद्य से इलाज़ करवाने पर भी रोग के निकलने का कोई नाम तक नहीं था। उनकी अस्वस्थता के कारण उनके पिताजी तथा प्रजाजन चिंतित ही रहते थे। 'सम्यक् पुरुषार्थ करना और फिर जो भी परिणाम आये, उन्हें सहर्ष स्वीकार कर लेना' परमात्मा के यह वचन नृपदेवसिंह ने मानो आत्मसात् कर लिए हो, इसी कारण उन्हें अपने शरीर की कोई विशेष चिंता नहीं रहती थी। परंतु एक दिन परिस्थिति अत्यंत नाजुक बन गई, मृत्यु की शय्या पर सोये नृपदेवसिंह अपने जीवन की अंतिम घड़ियाँ गिनने लगे। पिता कुमारपाल परिस्थिति की गंभीरता को समझ गए। उन्होंने अपने पुत्र की समाधि को टिकाने एवं अंतिम निर्यामणा करवाने के लिए तुरंत अपने गुरु कलिकाल सर्वज्ञ श्री हेमचन्द्राचार्य को राजमहल में बुलवाया। आचार्यश्री भी नृपदेवसिंह की अंतिम अवस्था जानकर तुरंत आ गए। उन्हें आते देख नृपदेवसिंह अपनी शय्या पर बैठे और विनय पूर्वक गुरु भगवंत को भाव से वंदन किए। आचार्यश्री ने भी उनके मस्तक पर हाथ रखकर धर्मलाभ का आशीर्वाद दिया। नृपदेव को देखते ही आचार्यश्री जान गये कि अब कुछ ही देर में इसका जीवन दीप बुझने वाला है। इसलिए गुरुदेव ने प्रेम-पूर्वक उसके सिर पर हाथ फेरते हुए कहा -

आचार्यश्री - ''नृपदेवसिंह सावधान तो हो ना? मन स्थिर तो है ना?''

नृपदेवसिंह ने प्रसन्नता पूर्वक कहा- ''जी हाँ गुरुदेव! पूर्ण रूप से सावधान हूँ एवं मन भी अरिहंत में लीन है।''

आचार्यश्री- ''नृपदेव! वर्षों से इस धरती को दुर्लभ ऐसे जीवमित्र तथा प्रभुभक्त महाराजा कुमारपाल तुम्हें पिता के रूप में मिले है। इतना बड़ा सौभाग्य तुम्हें प्राप्त हुआ है इस बात का आनंद अपने हृदय में महसूस करते रहना।''

आचार्यश्री की यह बात सुनते ही नृपदेवसिंह चौ-धार आँसूओं से रोने लगे। नृपदेवसिंह को इस प्रकार रोता देख आचार्यश्री ने आश्चर्यचकित होकर कहा- ''नृपदेवसिंह क्या बात है? क्षत्रिय होकर भी तुम रो रहे हो? क्या तुम्हें मृत्यु से डर लग रहा है? यह क्या? देव-गुरु की निरंतर उपासना करने वाले, जीवदया के पालक, श्री नमस्कार महामंत्र का ध्यान करने वाले, श्री शत्रुंजय तीर्थ को हृदय में बसाने वाले ऐसे वीर नृपदेवसिंह की आँखों में मृत्यु के समय आँसू होने चाहिए या आनंद?

नृपदेवसिंह ने कहा - हे गुरुदेव! ये आँसू दु:ख या वेदना के नहीं है। ना ही मृत्यु के डर के है।

आचार्यश्री - '' तो फिर क्या बात है नृपदेव।''

नृपदेवसिंह - ''गुरुदेव! मेरे पिताजी ने राजगद्दी जरुर प्राप्त की, परंतु वे कंजूस बन गए। उन्होंने मंदिर तो बहुत बनवाएँ पर या तो लकड़े के या पत्थर के। मेरे मन में सतत एक ही भावना थी कि मैं भी बड़ा बनकर अपने पिता की तरह मंदिर का निर्माण करवाऊँगा, परंतु लकड़े या पत्थर के नहीं अपितु स्वर्ण के मंदिर बनवाऊँगा।

स्वर्ण मंदिर बनवाकर, सुदंर रत्नों की प्रतिमा भरवाकर और फिर आपके पुनित हस्तों से उसकी प्रतिष्ठा करवाऊँगा एवं आपके सुसानिध्य में विशाल छ:री पालित संघ निकलवाकर अंत में आप ही के चरणों में चारित्र ग्रहण कर अपने भवभ्रमण को मिटाऊँगा। पर गुरुदेव दुर्भाग्य से आज मेरा जीवन समाप्ति की दिशा में बढ़ रहा है, मैं अपनी भावना को यथार्थता का रूप नहीं दे पाऊँगा। अब मुझे अपने सारे मनोरथ धूल में मिलते नज़र आ रहे है। यह आँसू इसी दु:ख के है''। इतना कहकर नृपदेवसिंह रोने लगे।

उनके अद्‌भुत अजोड़, मनोरथ सुनकर पूज्यश्री की आँखों से भी अनुमोदनार्थ तथा हर्ष के प्रतीक रूप आँसू निकल पड़ें।अंत में गुरुदेव ने सुकृत अनुमोदना, दुष्कृत की गर्हा, क्षमापना तथा व्रताचार करवाकर अपूर्व निर्यामणा करवाई। अपने दोनों हाथों को जोड़कर 'पूज्यश्री को अंतश: वंदना' इस प्रकार बोलते हुए नृपदेव की आत्मा परलोक प्रयाण कर गई। सचमुच नृपदेव के मनोरथों को सुनकर एक बार तो कहने का मन हो ही जाता है कि 'बाप से बेटा सवाया।'

मंत्रीश्वर पेथड़शाह

1. मांडवगढ़ के महामंत्री पेथड़शाह जिनका नाम इतिहास के पन्नों पर स्वर्णाक्षर में लिखा गया है। यदि हम उनके जीवन पर दृष्टिपात करे तो हमें पता चलता है कि मंत्री पद पर आसीन होने के पूर्व दरिद्रावस्था के कई दु:खद अनुभवों से उन्हें गुजरना पड़ा।

एक बार मालवा देश के मुख्य नगर में प्रवेश करते ही सर्प को मार्ग काटते देख पेथड़शाह वहीं खड़े हो गए। उस समय वहाँ एक विद्वान शुकन शास्त्री आ पहुँचा। उसने पेथड़ को पूछा, ''आप यहाँ क्यों खड़े हों?'' तब उसने मार्ग काटते हुए सर्प को दिखाया। शुकन विद्वान ने सर्प की ओर दृष्टि करके देखा तो उसके मस्तिष्क पर काली देवी (चिड़ियाँ) बैठी हुई दिखाई दी। वह तत्काल बोला '' यदि आप रुके बिना चल दिये होते तो आप मालवा के राजा बन जाते। अभी इस शुकन को मान देकर इसी समय प्रवेश करें, इससे आप महाधनवान बन जायेंगे'' स्वयं को प्राप्त हुए शुकन का ऐसा फल जानकर पेथड़ ने तत्काल नगर में प्रवेश किया। वहाँ धोघा राणा के मंत्री के घर सेवक बनकर रहे। राजा ने पेथड़ की चतुराई देखकर उन्हें मंत्री बनाया। और धीरे-धीरे पेथड़शाह महाधनवान बन गए। मंत्री पद पर आसीन होने पर भी पेथड़शाह की प्रभुभक्ति आसमान की ऊंचाई को स्पर्श कर रही थी। प्रभुभक्ति करने जब पेथड़शाह बैठ जाते थे तब उन्हें अपने मंत्री पद की कोई चिंता नहीं सताती थी।

एक दिन प्रभुभक्ति में बैठे पेथड़शाह प्रभु की पुष्प द्वारा अंगरचना कर रहे थे। उसी समय राजा का एक व्यक्ति राजा की आज्ञा से पेथड़शाह मंत्री को बुलाने आया। तब मंदिर के द्वार पर खड़े पेथड़शाह के सेवक ने उसे बाहर ही खड़ा रख दिया। राजा के सेवक ने कहा-

राजा का सेवक - ''मैं मंत्रीश्वर के लिए राजा का संदेश लेकर आया हूँ।''

पेथड़शाह का सेवक -''लेकिन आप अभी मंत्रीश्वर से नहीं मिल सकते।''

राजा का सेवक - ''पर राजा स्वयं उन्हें बुला रहे है।''

पेथड़शाह का सेवक - ''परंतु मंत्रीश्वर अभी देवाधिदेव की भक्ति कर रहे है।''

इस प्रकार का जवाब सुनकर राजा के सेवक ने गुस्से में आकर सारी बात राजा को बताई। राजा आवेश में आकर स्वयं पेथड़शाह को बुलाने मंदिर में पहुँच गये। पेथड़शाह के सेवक ने राजा को भी वही खड़ा रख दिया। तब राजा ने कहा कि ''मैं पेथड़ की भक्ति में किसी प्रकार की अंतराय नहीं करुँगा ऐसा वचन देता हूँ।'' यह सुनकर सेवक ने राजा को मंदिर में जाने की अनुमति दे दी।

राजा ने मंदिर में जाकर जो दृश्य देखा उसे देखते ही वे स्तब्ध रह गये। पेथड़शाह का मुख प्रभु सन्मुख था। उनके पीछे बैठा हुआ सेवक उन्हें हाथ में अलग-अलग वर्ण के एवं अलग-अलग जाति के पुष्प दे रहा था और उन पुष्पों से अलग-अलग अंगरचना बनाकर पेथड़शाह लीनता पूर्वक भक्ति कर रहे थे। ऐसा देखकर राजा ने पीछे बैठे सेवक को उठाकर स्वयं उस जगह पर बैठ गये और पेथड़शाह को फूल देने लगे। पेथड़शाह भक्ति में इतने लीन थे कि पीछे कौन आकर बैठा है यह भी उन्हें पता नहीं चला। परन्तु अंगरचना में अचानक अलग-अलग वर्ण के पुष्पों का बदलते क्रम आते देख पेथड़शाह का ध्यान भंग हुआ और जब उन्होंने पीछे मुड़कर अपने सेवक से कुछ कहना चाहा। तब अचानक राजा को पीछे बैठे देखकर पेथड़शाह असमंजस में पड़ गये। राजा ने कहा - मैं आपकी प्रभु भक्ति से बहुत खुश हूँ और पीठ थपथपाते हुए पुन: कहा- 'धन्य है! आपकी प्रभु भक्ति की तल्लीनता को!'

2. इस प्रकार प्रभु भक्ति में तल्लीन रहने वाले पेथड़शाह के जीवन में एक बार भारी धर्म संकट आया। खंभात के एक श्रेष्ठी ने हिन्दुस्तान के सभी ब्रह्मचर्य व्रत अंगीकार किए हुए व्रतधारियों को अपनी तरफ से एक-एक रत्न कांबली भेंट दी। एक दिन श्रेष्ठी की आज्ञानुसार एक सेवक रत्न कांबली पेथड़शाह को भेंट देने आया तब -

पेथड़शाह- ''मुझे कांबली क्यों?''

सेवक- ''हमारे सेठ की विशेष सूचना से ...''

पेथड़शाह- ''लेकिन मैंने तो बह्मचर्य व्रत अंगीकार नहीं किया है''

सेवक- '' भले ही आपने व्रत का अंगीकार नहीं किया है लेकिन हमारे सेठ की विशेष सूचना है कि आपको एक कांबली भेंट दी जाए।''

पेथड़शाह- ''मेरे द्वारा यह कांबली नहीं स्वीकारी जाएगी।''

उस समय कांबली स्वीकार करने की मनाही पेथड़शाह की धर्मपत्नी को खटकने लगी। वह पेथड़शाह के पास आई और कहा-

पेथड़शाह की धर्मपत्नी- ''साधर्मिक की तरफ से मिल रही भेंट रूपी नज़राने को इन्कार करने से तीर्थंकर भगवंत की आशातना का दोष लगता है। इस बात का आपको ख्याल तो है ना?''

पेथड़शाह - ''हाँ!''

पेथड़शाह की धर्मपत्नी - ''तो फिर आप इस कांबली को स्वीकार क्यों नहीं कर रहे हो?''

पेथड़शाह- ''इसका कारण यह है कि हमने अभी तक ब्रह्मचर्य व्रत अंगीकार नहीं किया।''

पेथड़शाह की धर्मपत्नी- ''तो अब स्वीकार कर लेते है।''

पत्नी के शब्दों को सुनकर पेथड़शाह उसी समय अपनी पत्नी को लेकर उपाश्रय में बिराजित आचार्य भगवंत के पास पहुँच गये। 32 वर्ष की भर युवानी में आजीवन के लिए ब्रह्मचर्य व्रत का अंगीकार कर लिया। धन्य है शासन की शान रूप इस युगल को!

3. मंत्रीश्वर पेथड़शाह को देवगिरि में जिनालय बनवाने के लिये जगह की आवश्यकता थी। परन्तु जैन-धर्म का द्वेषी राजा बिल्कुल तैयार नहीं था। पेथड़शाह ने बुद्धि से काम लेकर राज्यमंत्री हेमड़ के नाम से दानशाला शुरू कर दी। जिसमें प्रतिदिन हज़ारों याचकों को पाँच पकवान खिलाये जाते थे। लोगों में हेमड़ मंत्री की वाह-वाह होने लगी। निरंतर तीन वर्ष से चलने वाले इस दानशाला के बारे में जब हेमड़ को पता चला, तब उसके नाम को कौन रोशन कर रहा है? यह जानने की जिज्ञासा से स्वयं वहाँ भोजन करने बैठ गया। वहाँ संचालकों से पूछा- 'यह दानशाला कौन चलाता है?' जवाब मिला 'मंत्रीश्वर हेमड़।' आश्चर्य के साथ हेमड़ बोला- 'अरे! मैं स्वयं ही हेमड़ हूँ। मैंने तो कोई दानशाला नहीं खोली है।' संचालक ने हेमड़ को पेथड़शाह से मिलवाया। पेथड़शाह ने यहाँ-वहाँ की बातें करने के पश्चात् हेमड़ से कहा कि - 'यदि आपको मुझ पर प्रेम हो, तो देवगिरि में किसी शुभ स्थान पर जिनालय बनवाने के लिये मुझे जगह दीजिये'।

हेमड़ ने राजा को प्रसन्न कर पेथड़शाह को जगह दिलवायी। नींव खोदते ही जमीन में से मीठा जल निकला। ब्राह्मणों ने जाकर राजा के कान भरें कि सारा नगर खारा पानी पीता है और मंदिर के नींव के लिये जहाँ खुदाई की गई है, उस स्थान पर मीठा जल निकला है, अत: वहाँ मंदिर न बनवाकर बावड़ी बनवायी जाये।

पेथड़शाह को इस बात का पता चलते ही रातों-रात सांढ़णियाँ दौड़ायी व नमक के बोरे लाकर मंदिर के गड्ढे में डलवा दिये। सुबह राजा पानी की परीक्षा करने आया। एक प्याले में पानी भरकर राजा को दिया

गया। पहला घूंट लेते ही राजा थू-थू करने लगा। ब्राह्मण वहाँ से भाग गये। करोड़ों रूपयों के व्यय से पेथड़शाह ने वहाँ सुविशाल जिनालय बनवाया। (कालक्रम से थोड़ा जीर्ण, मुस्लिमों के आक्रमण का शिकार बना हुआ व जैनों द्वारा ही उपेक्षित बना हुआ वह मन्दिर आज भी देवगिरि (दौलताबाद-औरंगाबाद) में खंडहर के रूप में विद्यमान है। भारत सरकार ने उसे हिन्दमाता मन्दिर घोषित करके केन्द्रस्थान में हिंदमाता का स्टेच्यू स्थापित किया है। मन्दिर का रंगमंड़प इतना विशाल है कि तीन हज़ार लोग एक साथ बैठकर चैत्यवंदन कर सकते है। एक-एक स्तंभ पर जिनबिंबों की नक्काशी भी दिखती है।)

इसके साथ ही पेथड़शाह ने छप्पन घड़ी प्रमाण सुवर्ण देवद्रव्य में देकर इन्द्रमाला पहनी और गिरनार तीर्थ को दिगम्बरों के कब्जे में जाता हुआ बचा लिया। सिद्धगिरी पर श्री ऋषभदेव प्रभु के चैत्य को इक्कीस घड़ी सुवर्ण से मढ़कर सुवर्णमय बनवाया। इस प्रकार बहुत-सा द्रव्य धर्म कार्य में लगाया।

भक्ति से मिला तीर्थंकर पद

उस रावण को देखिये। मंदोदरी का स्वामी, सीता का कामी, फिर भी परमात्मा जिनेश्वरदेव का अनुरागी। एक दिन मंदोदरी आदि अपनी 16 हज़ार रानियों के साथ अष्टापद पर्वत पर चढ़ा। भरत चक्रवर्ती द्वारा स्थापित किये गए 24 तीर्थंकरों के जिन-बिंबों के समक्ष भक्ति करने हेतु मंदोदरी ने पाँव में घुंघरु बांधे और रावण हाथ में वीणा लेकर गीत-संगीत के सूर में झूमने लगा।

प्रभुभक्ति में रावण इतना मग्न हो गया था कि वीणा पर फिरती हुई अंगुलियों का भी ख्याल न रहा। एकाएक वीणा का तार टूटा और रावण चौंक उठा। यदि संगीत थम गया, तो मंदोदरी का नृत्य बिगड़ जाएगा। उसके भाव गिर जायेंगे, रंग में भंग हो जाएगा। उसने उसी क्षण अपनी जंघा चीरकर नस खींच ली। लघुलाघवी कला के बल से वह नस वीणा में जोड़ दी। ताल, सुर एवं संगीत यथावत् चालू ही रहे। ये सब कार्य इतनी तेजी से हो गये कि नृत्य करती हुई मंदोदरी को ख्याल तक न आया कि कब वीणा का तार टूटा और कब जुड़ा? इस उत्कृष्ट भक्ति के प्रभाव से रावण ने उसी क्षण तीर्थंकर नामकर्म का उपार्जन किया और बाहर खड़े नागराज धरणेन्द्र को भी आश्चर्य में डाल दिया। काल रूपी गंगा का बहुत पानी बह जाएगा और भव परंपरा का छोर दिखने लगेगा। तब महाविदेह क्षेत्र में एक दिन ऐसा आयेगा कि राक्षसकुल शिरताज रावण तीर्थंकर बनेंगे और सीताजी उनकी गणधर बनेगी।

सम्राट सिद्धराज और दंडनायक साजन

जीर्णोद्धार के इतिहास में अंकित हुए साजनमंत्री। पाटणनरेश सिद्धराज ने जिन्हें दंडनायक के रूप में नियुक्त किया था। एक बार उन्हें कर वसूल करने के लिये सौराष्ट्र की भूमि पर भेजा गया। वहाँ पर एक दिन वे

गिरनार तीर्थ की यात्रा करने गये। बिजली गिरने से टूटे हुए काष्ट के जिन मन्दिर को देखकर उनका दिल द्रवित हो उठा। तुरन्त ही जीर्णोद्धार का कार्य शुरु करवा दिया और तीन वर्ष से वसूल की गयी कर की सारी रकम जीर्णोद्धार में लगा दी। किसी ईर्ष्यालु ने सम्राट सिद्धराज के पास जाकर चुगली खायी। क्रुद्ध सिद्धराज तुरन्त सौराष्ट्र की ओर रवाना हुए। बीच में सोमनाथ महादेव के दर्शन करके वे गिरनार की तलेटी में स्थित वंथली गाँव पहुँचे। मंत्री साजन उनका स्वागत करने सामने आये, परन्तु राजा ने मुँह फेर दिया। साजन मंत्री समझ गये कि जरुर दाल में कुछ काला है। राज्य की रकम जीर्णोद्धार में व्यय की गई है। इस बात से महाराज का मन खिन्न हो गया है। खैर ! कोई बात नहीं, इसका भी कोई रास्ता निकल आयेगा।

मंत्री साजन ने वंथली के आगेवान सेठ को सारी बात बतायी। सेठ ने कुल साढ़े बारह करोड़ सोना मोहरें साजन को दी।

दूसरे दिन सिद्धराज जयसिंह गिरनार की यात्रा करने पधारें। गगनचुंबी, विराट, दूध से सफेद शिखरों को देखकर सिद्धराज के मुँह से शब्द निकल पड़े-''धन्य है उसकी माता को जिसने ऐसे मन्दिर का निर्माण करवाया।' पीछे खड़े साजन मंत्री भी तुरन्त बोले-''धन्य है माता मिनल देवी को जिसने सिद्धराज जैसे पुत्ररत्न को जन्म दिया।'' ये वचन सुनकर सिद्धराज ने ज्यों ही पीछे मुड़कर देखा, त्यों ही साजन दंडनायक ने साढ़े बारह करोड़ सोना मोहरों से भरे थाल को दिखाते हुए कहा-''महाराज! देख लीजिये ये सोना मोहरें और देख लीजिये यह जिनालय। दोनों में से जो पंसद हो, वह रख लीजिये। आपका धन मैंने जीर्णोद्धार में लगा दिया है। इससे आपकी कीर्ति को चार चाँद लग गये है। फिर भी यदि आपको यह पुण्य नहीं चाहिये और ये धन ही चाहिये, तो संघ के आगेवानों ने यह रकम भी जमा करके रखी हैं। आपको जो चाहिये, वह लीजिए।'' सिद्धराज पिघल गया और बोल उठा- ''धन्य है मेरे दंडनायक साजन ! तुम्हें धन्य है! ऐसे जीर्णोद्धार का लाभ देकर तुमने मेरा जीवन धन्य बनाया है। साजन ! पुण्य बंध कराने वाले इस प्रासाद को मैं स्वीकारता हूँ, मुझे ये धन नहीं चाहिये।''

एक साथ सभी ने मिलकर जयघोष किया- ''बोलो आबालब्रह्मचारी भगवान नेमिनाथ की जय'' खुश होकर सिद्धराज ने मंदिर के निभाव हेतु 12 गाँव भेंट दिये। साजन मंत्री ने 12 योजन की (120 कि.मी. की) विशाल ध्वजा बनाकर उसका एक छोर गिरनार के शिखर पर बांधा एवं दूसरा छोर सिद्धाचल तीर्थ में दादा के शिखर पर बांधा।

आगेवान श्रेष्ठी ने उन साढ़े बारह करोड़ सोना मोहरों को वापस घर न ले जाकर उस धन से वंथली गाँव में दूसरे चार नूतन जिनालयों का निर्माण करवाया।

भीलनी भाव से भजे भगवान!

एक जंगल में भील-भीलनी रहते थे। एक दिन जंगल में एक जैनमुनि का आगमन हुआ। मुनिराज ने उन दोनों को जिनपूजा की महिमा समझायी। भीलनी का हृदय भक्ति से भर गया। वह जंगल में स्थित जिनालय में नित्य ऋषभदेव भगवान की पूजा करने लगी। भील ने उसे टोका- 'अरे पगली ! ये तो बनियों के भगवान हैं। हम इन्हें क्यों पूजे ? थोड़ी समझदार बन और यह पूजा-वूजा बंद कर'। भीलनी न मानी। इस प्रकार कुछ वर्षों के बाद भीलनी मरकर समीप के नगर में राजपुत्री के रूप में जन्मी और युवावस्था में आयी। वह एक बार महल के झरोखे में बैठी थी। उसने राह से गुजरते हुए भील को देखा और उसे जातिस्मरण ज्ञान उत्पन्न हुआ। गत जन्म के पति को बुलाकर उपदेश दिया। पूर्वभव का स्वरूप समझाया और जिनपूजा में स्थिर किया। राजपुत्री मरकर स्वर्ग में गई और भील ने भी आत्मकल्याण किया।

प्रभु भक्त जगड़

जगड़ महुवा के हंसराज धरु का पुत्र था। एक बार वह सिद्धाचल तीर्थ की यात्रा करने गया था। दादा के दरबार में सम्राट कुमारपाल महाराजा के संघ की तीर्थमाला का चढ़ावा बोला जा रहा था।

चार लाख... आठ लाख... बारह लाख....धीरे-धीरे चढ़ावा आगे बढ़ा। चौदह लाख...सोलह लाख.... बीस लाख... इतने में जगड़ ने सबको आश्चर्य चकित करते हुये हाइजंप लगाते हुए कहा "सवा करोड़!" यह संख्या सुनते ही सब हिल गये। सभी एकटक से मैले कपड़े पहने हुये जगड़ को देखने लगे। कुमारपाल महाराजा ने मंत्रियों को इशारा किया कि जरा छानबीन तो करो। इतने में तो जगड़ स्वयं आगे आया और अपने उत्तरीय वस्त्र के छोर पर बांधा हुआ सवा करोड़ रूपये का माणिक्य निकाल कर कुमारपाल महाराजा के हाथ में अर्पण किया। तेजोमय माणिक्य देखते ही कुमारपाल ने पूछा -

"ऐसी अद्भुत चीज़ कहाँ से लाये हो ?" "महाराज ! मेरे पिता ने समुद्रयात्रा कर विदेशों में धंधा किया था। खूब धन कमाया और वापस लौटे। विदेश जाने से जो विराधना हुई, इससे उनका अन्त:करण व्यथित हो उठा। कमाये हुए धन में से उन्होंने सवा-सवा करोड़ के पाँच माणिक्य खरीदें और मृत्यु के वक्त मुझे सौंपते हुए कहा - 'बेटा ! सवा करोड़ का एक माणिक्य शत्रुंजय तीर्थाधिराज दादा ऋषभदेव को चढ़ाना, एक माणिक्य आबालब्रह्मचारी गिरनारमंडण श्री नेमिनाथ भगवान को चढ़ाना, एक माणिक्य देवपट्टन (चन्द्रप्रभास पाटण) में चन्द्रप्रभस्वामी को चढ़ाना और बचे हुए दो रत्न अपने जीवन निर्वाह के काम में ले लेना। महाराज ! पिताजी की आज्ञानुसार तीनों स्थानों पर तीन माणिक्य चढ़ा दिए हैं। मेरे स्वयं के लिए जो दो रत्न बचे हैं, उनमें से एक संघमाला के चढ़ावे के लिए आपको अर्पण करता हूँ।" जगड़ की उदारता देखकर

सबके मस्तक झुक गये। राजा कुमारपाल का संघ वहाँ से प्रस्थान कर जब गिरनार पहुँचा, तब वहाँ पर भी तीर्थमाला का चढ़ावा लेकर जगड़ ने सवा करोड़ का दूसरा माणिक्य भी अर्पण कर दिया। शाबाश जगड़ ! धन्य है आपकी माता को एवं धन्य है आपके पिता को !

आरस या वारस

विमलमंत्री व श्रीदेवी इस दंपति ने आबू पर जिनालय का निर्माण कार्य शुरु करवाया, परन्तु मंदिर दिन में जितना तैयार होता, उतना रात में पुन: गिर पड़ता। विमलमंत्री ने अट्ठम तप करके अंबिका देवी को प्रत्यक्ष किया और इस विघ्न के निवारण हेतु देवी से प्रार्थना की।

देवी - "विमल ! तेरे नसीब में 'आरस या वारस ' अर्थात् 'प्रभु मंदिर या पुत्र' दोनों में से एक ही है। यदि मंदिर चाहिए तो पुत्र नहीं मिलेगा।" देवी की बात सुनकर विमलशाह सोच में पड़ गये। उन्होंने देवी से कहा- "माँ ! इस विषय के लिए मेरी पत्नी श्रीदेवी से पूछना पड़ेगा। मैं उससे पूछकर जवाब दूँगा"

देवी - "आगामी भादरवा सुदी चौदस के दिन अड़ाजन गाँव में मेरे धाम पर तुम दोनों दंपति आ जाना और ठीक मध्यरात्री में 7 श्रीफल चढ़ाकर जो इच्छा हो वह माँग लेना। मैं तुम्हें वरदान दूँगी। तुम्हारी मनोकामना पूर्ण होगी "।

विमलशाह ने घर आकर सारी बात श्रीदेवी से कही। दोनों दंपति ने सोच विचार कर निर्णय लिया और भादरवा सुदी चौदस के दिन ठीक शाम के पाँच बजे अड़ाजन कुलदेवी के धाम पर पहुँच गये। मध्यरात्री होने में काफी समय था, इसलिए दोनों एक पेड़ के नीचे समय बिताने के लिए बैठ गये। उस पेड़ के पास एक बावड़ी थी। दोनों को प्यास लगी। तब विमलशाह ने अपने पास रहे लोटे को लेकर बावड़ी में उतरने लगे। इतने में आवाज़ आई- " ठहरो! पानी के पैसे देकर फिर पानी लेना"

यह सुनकर विमलशाह चौंक गये। पीछे मूड़कर देखा तो एक आदमी खड़ा था।
उसने कहा - "मेरे दादा ने यह परब बंधाई है। देखो इस तख्ती पर क्या लिखा है। पानी के पैसे देकर पानी ले।"

विमलशाह - "अरे भाई! पानी के भी क्या पैसे लगते है?"

आदमी : " मेरे बाप-दादा की यह बावड़ी है, इसलिए अब इस पर मेरी मालिकी है। यदि इसमें से आपको पानी लेना है तो पैसे देने ही पड़ेंगे।"

आखिर में विमलशाह ने पैसे देकर पानी भरा। इस घटना से उनका मन अशांत हो गया। विचार करने लगे कि "ऐसा भी होता होगा क्या? किसी पुण्यशाली ने सुकृत करने के लिए यह बावड़ी बनाई होगी और

उनके वारिस इसके बदले पैसे लेते हैं। ऐसे कपूत भी होते है क्या?" दूर खड़ी श्रीदेवी ने भी यह दृश्य देखा। जैसे ही विमलशाह पास में आए श्रीदेवी ने कहा " नहीं, नहीं, ऐसी संतान से तो संतान न हो यही अच्छा है। संतान यदि कपूत होगी, तो हमारे किए कराए पर पानी फेर देगी। कहीं अपनी संतान भी आबू के मंदिर के बाहर बैठकर दर्शनार्थियों के पास से पैसा लेकर कहे कि मैं उनकी संतान हूँ तो ? नहीं, ऐसी संतान हमें नहीं चाहिए। " इस प्रकार उन्होंने निश्चय किया कि " देवी के पास संतान न हो यही वरदान माँगना।"

मध्यरात्री में 2 मिनट बाकी थी और दोनों देवी की मूर्ति के सन्मुख जाकर बैठ गये। ठीक मध्यरात्री में 7 श्रीफल चढ़ाये, माँ को चुंदड़ी ओढ़ाई।

माँ ने साक्षात् प्रगट होकर श्रीदेवी से कहा - "मांग बेटी क्या वरदान चाहिए?"

श्रीदेवी ने धीमे स्वर से कहा - "माँ यही वरदान चाहिए कि हमें संतान न हो"

देवी ने विमलशाह के सामने देखा।

विमलशाह ने कहा - " माँ ! हम वरदान मांगते हैं कि हमें वांझणे रखना। हमें वारस नहीं आरस चाहिए" दोनों की भावना सुनकर माँ ने कहा -"तथास्तु"।

इस दंपति के सत्त्व का गीत गाता हुआ वह जिनालय 'विमल वसही' के नाम से आबू की धरती पर आज भी शोभित है।

भीमा कुंडलिया

बाहड़ मंत्री पाटण से सिद्धाचल का संघ लेकर आए थे। संघ में आने वाले सब यात्रिकों ने शत्रुंजय की यात्रा की। सबको यह समाचार मिल गए थे कि बाहड़ मंत्री शत्रुंजय पर आदिनाथ दादा का मंदिर पाषाण (पत्थर) से बनायेंगे और इसमें लाखों का खर्च करेंगे।

इस प्रसंग पर कितने ही श्रेष्ठियों ने विचार किया कि इस पुण्य के काम में हम भी कुछ भाग ले। यह विचार कर कितने ही श्रेष्ठियों ने बाहड़ मंत्री के पास आकर विनंती की कि "आप गिरिराज पर भव्य जिन मन्दिर के नवनिर्माण के लिए सम्पन्न हो परन्तु इस पुण्य के काम में हमें भी भागीदार बनाओं। हमें फूल नहीं तो फूल की पंखुड़ी का लाभ दे, ऐसे हमारे भाव है। हम जानते हैं कि हमारी यह विनंती आप स्वीकार करेंगे और हमें भी इस पुण्य का लाभ लेने की आज्ञा देंगे।"

महामंत्री ने इस विनंती को सहर्ष स्वीकार किया। दूसरे दिन ही शत्रुंजय की तलेटी पर विशाल सभा मिली। उसमें स्वयं महामंत्री ने घोषणा की कि - "जो कोई भी भाई-बहन शत्रुंजय पर बन रहे भव्य जिन मन्दिर के नवनिर्माण कार्य में अपने धन का सद्व्यय करना चाहते हैं वे प्रेम से स्वयं के धन का दान दे सकते

है। सब अपने-अपने दान की रकम मुनीमजी के पास लिखवा दे।''

घोषणा पूरी होते ही दातार अपने दान की रकम लिखवाने लगें। कोई दो लाख, कोई एक लाख, कोई पचास हज़ार। दातारों की दान भावना और जिनभक्ति को देखकर महामंत्री का दिल खुश हो गया, इतने में उनकी नज़र सभा के एक ओर खड़े एक व्यक्ति पर पड़ी। जो इस भीड़ में अंदर आने का प्रयत्न कर रहा था। पर उसके मैले कपड़े देखकर कोई उसे अंदर नहीं आने दे रहा था। बाहड़ मंत्री ने देखा कि इस आगंतुक के दिल में भी दान देने की भावना उछल रही है। इसलिए महामंत्री ने एक सेवक को भेजकर उसे अपने पास बुलवाया, उसने आकर प्रणाम किया।

मंत्री ने पूछा - ''पुण्यशाली ! तुम्हारा नाम क्या है ? और कहाँ रहते हो ?''

भीमा - ''मेरा नाम भीमा कुंड़लिया है। यही पास के गाँव में रहता हूँ।''

मंत्री पूरी पूछताछ करते है ''क्या धंधा करते हो ?''

भीमा - ''महामंत्री जी ! पुण्यहीन हूँ। अशुभकर्म के बंधन अभी टूटे नहीं है। मेहनत मज़दूरी करता हूँ। घर में एक गाय पाल रखी है उससे हमारा (पति-पत्नी दोनों का) जीवन निर्वाह हो जाता है।''

मंत्री- ''यहाँ पर क्यों आये हो ?''

भीमा- ''बाज़ार में घी बेचते-बेचते यह समाचार मिले कि गुजरात के महामंत्री विशाल संघ लेकर यहाँ पधारे हैं। यह सुनकर मुझे भी यात्रा करने के भाव आए। यात्रा करके आने के बाद पता चला कि आप गिरिराज पर भव्य जिन मन्दिर का नवनिर्माण करा रहे हो। इससे मुझे भी भावना हुई कि मैं भी कुछ .....''

भीमा आगे कुछ न बोल सका। बाहड़ मंत्री ने प्रेम से कहा- ''भीमाजी! दान देने में शरमाने जैसी कोई बात नहीं है। तुमको जितना दान करना है उतना प्रेम से करो।''

भीमा - ''मंत्रीश्वर ! मेरे पास एक रूपये और सात पैसे थे। उसमें से एक रूपये के पुष्प खरीदकर भगवान आदिनाथ को चढ़ाए, अब मेरे पास मात्र सात पैसे बचे है। इतनी छोटी-सी रकम आप स्वीकार करेंगे तो मैं स्वयं को भाग्यशाली समझूँगा।'' इतना कहते ही भीमा की आँखों में आँसू आ गए। बाहड़ की आँखें भी भीमा की भावना देखकर गिली हो गई तथा प्रेम से उसके सात पैसे स्वीकार कर लिए और मुनिमजी से कहा -

''मुनीमजी ! दातारों की नामावली में सबसे पहला नाम भीमा कुंड़लिया का लिखो।'' महामंत्री की इस घोषणा को सुनकर सभा में घोर सन्नाटा छा गया। सब सोचने लगे कि इस भीमा ने कितना दान लिखाया होगा, जिससे इसका नाम दान की नामावली में सबसे पहला है।

तब भीमा के सात पैसों को हाथ में बताते हुए महामंत्री ने कहा - ''सभाजनों! देखों, भीमा की यह

सम्पूर्ण संपत्ति है। अपनी सम्पूर्ण कमाई ये दान में दे रहा है। हम सब भी दान करते हैं पर कैसा? लाख हो तो पाँच-दस हज़ार का, पर ये भीमा अपने पास कुछ रखे बिना, कल की कुछ चिंता किए बिना, दादा के चरणों में अपनी महामूल्यवान सम्पूर्ण संपत्ति दे रहा है। मेरी बुद्धि से तो भीमा का दान हम सबसे अनुपम एवं अद्वितीय है, '' भीमा कुंडलिया की प्रभु भक्ति और मंत्रीश्वर की उदारता से सभी गद्-गद् हो उठे।

''धन्य है भीमा को! धन्य है! धन्य है! महामंत्रीश्वर को'' ऐसे प्रचंड हर्ष के साथ सभा समाप्त हुई। भीमा भी अपने गाँव गया और हँसते-हँसते उसने घर में प्रवेश किया। घर में प्रवेश करते ही उसकी पत्नी ने सवाल किया - ''अहो! क्या बात है? आज बहुत खुश दिख रहे हो?''

भीमा - ''प्रिये! मेरी खुशी का राज तुझे किस तरह बताऊँ ? आज तो मेरा जीवन ही धन्य बन गया।''

पत्नी - ''ऐसा क्या हो गया? मुझे भी तो कहो।'' भीमा ने हर्षित मन से सब कुछ कह दिया, बात पूरी होने से पहले ही पत्नी गुस्से में बोल उठी- ''एक तो पूरी कमाई आज दान में दे दी, और कहते हो धन्य बन गया, कैसे ? आपको घर का विचार भी नहीं आया, शाम को क्या खायेंगे?''

फिर गुस्से में ही गालियाँ देती हुई गाय दोहने चली गई। उस समय गाय का खूंटा ढ़ीला होने से निकल गया। वह पुन: खीले को जैसे ही जमीन में गाढ़ने लगी, वैसे ही खूंटा किसी बर्तन से टकराया हो, ऐसा उसे प्रतीत हुआ। उसने जमीन खोदी तो अंदर से उसे सोना मोहरों से भरा कलश मिला। कलश देखते ही उसका गुस्सा ठंडा हो गया और कलश लेकर वह भीमा के पास आई। तथा भीमा को सारी बात बतायी।

सोना मोहरों से भरे कलश को देखते ही भीमा ने कहा - ''देखा! दादा का कैसा चमत्कार, कहाँ सात पैसे और कहाँ पर मोहरों से भरा हुआ ये सोने का कलश।''

उसकी पत्नी भी बहुत खुश होकर बोली - ''इन मोहरों से अपनी गरीबी दूर हो जाएगी।''

इस पर भीमा ने कहा '' नहीं, जो चीज़ अपनी नहीं है, उसे लेने की मेरी प्रतिज्ञा को क्या तू नहीं जानती। ये सोना मोहरे अपनी नहीं है'' उसकी पत्नी ने कहा - ''तो क्या करोगे इन सोना मोहरों का?''

भीमा ने उत्तर देते हुए कहा - ''जाकर महामंत्री को देकर आऊँगा, महामंत्री को इसका जो करना है वह करेंगे।''

दूसरे दिन सुवर्ण कलश लेकर भीमा बाहड़ मंत्री के पास आया। उसने सोना मोहरों के साथ सुवर्ण कलश भी उनके चरणों में रख दिया और उसके साथ जो हुआ वह सब कुछ बता दिया। बाहड़ मंत्री भीमा की नि:स्पृहता एवं व्रत पालन की दृढ़ता को देखकर अहोभाव से स्तब्ध रह गए। उन्होंने कहा- ''धन्य है भीमाजी! धन्य है आपके व्रतपालन की दृढ़ता को । सच में आप महाश्रावक हो! इन सोना मोहरों पर आप का ही अधिकार है, आपको ये मोहरें आपके घर से मिली है, आपके पुण्योदय से ही मिली है, अत: इसके

मालिक आप ही हो। आप इसे प्रेम से वापस ले जाओ,'' परंतु भीमा ने सोना मोहरें लेने से इन्कार कर दिया। महामंत्री ने पुन: उसे समझाया, लेकिन भीमा मानने को तैयार ही नहीं हो रहा था। एकाएक वहाँ कपर्दी यक्ष प्रगट हुए।

यक्षदेव ने कहा - ''भीमा! यह धन तुझे तेरे पुण्य से मिला है, तेरे अशुभ कर्म अब पूरे हो गये हैं। यह धन मैं तुझे प्रेम से दे रहा हूँ। तुम ले लो''। इतना कहकर कपर्दी यक्ष अदृश्य हो गए। भीमा भी ज्यादा मना न कर सका। महामंत्री के आतिथ्य को स्वीकार कर आखिर भीमा सोना मोहरों से भरा कलश लेकर अपने घर गया। घर आकर यक्ष की सारी बातें पत्नी से कही। तब पत्नी ने खुश होकर कहा- ''हे स्वामी! श्री आदिनाथ भगवान का प्रभाव अचिंत्य है। इसमें कोई शंका नहीं है। साथ ही आपकी व्रत दृढ़ता का यह फल है।''

सती सुलसा

प्रभु महावीर के शासन काल में राजगृही नगरी में प्रभु के परम भक्त श्रेणिक राजा राज्य करते थे। उनके राज्य में नाग नामक सारथी था। उसे श्रेष्ठ शीलादि गुणों से सुशोभित तथा प्रभु वीर के प्रति अत्यंत श्रद्धावान ऐसी सुलसा नामक पत्नी थी।

एक बार श्री महावीर प्रभु चंपानगरी में पधारें। उसी नगरी से अंबड परिव्राजक राजगृही नगरी में जा रहा था। उसने प्रभु महावीर को वंदन करके विनंती की कि, ''हे प्रभु! मैं आज राजगृही जा रहा हूँ। यदि आपको वहाँ कोई कार्य हो तो फरमायें।'' तब भगवान ने कहा-''वहाँ रहने वाली सुलसा श्राविका को धर्मलाभ कहना।'' परिव्राजक वहाँ से निकलकर राजगृही नगरी आया। वहाँ पूछताछ करने पर उसे पता चला कि यह सुलसा नाग सारथी की पत्नी है। तब उसके आश्चर्य का पार नहीं रहा। उसने सोचा कि परमात्मा ने श्रेणिक राजा, अभयकुमारादि आदि किसी को याद नहीं कर एक सामान्य सारथी की स्त्री को धर्मलाभ कहलवाया है। अत: वह वाकई दृढधर्मी होगी, परंतु एक बार तो मुझे उसकी परीक्षा करनी ही चाहिए।

इस प्रकार सोचकर वह पहले दिन राजगृही नगरी के पूर्व दिशा के दरवाज़े पर अपने तप बल से ब्रह्मा का रूप लेकर बैठ गया। यह देख नगर के सभी लोग ब्रह्माजी के दर्शन हेतु वहाँ जाने लगे। मात्र एक सुलसा श्राविका ही नहीं गई। यह देखकर दूसरे दिन उसने दूसरे दरवाज़े पर महादेव का रूप धारण किया। साक्षात् महादेवजी को नगरी में आए देखकर लोगों के टोले के टोले उनके दर्शनार्थ जाने लगे। पर सुलसा का सम्यक्त्व दृढ़ था इसलिए वह महादेव के दर्शन करने नहीं गई। अंबड ने तीसरे दिन पुन: तीसरे दरवाज़े पर विष्णु का रूप धारण किया। पूर्ववत् लोगों का सैलाब वहाँ उमड़ने लगा, पर उनके दर्शन के लिए भी नहीं जाने वाली एक मात्र सुलसा ही थी। यह देख अंबड ने हिम्मत हारे बिना अपनी अंतिम चाल चली। उसने सोचा कि ब्रह्मा, विष्णु, महादेव आदि तो अन्य धर्म के देव है। इसलिए सुलसा उनके दर्शन करने नहीं आई

होगी। यदि मैं तीर्थंकर का रूप बनाऊँगा तो सुलसा अवश्य दर्शन करने आयेगी। चौथे दिन चौथे दरवाज़े पर समवसरण की रचना कर, अंबड पच्चीसवें तीर्थंकर के रूप में उसमें बिराजमान होकर देशना देने लगा। अंबड को पूरा विश्वास था कि तीर्थंकर का नाम सुनकर सुलसा जरुर आएगी, परंतु दूसरे सारे लोग आए पर सुलसा नहीं आई। इस तरफ सुलसा की सखी ने सुलसा से कहा - सुलसा, आज तो चल तेरे भगवान आए है। तब सुलसा ने दृढ़ता पूर्वक कहा- ''सखी, यह हो ही नहीं सकता कि मेरे प्रभु पधारें और मेरे हृदय में स्पंदना न हो, मेरे साढ़े तीन क्रोड़ रोम राजी प्रफुल्लित न हो, अत: यह मेरे भगवान हो ही नहीं सकते। सखी ने कहा ''यह तेरे महावीर नहीं परंतु पच्चीसवें तीर्थंकर है'' सुलसा ने कहा - ''मेरे प्रभु वीर ने बताया है कि एक अवसर्पिणी में 24 तीर्थंकर ही होते हैं, अत: यह तो कोई बहरुपिया है जो लोगों को ठगने की कोशिश कर रहा है। मेरा यह मस्तक सच्चे तीर्थंकर महावीर स्वामी के अलावा और किसी के सामने नहीं झुकेगा।''

धन्य है सुलसा को! धन्य है उसके दृढ़ सम्यक्त्व को! वह अंबड की सारी परीक्षाओं में खरी उतरी। अंबड ब्रह्मा, विष्णु, महादेव आदि के रूप बनाकर भी उसे डिगा न सका। इतना ही नहीं उसने 25 वें तीर्थंकर का रूप बनाया। हाँथ जोड़ना या पैर पड़ना तो दूर परंतु वह एक बार उसे देखने तक नहीं गई। इससे सुलसा ने जिनवाणी पर अपनी अखूट श्रद्धा का परिचय दिया। यह सारे चमत्कार सुलसा की श्रद्धा को नहीं हिला पाए।

अंत में अंबड श्रावक को भी हार माननी ही पड़ी। सुलसा के सम्यक्त्व के आगे वह नतमस्तक हो गया। अब उसे पता चला कि आखिर परमात्मा ने सुलसा को ही धर्मलाभ क्यों दिया? दूसरे दिन अंबड श्रावक का वेश धारण कर सुलसा के घर गया। वहाँ जाकर उसने कहा, ''हे भद्रे! सचमुच आपके सत्त्व को, आपके सम्यक्त्व को धन्यवाद है। शायद आपके अखण्ड, अडिग सम्यक्त्व को देखकर ही परमात्मा ने मेरे द्वारा आपके लिए धर्मलाभ कहलवाया है।'' यह सुनते ही सुलसा के चेहरे पर चार चाँद खिल गए। उसके साड़े तीन क्रोड़ रोम राजी प्रफुल्लित हो उठे। उसे ऐसा लग रहा था मानो उसे जगत की सारी खुशियाँ, सारे सुख, सारी समृद्धि प्राप्त हो गई हो। उसकी खुशियाँ उसके आँखों से हर्ष के आँसू के रूप में बहने लगी। हर्षातिरेक में उसने कहा- ''क्या! मेरे प्रभु ने मुझे धर्मलाभ भेजा है। प्रभु! आपने मुझे, मुझ अभागन को याद किया? मुझ पुण्यहीन को अपने स्मरण में रखकर आपने मेरे जीवन को धन्य बना दिया।'' इतना कहकर जिस दिशा में प्रभु विचर रहे थे। उस दिशा में सात कदम आगे जाकर परमात्मा की स्तुति करते हुए उसने कहा- ''मोहराजा के बल का मर्दन कर देने में धीर, पाप रूपी कीचड़ को स्वच्छ करने में निर्मल जल समान, कर्म रूपी धूल को हरने में हवा के समान ऐसे हे वीर प्रभु! आप सदा जयवंत रहो। हे प्रभु आपकी जय हो! विजय हो! जयजयकार हो!'' अंबड तो सुलसा के आनंद को देखता ही रह गया। मात्र परमात्मा का एक धर्मलाभ और इतनी संवेदना, उसकी अनुमोदना करते हुए वह स्वस्थान पहुँच गया।

कहते है कि हम सतत जिसका चिंतन करते है हम उसी के समान हो जाते हैं। इसी के अनुसार सुलसा के रग-रग में परमात्मा बस गए थे, अत: उसने भी तीर्थंकर नामकर्म का उपार्जन किया। आयुष्य पूर्ण कर वह देवलोक में गई। वहाँ से इसी भरत क्षेत्र में अगली चौबीसी में निर्मम नामक पन्द्रहवें तीर्थंकर बनकर मोक्ष पद प्राप्त करेगी।

बाहड़ मंत्री

बाहड़ मंत्री के पिता श्री उदयन मंत्री थे। अपने जीवन के अंतिम समय में वे बहुत दु:खी थे। उनके दु:ख का कारण था कि उन्होंने शत्रुंजय गिरिराज के जीर्ण मंदिर का जीर्णोद्धार करवाने का निर्णय किया था। लेकिन मौत का पैगाम जल्दी आने से वे जीर्णोद्धार करा नहीं सके। अपने पिता को इस तरह दु:खी देखकर बाहड़ ने उसका कारण पूछा। पिताजी की अंतर जिज्ञासा देख बाहड़ ने अपने पिताजी को वचन दिया कि वह अवश्य ही जीर्णोद्धार करवाएगा। "मेरा पुत्र बाहड़ शत्रुंजय गिरिराज पर अवश्य जीर्णोद्धार करवायेगा"। ऐसी आश को लेकर उन्होंने शांति से समाधि-मरण को प्राप्त किया।

पिताजी की अंतिम इच्छा को पूर्ण करने के लिए बाहड़ ने शत्रुंजय के जीर्ण मंदिर को नया पाषाणमय बनाने का निश्चय किया एवं जब तक मंदिर की नींव(शिलान्यास) न डाली जाए तब तक ब्रह्मचर्य का पालन, प्रतिदिन एकासणा, भूमि शयन एवं मुखवास का त्याग ऐसा अभिग्रह लिया। बाहड़ मंत्री ने संघ के साथ शत्रुंज़य तीर्थ जाने का विचार किया। दूसरे दिन ही पाटण में घोषणा करवाई कि "बाहड़ मंत्री शत्रुंजय संघ लेकर जा रहे हैं। जिनको आने की इच्छा हो वे आ सकते हैं। लेकिन उन्हें इन 6 नियमों का पालन करना पड़ेगा। (1) ब्रह्मचर्य का पालन (2) भूमि शयन (3) दिन में एक बार ही खाना (एकासणा) (4) समकितधारी बनकर रहना (5) सचित्त वस्तु का त्याग (6) पद यात्रा (पैदल यात्रा)। सब यात्रालुओं के लिए भोजन आदि की व्यवस्था बाहड़ मंत्री करेंगे"।

इस घोषणा को सुनकर धर्मप्रेमी लोग आनंद विभोर हो गए और हज़ारों नर-नारियाँ शत्रुंजय तीर्थ यात्रा में शामिल हुए। शुभ मुहूर्त में मंगल प्रयाण हुआ। हर एक गाँव में यात्रिकों का स्वागत हुआ और हर एक गाँव से दूसरे यात्रिक भी शामिल होते गए। हर एक गाँव में महामंत्री उदार मन से दान देते और जिन मंदिरों में अहोभाव से पूजा भक्ति करते। इस यात्रा का उद्देश्य तो सब लोग जानते ही थे, कि पिता उदयन मंत्री की अंतिम इच्छा को पूर्ण करने हेतु बाहड़ मंत्री गिरिराज पर नया भव्य मंदिर बनवाने के लिए संघ सहित जा रहे हैं।

संघ गिरिराज की पवित्र छाया में पहुँच गया। संघ सहित महामंत्री शत्रुंजय पर्वत पर चढ़े। हज़ारों यात्रिक बुलंद आवाज़ से आदिनाथ दादा की जयनाद करने लगे। सब लोग भाव पूर्वक दर्शन-पूजन-

चैत्यवंदन आदि करके धन्य बनें। महामंत्री बाहड़ शिल्पकारों को पाटण से अपने साथ लेकर आए थे। वही पर महामंत्री ने चारों तरफ से मंदिर का निरीक्षण करके, विचार-विमर्श कर, जीर्णोद्धार का कार्य शुरू करवाया। शत्रुंजय पर्वत पर मंदिर दो वर्ष में तैयार हुआ। बाहड़ मंत्री को समाचार मिले कि मंदिर बन गया है। तब मंत्री ने समाचार देने वाले कर्मचारी को सुवर्ण मुद्रा भेंट में दी।

दूसरे दिन ही समाचार आए कि जोरदार (घनघोर) पवन के कारण मंदिर का बहुत ज्यादा भाग टूट गया है। बाहड़ मंत्री जल्दी से गिरिराज पर चढ़े। शिल्पकार निराश होकर मंदिर के टूटे पत्थरों को देख रहे थे। मंत्रीश्वर ने पूछा -यह कैसे हुआ ?

मुख्य शिल्पकार - ''यह पहाड़ ऊँचा है। पहाड़ के मंदिरों में भमती (प्रदक्षिणा) नहीं बनानी चाहिए और हमने बनाई। उसमें हवा भर जाने के कारण मंदिर टूट गया''।

बाहड़ मंत्री -''कोई बात नहीं, फिर से बिना प्रदक्षिणा वाला मंदिर बनाओ।''

शिल्पकार - ''पर मंत्रीश्वर प्रदक्षिणा के बिना मंदिर कैसे बना सकते है ?''

बाहड़ मंत्री - '' क्यों ?क्या तकलीफ है ?''

शिल्पकार - ''बहुत बड़ी तकलीफ है, मंत्रीश्वर। बिना प्रदक्षिणा के मंदिर बनाने वालों का वंश निर्वंश होता है। उनकी वंश वृद्धि नहीं होती''।

महामंत्री ने हँसते-हँसते कहा- ''बस! यही तकलीफ है ना? इसमें चिंता करने की क्या बात है? आप दु:खी क्यों होते हो? भव्य मंदिर बनना ही चाहिए। मैं निर्वंश रहूँ उसकी मुझे चिंता नहीं है। किसको पता संतान संस्कारी होगी या कुसंस्कारी? और कौन जानता है कि मेरी संतान मेरी कीर्ति को उज्जवल करेगी ही? संतान खराब होगी तो मेरी कीर्ति को धूल में मिला देगी। इसलिए मैं निर्वंश रहूँ तो भी चलेगा। यह मंदिर ही मेरे लिए सब कुछ है, फिर से शुरू करो, जैसे हो वैसे मंदिर जल्दी पूरा होना चाहिए''। महामंत्री की निष्काम भक्ति की बात गुजरात और सौराष्ट्र के घर-घर में होने लगी। बाहड़ मंत्री ने मंदिर का काम पूर्ण करवाया। आदिनाथ दादा की प्रतिमा की प्रतिष्ठा करवाने के लिए महामंत्री ने स्वयं के आराध्य गुरुदेव श्री हेमचंद्राचार्य को प्रेम-पूर्वक विनंती की । विक्रम संवत् 1211 के शुभ दिन आचार्य देव ने बहुत ही धूम-धाम से प्रतिष्ठा की। इस महोत्सव में शामिल होने के लिए पूरे भारत से हज़ारों भाविक आत्माएँ भी आई। सब ने बाहड़ मंत्री की जिन भक्ति, पितृभक्ति और दान शूरता की दिल खोल कर प्रशंसा की। सब के मुख से एक ही बात निकल रही थी 'धन्य पिता ! धन्य पुत्र!'। इस प्रकार बाहड़ मंत्री द्वारा शत्रुञ्जय का तेरहवाँ जीर्णोद्धार हुआ।

संप्रति महाराजा

सम्राट अशोक के पौत्र तथा राजा कुणाल के पुत्र सम्राट संप्रति जगत के सर्वकालीन महान राजाओं में गौरवमय स्थान को प्राप्त है। संप्रति महाराजा अपने दादा सम्राट अशोक की तरह प्रजावत्सल, शांतिप्रिय व अहिंसा के अनुरागी और प्रतापी सम्राट थे। एक बार संप्रति महाराजा अपने महल के झरोखे में बैठे हुए थे। राजमार्ग पर जाते हुए आचार्य सुहस्ति सूरिजी को देखते ही संप्रति महाराजा को ऐसा अनुभव हुआ कि मानो वे इन साधु पुरुष से वर्षों से परिचित है। धीरे-धीरे पूर्व जन्म के स्मरण संप्रति महाराजा के चित्त में उभरने लगे। महल से नीचे उतरकर आचार्यश्री के पास जाकर चरणों में नतमस्तक हुए और उन्होंने गुरु महाराज को महल में पधारने के लिए निवेदन किया।

महल में पधारने के बाद संप्रति महाराजा ने पूछा " गुरुदेव मुझे पहचाना?" ज्ञानी आचार्य सुहस्तिसूरि ने कहा- " हाँ वत्स! तुझे पहचाना, तू पूर्वजन्म में मेरा शिष्य था।" यह सुनकर संप्रति ने कहा- "गुरुदेव आपकी कृपा से ही मैं राजा बना हूँ। मैं तो कौशंबी का एक भिखारी था। जब एक बार कौशंबी नगरी में भीषण दुष्काल पड़ा था, तब भी श्रावकगण साधुओं की उत्साह सहित वैयावच्च करते थे। उस समय मुझे रोंटी का टुकड़ा भी नहीं मिलता था। मैंने साधुओं के पास भिक्षा मांगी, तब आपने बताया कि यदि मैं दीक्षा लूँ, तभी आप मुझे भोजन दे सकते हैं। खाने के लिए मैंने दीक्षा ली और दीक्षा लेकर डटकर भोजन किया। रात को मेरे पेट में पीड़ा हुई और वह बढ़ती ही गई। तब सभी श्रावक मेरी सेवा में लग गए। यह देख मैं सोचने लगा कि कल जो मेरे सामने भी नहीं देखते थे वे श्रेष्ठी आज मेरे पैर दबा रहे हैं। धन्य है इस साधु वेश को। मेरी पीड़ा बढ़ती गई तब आपने मेरी समता और समाधि टिकाने के लिए मुझे नवकार मंत्र सुनाया। गुरुदेव आपकी कृपा से मेरा समाधिमरण हुआ और मैंने इस राजकुटुंब में जन्म लिया। यह राज्य मैं आपको समर्पित करता हूँ। इसे स्वीकार कर आप मुझे ऋणमुक्त करें।"

अपरिग्रहधारी विरक्त मुनि भला राज्य का क्या करे? आचार्यश्री ने उसे जैन धर्म का उपदेश दिया। संप्रति महाराजा धर्म के सच्चे आराधक और महान प्रभावक बनें। भारत की सीमा से परे जैन धर्म का प्रचार किया। गुरुदेव के पूर्वजन्म के और इस जन्म के उपकारों को संप्रति महाराजा ने शिरोधार्य किए।

संप्रति महाराजा ने कई व्यक्तियों को साधु के आचार सिखाकर साधु का वेश पहनाकर अनार्य देश में भी भेजे। उनके द्वारा अनार्य लोगों को भी साधु के आचारों से अवगत करवाया और उसके बाद वहाँ भी सच्चे साधुओं का विहार करवाया।

एक बार युद्ध में विजयी बनकर संप्रति महाराजा अपनी राजधानी उज्जैनी लौटे। चारों ओर हर्षोल्लास का वातावरण था , परन्तु संप्रति महाराजा की माता कंचनमाला के चेहरे पर घोर विषाद एवं निराशा के

बादल छाए हुए थे। संप्रति महाराजा ने माता के पास आकर प्रणाम करके व्यथा का कारण पूछा- "हे माता! आज मेरी विजय से सारा नगर हर्षोल्लास में डूबा हुआ है, तब आप क्यों शोक मग्न लग रही है? पुत्र जब कमाई करके घर आता है, तब माता हर्षित होती है। मैं तो भरत के तीन खंड़ों पर विजयी होकर लौटा हूँ फिर भी आपको हर्ष क्यों नहीं है?" संप्रति महाराजा मानते थे कि मुझे देखकर संपूर्ण जगत भले ही खुश होता हो, परन्तु यदि मेरी माता ही खुश न हो तो अन्य सभी का हर्ष मेरे लिये निरर्थक है। कैसी मातृभक्ति है?

यह माता परम श्रद्धालु श्राविका थी, अत: दुनिया से निराली थी। दुनिया पुत्र के देह को देखती है, जबकि श्राविका उसकी आत्मा को देखती थी। विवेकी माता ने कहा, "हे पुत्र! राज्य तो तेरी आत्मा को नरक में ले जाने वाला है। तेरे जन्म-मरण के दु:खों में वृद्धि करने वाला है। मैं यदि तेरी सच्ची जनेता हूँ, तो ऐसे राज्य की कमाई से मुझे हर्ष कैसे हो सकता है? मुझे हर्ष तब होगा, जब तूं जिस पृथ्वी को जीत कर आया है उस समग्र पृथ्वी को जिनालयों से सुशोभित कर देगा। तेरी संपत्ति से गाँव-गाँव में जिन मंदिर खड़े कर देगा।" कैसी होगी ये राजमाता! बचपन से ही उन्होंने अपने पुत्र को कैसे संस्कार दिये होंगे? उन पवित्र संस्कारों का पान करने वाले सुपुत्र माता को शोकमग्न रहने देंगे क्या? उसकी इच्छाओं का अनादर करेंगे क्या? कदापि नहीं।

संप्रति महाराजा ने माता के मुख से निकलते हुए वचनों को शिरोधार्य किये और वहीं पर संकल्प कर लिया 'सारी पृथ्वी को जिनमंदिरों से मंडित कर देने का'। ज्योतिषियों को बुलवाया और अपना आयुष्य पूछा। उत्तर मिला - राजन्, आपका आयुष्य अभी तो 100 वर्ष शेष है। "100 वर्ष के दिन कितने?" "राजन्!, 36 हजार" फिर नित्य का एक जिनमंदिर बँधवाने का संकल्प करके संप्रति महाराजा ने पृथ्वी को मंदिरों से मंडित करने का कार्य प्रारंभ किया। प्रतिदिन एक जिनालय के खनन मुहूर्त होने के समाचार सुनने के पश्चात् ही माता को प्रणाम करके भोजन करते थे। माता भी हर्षित होकर सदैव पुत्र की ललाट पर तिलक करके मंगल करती थी।

इस प्रकार संप्रति महाराजा ने 36000 नए जिनालय बनवाए और 89 हजार जिन मंदिरों का जीर्णोद्धार करवाया। अर्थात् कुल मिलाकर सवा लाख जिन मंदिर बनवाए और सवा करोड़ जिन प्रतिमाएँ भरवाई। इसके अतिरिक्त अपने राज्य में कोई जीव भूखा या दु:खी न रहे, उसके लिए 700 दानशालाएँ शुरू करवाई।

आध्यात्मिक प्रतिज्ञा पत्र

सिद्धशीला यह मेरा देश है। अरिहंत भगवान मेरे देव है। पंच महाव्रत के पालक साधु-साध्वीजी मेरे गुरु है। अरिहंत देव की आज्ञा रूप मेरा धर्म है। मैं मेरे माता-पिता, वड़ील, विद्यागुरु के प्रति हमेशा विनयवान रहूँगा। नित्य उपाश्रय तथा पाठशाला जाऊँगा। मेरे रग-रग में जैनत्व की खुमारी सदा रखूँगा। सर्व जीवों के प्रति मैत्री भाव रखूँगा। "संसार छोड़ने जैसा है, संयम लेने जैसा है, मोक्ष प्राप्त करने जैसा है" यह मेरा मुद्रा लेख है। मैं मेरे धर्म को बहुत चाहता हूँ। उसके समृद्ध एवं वैविध्य पूर्ण जायदाद का मुझे गर्व है। मैं जिनशासन का वफादार रहूँगा।

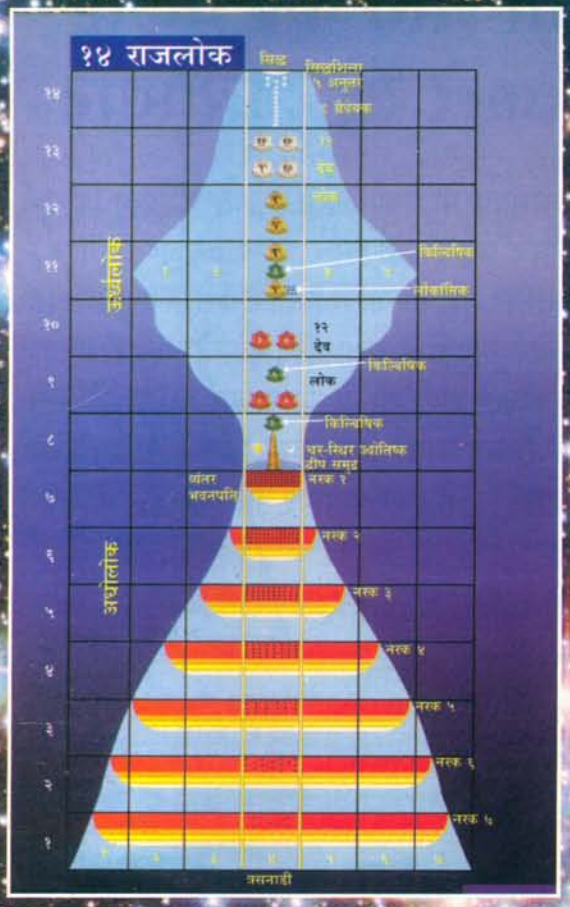

१४ राजलोक
सिद्ध
सिद्धशिला
किल्विषिक
लोकांतिक
१२
देव
लोक
किल्विषिक
किल्विषिक
चर-स्थिर ज्योतिष्क
द्वीप समुद्र
नरक १
व्यंतर
भवनपति
नरक २
नरक ३
नरक ४
नरक ५
नरक ६
नरक ७
उर्ध्वलोक
अधोलोक
त्रसनाडी

मेरु पर्वत और ज्योतिष चक्र
अभिषेक शिला
पांडुक वन
दूसरी मेखला
सोमनस वन
उर्ध्वलोक
62,500 योजन
900 यो. शनि ग्रह
897 यो. मंगल ग्रह
894 यो. गुरु ग्रह
891 यो. शुक्र ग्रह
888 यो. बुध ग्रह
884 यो. नक्षत्र
880 यो. चन्द्र
800 यो. सूर्य
790 यो. तारा
तिर्च्छालोक
नंदन वन
दूसरा कांड
पहली मेखला
500 योजन
भद्रशाल वन
भूमि स्थान में 10,000 योजन
1000 योजन
पहला कांड
अधोलोक

तत्त्वज्ञान

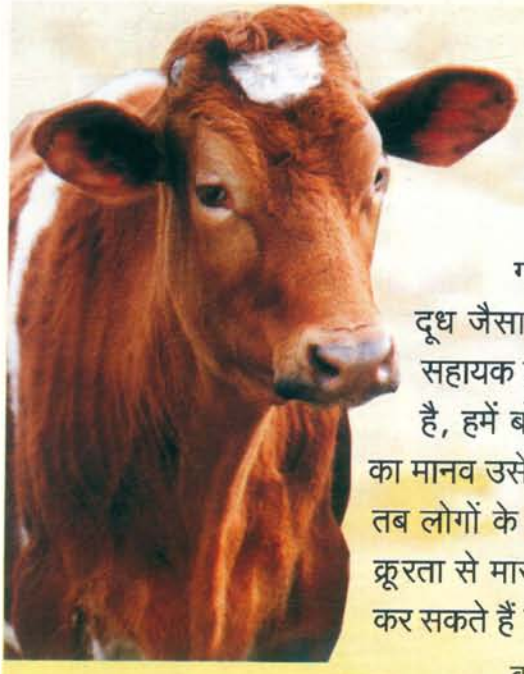

कटती गाये करे पुकार बन्द करो यह अत्याचार

गाय, जिसे गौमाता भी कहा जाता है, यह गौमाता जो हमें दूध जैसा उत्तम रसायन प्रदान कर हमारे शरीर को पुष्ट बनाने में सहायक होती है। वही जब वृद्ध हो जाती है या दूध देना बंद कर देती है, हमें बोझ प्रतीत होने लगती है तथा चन्द रूपयों के बदले आज का मानव उसे कसाई के हवाले कर देता है, या बाज़ार में छोड़ देता है, तब लोगों के दण्डे खाती है या कसाई पकड़कर ले जाते हैं। जहाँ उसे क्रूरता से मार दिया जाता है। क्या यही व्यवहार हम अपनी माँ के साथ कर सकते हैं?

बूढ़ी गाय की चमड़ी कठोर बन जाने के कारण उसे साफ्ट बनाने के लिए उसे जंजीर से बांधकर ऐसी जगह खड़ी कर देते है जहाँ से उसके शरीर पर सतत गरम पानी का जोरदार फव्वारा चालू रहता है। इसके साथ-साथ 4-5 लोग हंटर से उसे जोर-जोर से पीटते है। ताकि उसका शरीर गर्म पानी एवं हंटर की मार से सूजकर फूल जाए। इतनी भयानक पीड़ा से छूटने के लिए वह बेचारी बहुत तड़पती है लेकिन कसाईयों के हाथ में जाने के बाद आज तक कौन बचा है?

लगातार 8-10 घंटे की मार से बेचारी का शरीर सूजकर फूल जाता है और इस असहनीय पीड़ा से वह लगभग बेहोश सी हो जाती है। पर इतने से भी छुटकारा कहाँ??? इसके बाद कसाई उसे करंट लगाते है। तब वह तड़प -तड़प कर अपने प्राण त्याग देती है। फिर उसके शरीर से चमड़ी उतारी जाती है। जिसके बने हुए पर्स, बूट, बेल्ट, कोट आदि वस्तुएँ पहनकर आप घूमते हो, और बड़ी शान से अपने आपको जैन कहते हो। क्या आप जैन कहलाने के लायक हो???

जरा सोचिये? चमड़े से बनी वस्तुओं का उपयोग कर कहीं आप ही तो गौमाता की इतनी क्रूरता पूर्वक बेरहमी से की गई हत्या के जिम्मेदार नहीं है?

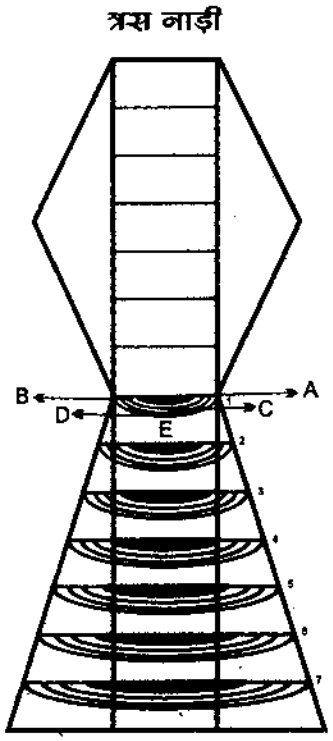

चौदह राजलोक

अधोलोक

तिर्च्छालोक के नीचे अधोलोक में सात नरक हैं। यह सातों नरक पृथ्वी उल्टे छत्र (A) के आकार वाली है। इन नरक पृथ्वियों के नीचे अनुक्रम से 20,000 योजन तक घनोदधि (घाटा पानी) (B) फिर असंख्य योजन तक घनवात (घाटा पवन) (C), उसके बाद असंख्य योजन तक तनवात (पतला पवन) (D), बाद में असंख्य योजन तक आकाश (E) रहा हुआ है। इस प्रकार प्रथम नरक पृथ्वी से सातवीं नरक पृथ्वी तक समझना।

इन नरकों में संख्याता एवं असंख्याता योजन वाले नरकावास होते हैं। ये कुल नरकावास 84 लाख है। इन नरकावासों में नारकी जीवों के उत्पन्न होने के गोखले (कुंभी) होते हैं। यही उनकी योनि है। पापी जीव नरक में जाते हैं। वहाँ उत्पन्न होते ही अंतर्मुहूर्त (48 मिनट) में शरीर गोखले से भी बड़ा हो जाने से नीचे गिरने लगता है। उतने में तुरंत परमाधामी वहाँ आकर पूर्वकृत कर्म के अनुसार उनको दु:ख देने लगते हैं। जैसे मद्य पीने वाले को गरम सीसा पीलाते हैं। परस्त्री लंपटी को अग्निमय लोह पुतली के साथ आलिंगन कराते हैं, भाले से वींधते हैं, तेल में तलते हैं, भट्टी में सेकते हैं, घाणी में पीलते हैं, करवत से काटते हैं, पक्षी सिंह आदि का रूप बनाकर पीड़ा देते हैं, खून की नदी में डूबाते हैं, तलवार के समान पत्ते वाले वन एवं गरम रेती में दौड़ाते हैं, वज्रमय कुम्भी में जब इनको तपाया जाता है तब वे पीड़ा से 500 योजन तक उछलते हैं। उछलकर जब नीचे गिरते हैं तब आकाश में पक्षी एवं नीचे शेर-चीता आदि मुँह फाड़कर खाने दौड़ते हैं। इस प्रकार अति भयंकर वेदना होती हैं।

विशेष में -

प्रथम तीन नरक में – क्षेत्रकृत, हथियार से परस्पर लड़ाई एवं परमाधामी कृत ऐसे तीन प्रकार की वेदना होती हैं।

चौथी-पाँचमी नरक में – क्षेत्रकृत तथा परस्पर हथियार से लड़ाई होती हैं।

छट्ठी-सातवीं नरक में – क्षेत्रकृत तथा परस्पर हथियार बिना लड़ते हैं एवं एक दूसरों के शरीर में प्रवेश करके भयंकर पीड़ा करते हैं।

नीचे की नरकों में परमाधामी न होने पर भी क्षेत्रकृत वेदना इतनी भयंकर होती है कि वह वेदना परमाधामी कृत वेदना से भी ज्यादा होती हैं।

सातों नरक में क्षेत्र (स्थानिक) वेदना के 10 प्रकार

1. **शीत वेदना** - हिमालय पर्वत पर बर्फ गिरता हो एवं ठंडी हवा चल रही हो उससे भी अनंतगुणी ठंडी नारकी जीव सहन करते हैं।
2. **उष्ण वेदना** - चारों तरफ अग्नि की ज्वालाएँ हो एवं ऊपर सूर्य भयंकर तप रहा हो उससे भी अधिक ताप।
3. **भूख की वेदना** - दुनियाभर की सभी चीज़ें (खाद्य-अखाद्य) खा जाये तो भी भूख नहीं मिटती।
4. **तृषा वेदना** - सभी नदी-तालाब-समुद्र का पानी पी ले तो भी शांत न हो ऐसी तृषा लगती है।
5. **खुजली की वेदना** - चाकू से खुजले तो भी खंजवाल नहीं मिटती।
6. **पराधीनता** - हमेशा पराधीन ही रहते हैं।
7. **बुखार** - हमेशा शरीर खूब गरम रहता है।
8. **दाह** - अंदर से खूब जलता है।
9. ***भय*** - परमाधामी एवं अन्य नारकों का सतत भय रहता है।
10. **शोक** - भय के कारण सतत शोक रहता है।

दीवार आदि के स्पर्श मात्र से भी उनके शरीर के टुकड़े-टुकड़े हो जाते हैं। नरक की ज़मीन मांस-खून-श्लेष्म-विष्ठा से भरपूर होती है। नरक में रंग-बिभत्स, गंध-सड़े हुए मृत कलेवर के समान, रस-कड़वा एवं स्पर्श बिच्छु के समान होता है। निर्वस्त्र एवं पंख छेदने पर जैसी पक्षी की आकृति होती है वैसी अत्यन्त बिभत्स आकृति वाले नारकी के जीव होते है।

नरक में कौन जाते हैं?

अति क्रूर सर्प, सिंहादि, पक्षी, जलचर, नरक में से आते हैं, एवं पुन: नरक में जाते हैं।

धन की लालसा, तीव्र-क्रोध, शील नहीं पालने पर, रात्रि-भोजन करने पर, शराब, मांस, होटल आदि का खाना खाने पर एवं दूसरों को संकट आदि में डालने पर जीव नरक में जाता है तथा पाप, महा मिथ्यात्व एवं आर्त्त-रौद्र ध्यान के कारण जीव नरक में जाकर ऐसी तीव्र वेदना को सहन करता है। वहाँ उसको बचाने एवं सहाय करने वाला कोई नहीं होता। वहाँ माँ-बाप या सगे-संबंधी भी नहीं होते। सहानुभूति देने वाला कोई नहीं होता।

परमाधामी देव

परम अधार्मिक होने से इन्हें परमाधामी कहा जाता है। ये जीव भव्य होते है। ये परमाधामी अपने पूर्वभव में क्रूर कर्मी, संक्लिष्ट अध्यवसायी, पाप कर्म में ही आनंद का अनुभव करने वाले होते हैं। पंचाग्निरूप मिथ्या कष्ट क्रिया वाले अज्ञानतप करने से इनको ऐसा अवतार मिलता है। नारकी जीवों को दु:ख देने में, उन पर प्रहार करने में, तथा दु:ख से उन्हें रोता देखकर परमाधामी अत्यन्त खुश होते हैं। आनंद के अतिरेक में तालियाँ बजाकर अट्टहास करते है क्योंकि नारकी को दु:ख देने में इन्हें जो आनंद आता है वह आनंद उन्हें देवलोक के नाटकादि देखने में भी नहीं आता। नारकी जीवों के दु:ख में आनंद मानने के कारण, महाकर्म बांधकर ये परमाधामी देव मरकर अंडगोलिक जल मनुष्य के रूप में उत्पन्न होते हैं।

ये अंडगोलिक मनुष्य वज्रऋषभनाराच संघयण वाले महापराक्रमी, मांस-मदिरा और स्त्रियों के महालोलुपी होते हैं। इनके शरीर में एक गोली होती है जिसके प्रभाव से जल में रहने वाले छोटे-बड़े जीव-जंतु इनके पास में नहीं आते। रत्न के व्यापारी समुद्र की गहराई से रत्न आदि लाने के लिए जल में रहने वाले जीवों से अपनी रक्षा के लिए ऐसी अण्डगोलियाँ प्राप्त करने की चाह में इन्हें पकड़ने का प्रयास करते हैं।

ये अण्डगोलिक मनुष्य अत्यन्त शक्तिशाली होने से साधारण मनुष्य को पकड़कर कच्चा ही खा लेते हैं। इन्हें पकड़ने के लिए रत्न के व्यापारी एक वज्रमय घट्टी बनाते हैं जो यंत्र से चलती है। इस घट्टी में एक बार फँसने के बाद ये अण्डगोलिक बच नहीं पाते। इस घट्टी के दो पट्ट होते है, व्यापारी इस वज्र की घट्टी के दोनों पट्ट खोलकर उसे एक जगह रख देते हैं एवं जहाँ ये अण्डगोलिक रहते हैं उस स्थान से लेकर घट्टी तक शराब, मांस आदि भोग सामग्री बिछा देते हैं। घट्टी के अंदर भी खूब अधिक मांस, शराब रख देते हैं।

ये अण्डगोलिक मांस तथा शराब को देखकर आनंद मग्न होते हुए उन्हें खाते-खाते कुछ दिनों में घट्टी में घुस जाते हैं तब वे व्यापारी बटन दबाकर घट्टी के पट्ट का दरवाज़ा बंद कर देते हैं एवं घट्टी शुरु कर देते हैं।

अण्डगोलिक उसमें पीसने लगता है। उसकी पीड़ा का कोई पार नहीं रहता। पीड़ा से वह चिल्लाने लगता है। उसकी चीख से सारा वातावरण गूंजने लगता है। उसकी हड्डियाँ मजबूत होने से जल्दी टूटती नहीं। परिणामत: उसे छ: महीनें तक घट्टी में पीला जाता है। छ: महीनें तक पीलने से अंत में उसका शरीर चूर्ण हो जाता है।

महाघोरातिघोर नारकीय यातनाएँ भोगता हुआ अण्डगोलिक अति रौद्रध्यान में मरकर नरक में उत्पन्न होता है। ''जैसी करनी वैसी भरनी'' इस कहावतानुसार दूसरों को दु:ख देने के कारण स्वयं को दु:ख भोगना पड़ता है।

सात नारकी के नाम-गोत्र-कारण एवं आयु

नरक	नाम	गोत्र	कारण	आयु	शरीर की ऊँचाई
1	धम्मा	रत्नप्रभा	रत्नमय	1 साग.	7¾ धनु. एवं 6 अंगुल
2	वंशा	शर्कराप्रभा	कंकरमय	3 साग.	15½ धनु. एवं 12 अंगुल
3	शैला	वालुकाप्रभा	रेतीमय	7 साग.	21¼ धनु.
4	अंजना	पंकप्रभा	कादवमय	10 साग.	62½ धनु.
5	रीष्टा	धूमप्रभा	धूएँ जैसी	17 साग.	125 धनु.
6	मघा	तमस्प्रभा	अंधकारमय	22 साग.	250 धनु.
7	माघवती	तमस्तमप्रभा	अतिअंधकारमय	33 साग.	500 धनु.

कितने नरक में से आने वाला जीव क्या बन सकता है?

पहली नरक में से आनेवाला चक्रवर्ती बन सकता है।

दो नरक में से आनेवाला वासुदेव बन सकता है।

तीन नरक में से आनेवाला अरिहंत बन सकता है।

चार नरक में से आनेवाला केवली बन सकता है।

पाँच नरक में से आनेवाला साधु बन सकता है।

छः नरक में से आनेवाला श्रावक बन सकता है।

सात नरक में से आनेवाला सम्यक्त्वी बन सकता है।

कौन-से जीव कहाँ तक जाते हैं?

समूर्च्छिम पंचेन्द्रिय	- 1 नरक तक	नोलिया, चूहा आदि	- 2 नरक तक
पक्षी	- 3 नरक तक	सिंह	- 4 नरक तक
सर्प	- 5 नरक तक	स्त्री	- 6 नरक तक
पुरुष एवं मत्स्य	- 7 नरक तक		

तीर्थंकर प्रभु के जन्म के समय कौन-सी नरक में कितना प्रकाश फैलता है?

पहली नरक में	- तेजस्वी सूर्य समान	दूसरी नरक में	- आच्छादित सूर्य समान
तीसरी नरक में	- तेजस्वी चन्द्र समान	चौथी नरक में	- आच्छादित चन्द्र समान

पाँचवी नरक में - ग्रह समान छट्ठी नरक में - नक्षत्र समान

सातवीं नरक में - तारा समान

नोट : 1. नरक में अवधि अथवा विभंग ज्ञान होता है।

2. नारकी जीवों का वैक्रिय शरीर होता है।

3. आसक्ति पूर्वक किये गये कार्यों के लिए अधिक कष्ट सहन करने का स्थान नरक है।

4. वर्तमान में छेवट्ठु संघयण होने के कारण दूसरी नरक तक ही जा सकते है।

5. नरक में से निकलकर जीव पंचेन्द्रिय तिर्यंच या मनुष्य ही बनता हैं।

6. सातवीं नरक से निकले हुए जीव पंचेन्द्रिय तिर्यंच ही बनते हैं।

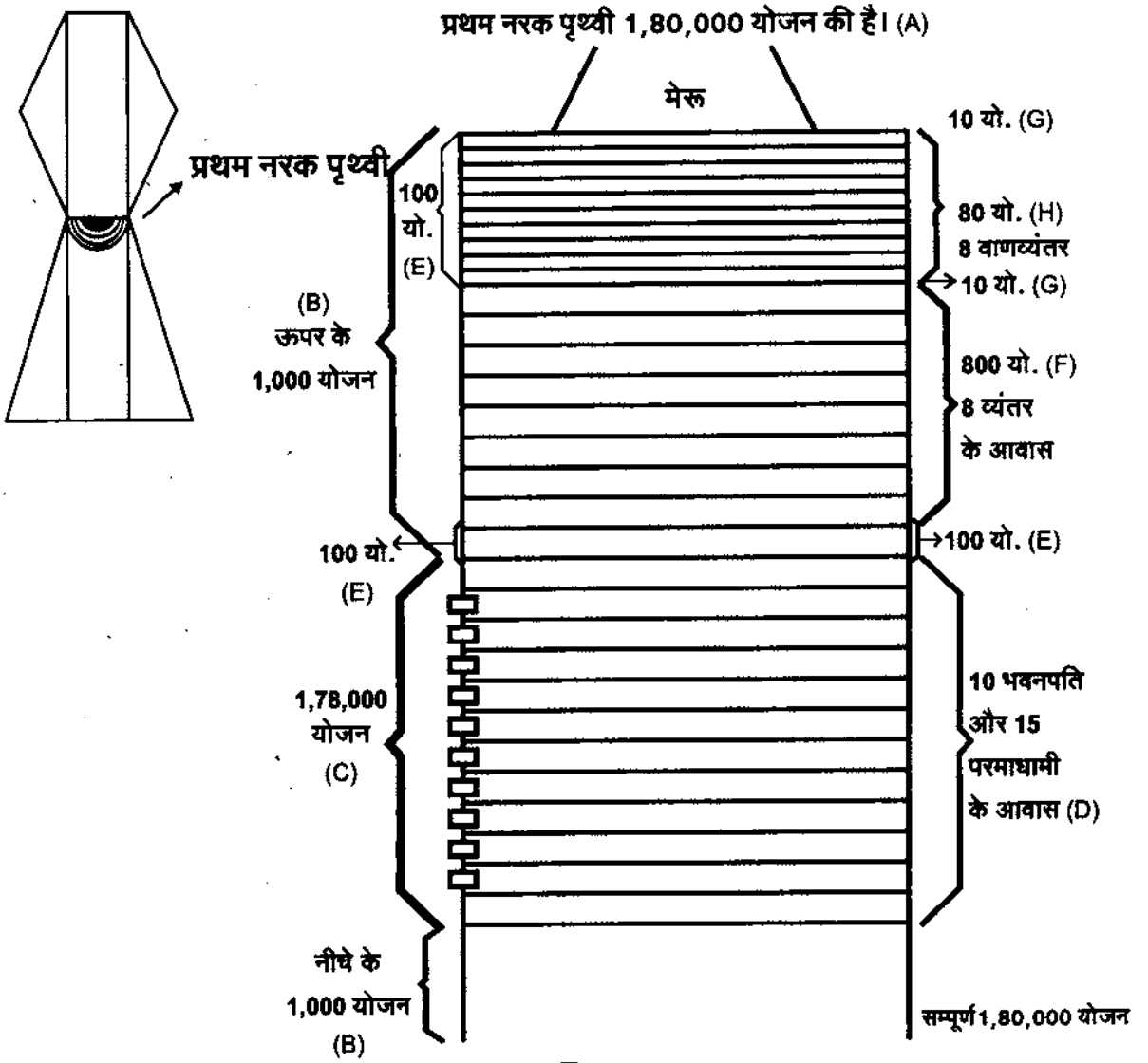

प्रथम नरक पृथ्वी

प्रथम नरक पृथ्वी 1लाख 80 हज़ार योजन ऊँची है। इसमें नरक के 13 प्रतर (माले) है। तथा बीच-बीच में भवनपति, परमाधामी, तिर्यंकजृम्भक देव, ऊपरी भाग में व्यंतर, वाणव्यंतर आदि देवों के भवन है। प्रथम नरक की सपाटी पर असंख्य द्वीप-समुद्र है।

चित्र में बताये अनुसार 1 लाख 80 हज़ार (A) में से ऊपर एवं नीचे 1000-1000 योजन (B) छोड़कर बीच के 1 लाख 78 हज़ार यो. में 13 नरक प्रतर है। इन 13 नरक प्रतर के 12 आंतरे होते हैं। (C) उसमें से नीचे-ऊपर के 1-1 आंतरे को छोड़कर 10 आंतरे में 10 भवनपति देवों के रमणीय एवं विशाल भवन एवं 15 परमाधामी देवों के स्थान है।(D)

1 लाख 80 हजार में से ऊपर जो 1000 योजन छोड़े थे, उनमें से ऊपर-नीचे 100-100 योजन छोड़कर (E) बीच के 800 योजन में 8 व्यंतर देवों के आवास स्थान हैं। (F)

ऊपर के 100 योजन में से ऊपर-नीचे 10-10 योजन छोड़कर (G) बीच के 80 योजन में 8 वाणव्यंतर देवों के सुंदर स्थान है। (H)

ये सभी भवन बाहर से गोल अंदर से चोरस एवं नीचे से कमल की कर्णिका जैसे सुंदर है। ये भवन जंबूद्वीप, महाविदेह एवं भरतक्षेत्र जितने बड़े होते हैं। भूत, पिशाच, राक्षस आदि व्यंतर देव है। ये सभी सुखी देव है, अत्यंत केलीप्रिय है। शासन देवी-देवता भी व्यंतर निकाय के ही देव है।

आपघात आदि अकृत्रिम मृत्यु पाने वाले कुछ जीव अकाम निर्जरा द्वारा अल्प आयुष्य तथा जघन्य अवधिज्ञान वाले (व्यंतर) देव भव में उत्पन्न होते हैं। वहाँ से फिरने निकले हुए भूत, पिशाच आदि देव फिरते-फिरते यहाँ आ जाते हैं एवं अवधिज्ञान से पूर्वभव का क्षेत्र देखने से पूर्वभव का वैर याद आने पर यहाँ के लोगों को हैरान भी करते हैं। ये देव आगे-आगे 25-25 योजन देखते-देखते यहाँ तक आ तो जाते हैं लेकिन पुन: अपने स्थान तक, जो उनके अवधिज्ञान के क्षेत्र की अपेक्षा से दूर होने के कारण वहाँ नहीं जा सकते हैं और यहीं पर वृक्ष आदि में अथवा मनुष्य के शरीर में प्रवेश करके जिंदगी पूरी करते हैं। स्वयं भी दु:खी होते हैं एवं दूसरों को भी दु:खी करते हैं।

भवनपति तथा परमाधामी देव के आवास स्थान समभूतला से हज़ार योजन नीचे होने की वजह से अधोलोक वासी देव कहलाते है। व्यंतर-वाणव्यंतर ऊपरी 900 योजन में होने से तिर्च्छालोक वासी देव कहलाते है।

मेरु पर्वत और ज्योतिष चक्र

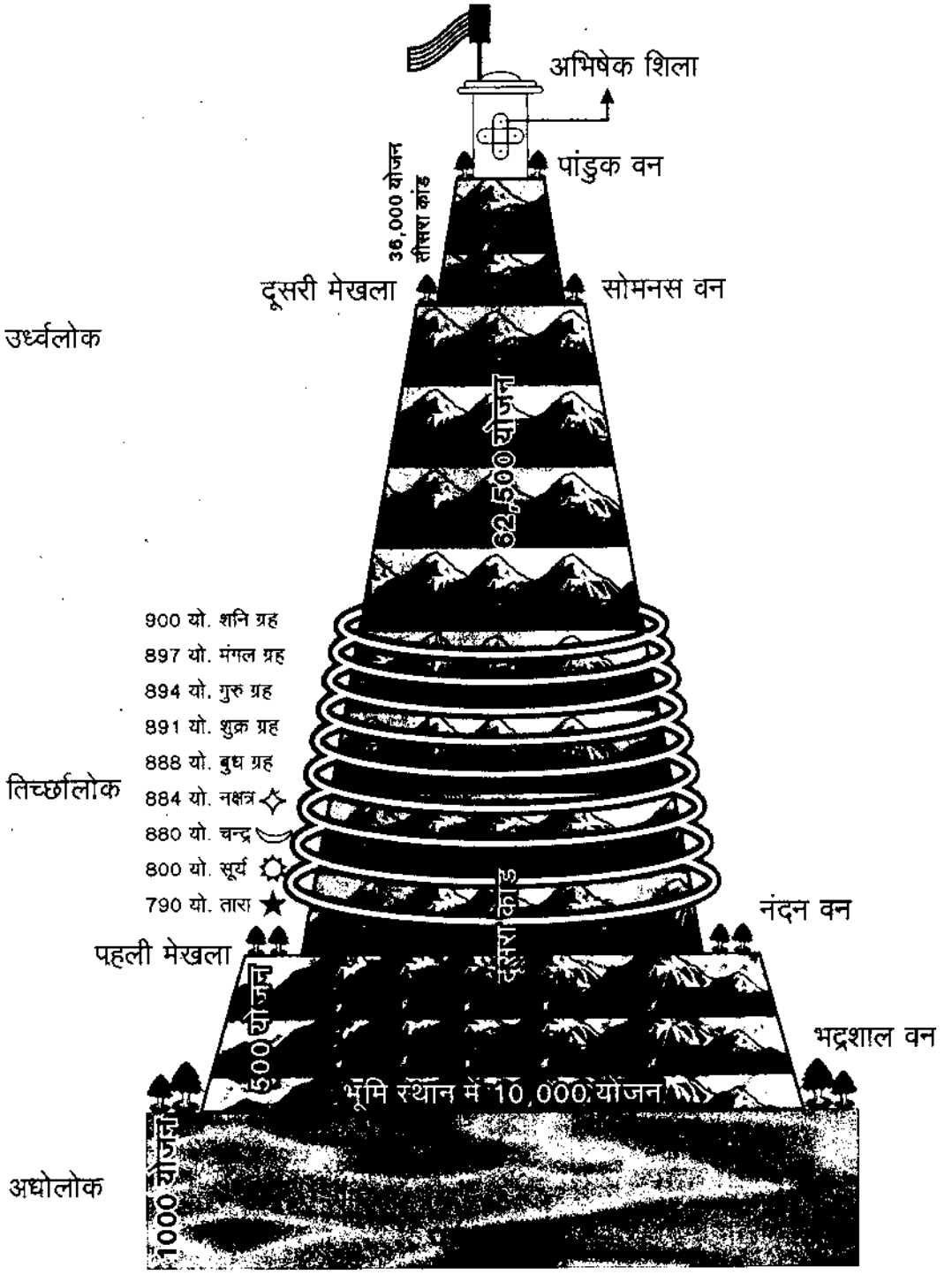

मेरु पर्वत

रत्नप्रभा नरक की सपाटी पर असंख्य द्वीप-समुद्र है। उसमें सबसे बीच में 1 लाख यो. विस्तृत जम्बूद्वीप है। इस द्वीप के बीचोबीच 1 लाख यो. ऊँचाई वाला गोल मेरु पर्वत है। जो समभूतला से 1000 यो. नीचे है, एवं 99,000 योजन समभूलता से ऊपर है। यानि कि, यह नीचे से 100 यो. अधोलोक में एवं 900 यो. तिर्च्छालोक में हैं। तथा 99,000 यो. में से 900 यो. तिर्च्छालोक है, बाकी ऊर्ध्वलोक है। इस प्रकार मेरु पर्वत तीनों लोक में रहा हुआ है। यह जमीन पर 10,000 यो. विस्तार वाला है। फिर घटता-घटता अंत में 1000 यो. चौड़ा है।

मेरु पर्वत के 4 वनखंड एवं 3 कांड-

(1) जमीन पर तलेटी में भद्रशाल वन है। यहाँ तक प्रथम कांड है।

(2) जमीन से 500 यो. ऊपर नंदनवन।

(3) नंदनवन से 62,500 यो. ऊपर सोमनस वन है। यहाँ तक द्वितीय कांड है।

(4) सोमनस वन से 36,000 यो. ऊपर पांडुक वन है। यह तीसरा कांड है।

प्रथम कांड - मिट्टी, पत्थर, कंकर एवं हीरे से बना है।

द्वितीय कांड - स्फटिकरत्न, अंकरत्न, चाँदी एवं सोने से बना हुआ है।

तृतीय कांड - लाल सोने का बना है।

एक लाख यो. के मेरु पर्वत पर सबसे ऊपर जहाँ पांडुकवन है। उसके बीच में 40 यो. की वैडुर्यरत्नमय टेकरी के समान चूलिका है तथा इसी वन के 4 दिशा में 4 शाश्वत जिन प्रासाद के बाहर बड़ी-बड़ी स्फटिक रत्नमय चार शिला है जो 500 यो. लम्बी, 250 यो. चौड़ी एवं 4 यो. ऊँची है। जिस पर प्रभु का जन्माभिषेक होता है।

शिला के नाम, दिशा तथा सिंहासन एवं प्रभु का जन्माभिषेक

पूर्व दिशा में पांडुकंबला नामक शिला - इस पर दो सिंहासन है। पूर्व महाविदेह की 16 विजयों में जन्मे हुए तीर्थंकरों का अभिषेक इस शिला पर होता है।

पश्चिम दिशा में रक्तकंबला नामक शिला - इस पर भी दो सिंहासन है। पश्चिम महाविदेह की 16 विजयों में जन्मे हुए तीर्थंकरों का अभिषेक इस शिला पर होता है।

उत्तर दिशा में अतिरक्तकंबला नामक शिला - इस पर एक सिहांसन है। ऐरावत क्षेत्र में जन्मे हुए तीर्थंकर परमात्मा का अभिषेक इस शिला पर होता है।

दक्षिण दिशा में अतिपांडुकंबला नामक शिला – इस पर एक सिंहासन है। भरत क्षेत्र में जन्मे तीर्थंकर परमात्मा का अभिषेक इस शिला पर होता है।

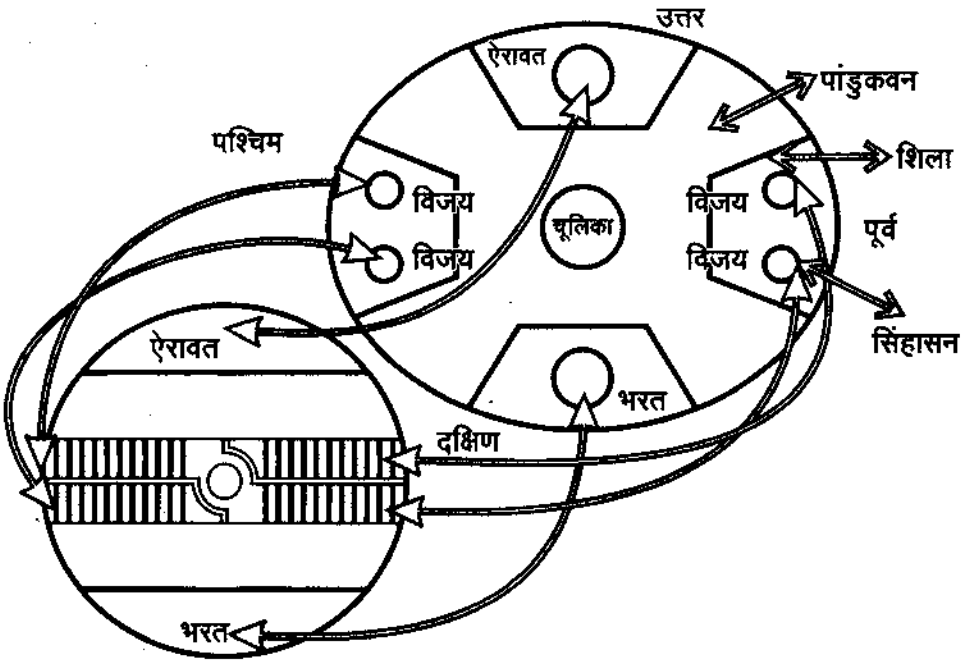

ज्योतिष चक्र

मेरु पर्वत के मूल भाग में 8 रुचक प्रदेश है। यह चौदह राजलोक का मध्य भाग है। इसे समभूतला कहते हैं। यहाँ से 790 योजन ऊपर जाने पर तारा मंडल, 800 योजन पर सूर्य, 880 योजन पर चन्द्र, 884 योजन पर 28 नक्षत्र है, 888 योजन पर बुध नामक ग्रह है , 891 योजन पर शुक्र ग्रह है, 894 योजन पर गुरु ग्रह है, 897 योजन पर मंगल ग्रह है एवं 900 योजन पर शनि ग्रह है।

इस प्रकार 790 से 900 योजन तक के कुल 110 योजन में सम्पूर्ण ज्योतिष चक्र रहा हुआ है। यह ज्योतिष चक्र (चन्द्र, सूर्य, ग्रह, नक्षत्र, तारा) असंख्य द्वीप समुद्र सभी में है। उसमें से अढ़ीद्वीप-समुद्र रूप जो मनुष्य क्षेत्र है, उसमें रहा हुआ ज्योतिष चक्र मेरु पर्वत से 1121 यो. दूर रहकर मेरु पर्वत को निरंतर प्रदक्षिणा लगाता है, अत: यह 5 चर ज्योतिष कहलाते हैं एवं अढ़ी द्वीप के बाहर जो ज्योतिष चक्र है वह अपने स्थान पर स्थिर रहने के कारण वे 5 अचर (स्थिर) ज्योतिष कहलाते हैं।

हमें बाहर से जो सूर्य चन्द्रादि दिखाई देते हैं, ये सब ज्योतिष देवों के विमान है। ये विमान आधी मोसंबी के समान आकार वाले, स्फटिक रत्नमय अतिरमणीय एवं बड़े हैं। फिर भी दूर होने के कारण छोटे

दिखाई देते हैं।

सूर्य के नीचे केतु ग्रह एवं चन्द्र से चार अंगुल नीचे राहु ग्रह चलता है। यह राहु ग्रह दो प्रकार का है। एक पर्व राहु, दूसरा नित्य राहु।

पर्व राहु पूर्णिमा या अमावस्या के दिन अचानक चन्द्र या सूर्य को ग्रसित करता है। अर्थात् इसका विमान एकदम काला होने से तथा चन्द्र एवं सूर्य की आड़ में आ जाने से चन्द्र एवं सूर्य का ग्रहण हुआ कहा जाता है। सूर्यग्रहण अमावस को एवं चन्द्रग्रहण पूनम को होता है। जघन्य से सूर्य-चन्द्र ग्रहण 6 महीने से होता है। उत्कृष्ट से चन्द्रग्रहण 42 वर्ष में और सूर्य ग्रहण 48 वर्ष में होता है। एक चन्द्र के परिवार में 66,975 क्रोड तारे होते हैं।

नित्य राहु का विमान भी काला है। कृष्ण पक्ष में नित्य राहु का विमान चन्द्र के विमान के समकक्ष में थोड़ा-थोड़ा आता जाता है। अमावस के दिन बराबर चन्द्र के पूरे विमान के नीचे आ जाने से चन्द्र का पूरा विमान ढ़क जाता है। फिर शुक्ल पक्ष में गति की तरतमता के कारण चन्द्र का विमान दिखाई देता है। पूनम के दिन नित्य राहु का विमान संपूर्ण दूर हो जाने से पूर्ण (पूरा) चंद्र दिखाई देता है।

वास्तव में सूर्य से चन्द्र का विमान बड़ा है। फिर भी चन्द्र का विमान अधिक ऊँचाई पर होने से छोटा दिखाई देता है। क्रमश: चन्द्र, सूर्य, ग्रह, नक्षत्र, तारा गति में ज्यादा और ऋद्धि में कम है। एक सूर्य अथवा चन्द्र को जंबूद्वीप का चक्कर लगाने में 60 मुहूर्त (2 दिन) लगते है। लवण समुद्र, धातकी खंड आदि के सूर्य चन्द्र भी 60 मुहूर्त में सम्पूर्ण मांडला फिरने से उनकी गति क्रमश: तीव्र-तीव्र समझनी।

ऊर्ध्वलोक

देवों के चार निकाय (प्रकार) होते हैं -

(1) भवनपति निकाय　　(2) व्यंतर निकाय

(3) ज्योतिष निकाय　　(4)वैमानिक निकाय

उनमें से वैमानिक निकाय के देव ऊर्ध्वलोक के विमान में रहते हैं।

ऊर्ध्वलोक में 12 देवलोक, 3 किल्बिषिक, 9 लोकांतिक, 9 ग्रैवेयक, 5 अनुत्तर एवं सिद्धशीला है।

12 देवलोक के नाम - (1) सौधर्म (2) ईशान (3) सनत्कुमार (4) माहेन्द्र (5) ब्रह्मलोक (6) लांतक (7) महाशुक्र (8) सहस्रार (9) आनत (10) प्राणत (11) आरण (12) अच्युत।

इन देवलोक के आधार :

पहले दो देवलोक　　- घनोदधि (गाढ़ा पानी) के ऊपर है।

उसके बाद के तीन देवलोक (यानि 3,4,5) - घनवात (गाढ़ा पवन) के ऊपर है।

उसके बाद के तीन देवलोक (यानि 6,7,8) - घनोदधि एवं घनवात पर है।

उसके बाद के सभी देवलोक (9,10,11,12, ग्रै,अ) - आकाश में अद्धर है।

कल्पोपपन्न – जिन देवलोक में कल्प अर्थात् आचार की मर्यादा, स्वामी-सेवक भाव आदि है, वे कल्पोपपन्न कहे जाते हैं। भवनपति, व्यंतर, ज्योतिष एवं 12 वैमानिक देवलोक तक कल्प की मर्यादा होने से ये सभी देवलोक कल्पोपपन्न है।शेष देवलोक कल्पातीत कहलाते है।

कल्प की मर्यादा के आधार पर कल्प के दश प्रकार है -

(1) **इन्द्र** - देवलोक के स्वामी।

(2) **सामानिक** - स्वामी नहीं होने पर भी इन्द्र जैसी ऋद्धिवाले देव।

(3) **त्रायस्त्रिंशत्** - गुरु स्थानिक देव।

(4) **पारिषद्य** - इन्द्रसभा के सभासद।

(5) **आत्मरक्षक** - अंगरक्षक देव।

(6) **लोकपाल** - कोतवाल के समान चोर से रक्षा करने वाले देव।

(7) **अनीकाधिपति** - सेनापति देव।

(8) **प्रकीर्णक** - प्रजा जैसे देव।

(9) **आभियोगिक** - नौकर जैसे देव।

(10) **किल्बिषिक** - चंडाल जैसे देव।

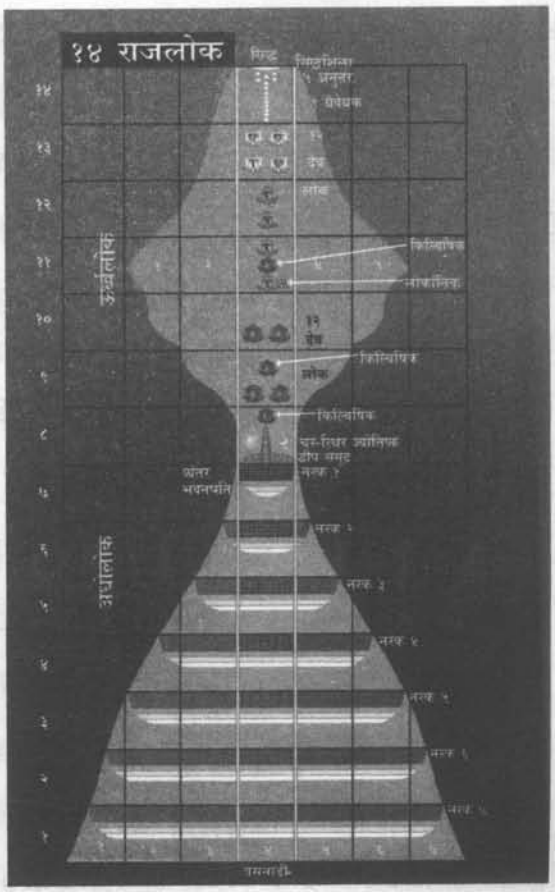

इनमें से व्यंतर एवं ज्योतिष देव में लोकपाल एवं त्रायस्त्रिंशत् जाति के देव नहीं होते है।

14 राजलोक के चित्रानुसार – इनमें नीचे के लोकांत से ऊपर तरफ के 9 वें राज में 1-2 देवलोक आमने-सामने है तथा इनके नीचे प्रथम किल्बिषिक है। 10 वें राज में 3-4 देवलोक आमने-सामने है तथा तीसरे देवलोक के नीचे दूसरा किल्बिषिक है। उसके ऊपर 11 वें राज में 5-6 देवलोक तथा 12 वें राजलोक में 7-8 देवलोक

ऊपर-नीचे है तथा छट्ठे देवलोक के नीचे तीसरा किल्बिषिक है एवं पाँचवें देवलोक के पास 9 लोकांतिक देवों के स्थान है। आठवें देवलोक के बाद 13 वें राज में 9-10 तथा11-12 देवलोक आमने-सामने हैं। उसके ऊपर 14 वें राज में 9 ग्रैवेयक, 5 अनुत्तर तथा सिद्धशीला है।

9 ग्रैवेयक तथा 5 अनुत्तर में कल्प की मर्यादा नहीं होने से तथा सभी देव इन्द्र के समान होने से ये अहमिंद्र देव कहलाते हैं। ये देव कल्पातीत है। ये देव परमात्मा के समवसरण आदि में भी नहीं जाते। पूरी जिंदगी शय्या पर लेटे-लेटे ही सुख भोगते हैं। यहाँ का सुख अद्‌भुत होता है। काया या वचन का कोई विशेष व्यापार यहाँ नहीं होता।

देवों की उत्पत्ति -

देवताओं का उपपात जन्म होता है। प्रत्येक विमान में अलग-अलग प्रकार के देवों की उपपात शय्या होती है। जिस प्रकार के देव का आयु एवं गति बांधी हो वैसे हल्के या उच्च जाति के देव वाली शय्या में जीव उत्पन्न होता है। 1 अंतर्मुहूर्त (48 मिनट से कम समय) में आहार, शरीर, इन्द्रिय, श्वासोश्वास, भाषा एवं मन इन छः पर्याप्ति को पूर्ण कर 16 वर्ष के युवान के समान शरीर वाला बन जाता है। उस समय देवलोक में उनका जन्मोत्सव मनाया जाता है। सभी देव जय-जय नंदा, जय-जय भद्दा कहकर बधाई देते हैं। जन्म के समय जैसा सुरूपवान शरीर होता है। वह मरणांत समय तक वैसा ही रहता है। बाल-वृद्धादि अवस्थाएँ वहाँ नहीं होती। हमेशा जवानी रहती है। मात्र मरण के 6 महीनें पहले इनके गले की फूल की माला करमा जाती है। जिससे मरण नज़दीक जानकर ये देव अतिशय विलाप करते हैं। यह विलाप अतिभयंकर होता है।

सभी देव अवधिज्ञानी होते हैं। कल्पातीत सिवाय के सभी देवलोक में पाँच सभा होती है।

(1) उपपात सभा - यहाँ देवदुष्य से ढ़की हुई एक शय्या होती है जिसमें देव उत्पन्न होते हैं।

(2) अभिषेक सभा - जन्म के बाद इस सभा में सुगंधित जल से स्नान करते हैं।

(3) अलंकार सभा - स्नान कर इस सभा में वस्त्रालंकारादि को धारण करते हैं।

(4) व्यवसाय सभा - सज्ज होकर इस सभा में आकर यहाँ रही हुई धार्मिक एवं अपने कर्तव्यों को बताने वाली पुस्तकों का वांचन करते हैं। यदि कोई इन्द्र उत्पत्ति समय में मिथ्यात्वी हो तो भी इन पुस्तकों को पढ़ते समय उन्हें अवश्य सम्यग् दर्शन हो जाता है। पुस्तकें सोने की एवं रत्नों के अक्षर वाली तथा शाश्वत होती है।

(5) सुधर्म सभा - इस सभा के सिद्धायतन में भगवान की पूजा करते हैं।

इस प्रकार विमान के मालिक देव जन्मते ही अपने आचारादि की जानकारी प्राप्त करते हैं। देवों के

केश (बाल), हड्डी, मांस, नख, रोम, खून, चरबी, चमड़ी, मूत्र एवं विष्टा नहीं होती। अर्थात् उनका शरीर अशुचि पदार्थों से न बनकर विशिष्ट होता है। केशादि न होने पर भी इनकी काया अति सुंदर लगती है। उत्तर वैक्रिय शरीर बनाते समय शौक से केशादि भी बनाते हैं। इनका शरीर वैक्रिय (उत्तम) पुद्गलों से बना होता हैं। विशिष्ट प्रकार की क्रिया (अनेक रूप बनाने में) करने में समर्थ होने से इनका शरीर वैक्रिय कहलाता है। यह शरीर अत्यन्त निर्मल कांतिवाला सुगंधि श्वासोश्वास वाला, मैल, पसीने से रहित, आँखों के पलकारे से रहित एवं जमीन से 4 अंगुल ऊँचा रहता है। देवताओं को कवल आहार नहीं होता। मात्र खाने की इच्छा करने पर जिस वस्तु को खाने की इच्छा हुई हो उन पुद्गलों से उनका पेट भर जाता है एवं उस वस्तु की एक ओडकार भी आ जाती है। इस कारण उन्हें नवकारशी जितना छोटा पच्चक्खाण भी भव-स्वभाव से नहीं होता।

देवलोक में रात-दिन नहीं होते। फिर भी विमानों एवं देवों के शरीर के अतितेज के कारण हमेशा सूर्य से भी अधिक प्रकाश रहता है। देवलोक में विकलेन्द्रिय की उत्पत्ति नहीं होती तथा धूल आदि भी नहीं उड़ती, इसलिए शाश्वत पदार्थ हमेशा कांतिवाले ही रहते है, बिगड़ते नहीं है।

देवलोक में देवियों की उत्पत्ति एवं भोग

देवियों की उत्पत्ति मात्र दो देवलोक तक ही है। ये देवियाँ दो प्रकार की है।

1. परिगृहिता - देव की परिणीता **2. अपरिगृहिता** - वेश्या जैसी देवी।

अपरिगृहिता देवियों को देव 8वें देवलोक तक ले जा सकते हैं। 8वें देवलोक के ऊपर देवियों का गमनागमन नहीं होता।

देवों में भोग -

1-2 देवलोक तक देव मनुष्य की तरह काया से देवी के साथ भोग भोगते हैं।

3-4 देवलोक के देव, देवी के स्पर्श से तृप्त हो जाते हैं।

5-6 देवलोक के देव, देवी के रूप को देखकर तृप्त बन जाते हैं।

7-8 देवलोक के देव,.देवी के शब्द सुनकर तृप्त बन जाते हैं।

9-10-11-12 देवलोक के देव मन में देवी की कल्पना से ही तृप्त हो जाते हैं।

इससे ऊपर ग्रैवेयक तथा अनुत्तर के देवों को भोग का विचार भी नहीं आता। ऊपर-ऊपर के देवलोक में ऋद्धि एवं आयुष्य अधिक-अधिक होने पर भी स्वाभाविक रूप से ही वासना एवं भोग का प्रमाण कम-कम हो जाता है। वास्तव में भोग-विलास का त्याग करने पर ही सच्चे सुख का अनुभव हो सकता है।

ईशान देवलोक तक के देवों का शरीर 7 हाथ ऊँचा होता है। फिर घटता-घटता अनुत्तर देवों का शरीर

मात्र 1 हाथ का होता है।

ऊपर के देवलोक में जितने सागरोपम का आयुष्य होता है। उतने हज़ार वर्ष में देवों को एक बार खाने की इच्छा होती है एवं उतने ही पखवाड़ियों में एक बार श्वासोश्वास लेते हैं। जैसे अनुत्तर वासी देवों का आयुष्य 33 सागरोपम का है तो इन देवों को 33 हज़ार वर्ष में एक बार खाने की इच्छा एवं 33 पखवाड़िये में एक बार श्वास लेते हैं एवं पासा पलटते हैं।

देवलोक में इतना सब कुछ होने पर भी शांति नहीं है। देवों में लोभ कषाय ज्यादा होता है। नीचे के देवलोक में देवियों के अपहरण के कारण तथा विमानों के लिए वारंवार झगड़े होते रहते हैं। मानसिक संक्लेश खूब रहता है। कभी-कभी इन्द्रों के बीच लड़ाई हो जाती है। इन्द्र समर्थ होने से युद्ध का स्वरूप बहुत विकराल बन जाता है। उस समय सामानिक देव युद्ध की शांति के लिए तीर्थंकर परमात्मा की दाढ़ा का अभिषेक करके न्हवण जल इन्द्रादि पर छांटते हैं। इससे कषायों की उपशांति एवं युद्ध बंद होता है। तीर्थंकर प्रभु के निर्वाण के बाद उनके अग्नि संस्कार के बाद प्रभु की चार दाढ़ाओं में से ऊपर की दो दाढ़ा सौधर्मेन्द्र एवं इशानेन्द्र लेते है एवं नीचे की दो चमरेन्द्र एवं बलीन्द्र लेते हैं।

देवलोक संबंधी विशेष विवरण

आपने देखा कि ऊपर-ऊपर के देव निर्विकारी होने से अधिक-अधिक सुखी है। ग्रैवेयक एवं अनुत्तर वासी देव तो बिल्कुल कुतूहल आदि से रहित होने से उत्तर वैक्रिय शरीरादि भी नहीं बनाते एवं अपनी शक्ति का कोई उपयोग भी नहीं करते। इतने अनासक्त होते हैं। मात्र शय्या में सोते-सोते सतत आत्मा का चिंतन-मनन करते रहते हैं, उसमें कभी शंका हो तो मन से ही वहाँ रहकर विचरते प्रभु से प्रश्न करते हैं एवं भगवान द्रव्य मन से उनको जवाब देते हैं। ये जीव अत्यन्त सुखी होते हैं। वहाँ मोतियों के झुमर होते हैं। एक से दूसरे मोती के टकराने से अति अद्‌भुत संगीत पैदा होता है।

ये जीव (ग्रैवेयक,अनुत्तर वासी) कोई जीव की हिंसा तथा झूठ आदि पाप कभी नहीं करते हैं, इतना सब कुछ होते हुए भी भव-स्वभाव से ही इनको किसी प्रकार का पच्चक्खाण नहीं होने से इनका सुख सर्वविरतिधर साधुभगवंत की अपेक्षा से बहुत थोड़ा है। अविरति वाले पौद्‌गलिक सुख की अपेक्षा विरति वाला आध्यात्मिक सुख कई गुणा अधिक होता है। उससे भी वीतराग का सुख अनंतगुणा है, अत: सुखी बनने का उपाय देवलोक न होकर संयम ही है।

कौन से जीव कौन से देवलोक तक जा सकते है ?

तापस - ज्योतिष चक्र तक

चरक/परिव्राजक	-	ब्रह्म (पाँचवें) देवलोक तक
पंचेन्द्रिय तिर्यंच	-	8वें देवलोक तक
श्रावक	-	12वें देवलोक तक
कट्टर क्रियापालक मिथ्यादृष्टि साधु	-	ग्रैवेयक तक
अप्रमत्त साधु भगवंत	-	अनुत्तर तक जाते है।

देव मरकर कहाँ तक जा सकते हैं?

दूसरे देवलोक तक के देव	-	पृथ्वी, पानी एवं वनस्पति में जा सकते हैं।
आठवें देवलोक तक के देव	-	पंचेन्द्रिय तिर्यंच बन सकते हैं।
नवमें तथा उसके ऊपर के देव	-	मात्र मनुष्य में ही उत्पन्न होते हैं।

* अब भरत क्षेत्र में छेवट्ठु संघयण होने के कारंण मात्र चार देवलोक तक ही जा सकते है।

* विशेष में कोई भी सम्यग् दृष्टि देव गर्भज मनुष्य में ही आते हैं एवं सम्यक्त्व की प्राप्ति के बाद मनुष्य वैमानिक देव का ही आयुष्य बांधते है। यदि किसी मनुष्य का पहले नरक का आयुष्य बंध हो गया हो और फिर क्षायिक सम्यक्त्व हो जाए तो नरक में भी जाते है। आयुष्य पहले न बांधा हो तो अवश्य वैमानिक में ही जाते है।

प्र.: देव मनुष्यलोक में क्यों नहीं आते?

उ.: देवलोक में दिव्य प्रेम एवं भोगों में आसक्त होने के कारण एवं मनुष्य लोक की दुर्गन्ध 400-500 योजन तक ऊपर उछलने के कारण मनुष्यलोक में देव बिना कारण नहीं आते।

प्र.: देव मनुष्य लोक में कब आते हैं?

उ.: तीर्थंकरों के पुण्य से आकर्षित देव प्रभु के 5 कल्याणकों में, ऋषि महात्माओं के तप के प्रभाव से, जन्मांतर के स्नेह अथवा द्वेष के कारण देव यहाँ आते हैं। देवलोक के सुख से भी देवों को धर्म का आकर्षण अधिक रहता है। अत: जो शुद्ध धर्म करते हैं उनको देव अवश्य सहाय करते हैं।

विमानों की संख्या तथा जिन भवन एवं जिन प्रतिमा की संख्या

प्रथम देवलोक में 32 लाख विमान एवं 13 प्रतर है। श्रेणिबद्ध विमान गोल, त्रिकोण एवं चोरस है एवं कितने ही विमान बिखरे हुए पुष्प के समान स्वस्तिक आदि आकार वाले हैं। इसी प्रकार अन्य देवलोक में भी विमानों की स्थिति समझना चाहिए। सकल तीर्थ के अनुसार संख्या की गिनती :

पहले देवलोक में विमान	-	32 लाख	मन्दिर	-	32 लाख
दूसरे देवलोक में विमान	-	28 लाख	मन्दिर	-	28 लाख
तीसरे देवलोक में विमान	-	12 लाख	मन्दिर	-	12 लाख
चौथे देवलोक में विमान	-	8 लाख	मन्दिर	-	8 लाख
पाँचवें देवलोक में विमान	-	4 लाख	मन्दिर	-	4 लाख
छट्ठे देवलोक में विमान	-	50 हज़ार	मन्दिर	-	50 हज़ार
सातवें देवलोक में विमान	-	40 हज़ार	मन्दिर	-	40 हज़ार
आठवें देवलोक में विमान	-	6 हज़ार	मन्दिर	-	6 हज़ार
नवमें-दशमें देवलोक में विमान	-	400	मन्दिर	-	400
ग्यारमें-बारमें देवलोक में विमान	-	300	मन्दिर	-	300
कुल विमानों की संख्या	-	**84,96,700**	**कुल चैत्य**		**-84,96,700**

उर्ध्वलोक के चैत्यों में प्रतिमाजी की संख्या - ये सभी मन्दिर 100 योजन लंबे 50 योजन चौड़े एवं 72 योजन ऊँचे हैं। प्रत्येक चैत्य के बीच में मणिमय पीठिका है।

उसके चारों दिशा में 27-27 जिनबिम्ब होने से $27 \times 4 = 108$

एवं 3 दरवाज़े में 1-1 चौमुखजी होने से $3 \times 4 = 012$ जिनबिम्ब हुए।

कुल = 120 जिनबिम्ब हैं।

12 देवलोक में प्रत्येक विमान में 5-5 सभा है एवं प्रत्येक सभा के 3 दरवाज़े हैं। प्रत्येक दरवाज़े में चौमुखजी है। अत: $5 \times 4 \times 3 = 60$ सभा के जिनबिम्ब हुए।

$120 + 60 = 180$ प्रतिमाजी प्रत्येक विमान में होने से

12 देवलोक के कुल चैत्य : $84,96,700 \times 180 = 1,52,94,06,000$ प्रतिमाजी हैं।

9 ग्रैवेयक में 318 विमान में = 318 चैत्य

5 अनुत्तर के 5 विमान में = 5 चैत्य

कुल = 323 चैत्य

इन विमानों में 5 सभा नहीं होने से चैत्यों की 120 प्रतिमाजी है।

अत: $323 \times 120 = 38,760$

12 देवलोक में = 84,96,700 चैत्य 1,52,94,06,000 प्रतिमाजी

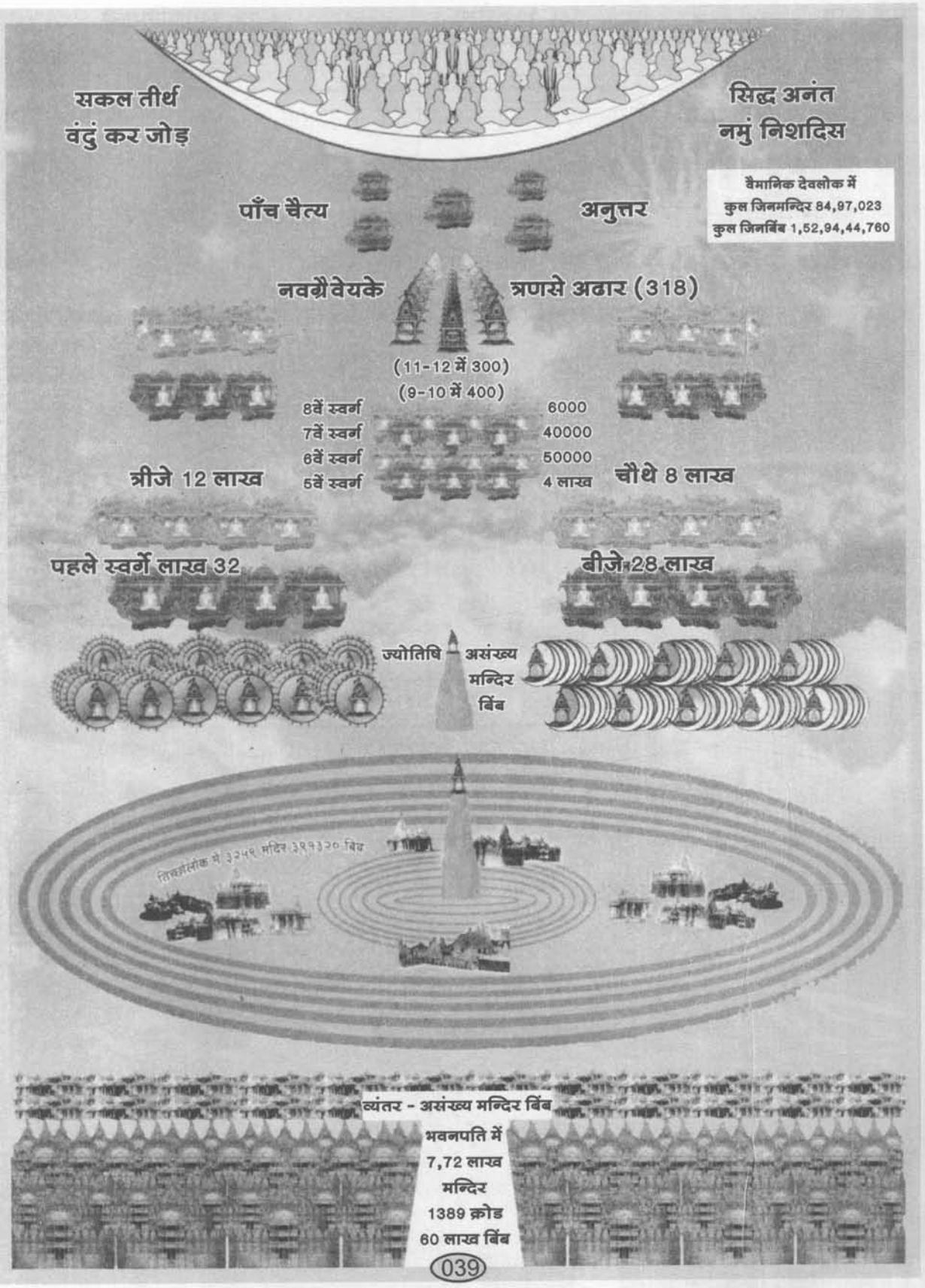

सकल तीर्थ
वंदुं कर जोड़
सिद्ध अनंत
नमुं निशदिस
वैमानिक देवलोक में
कुल जिनमन्दिर 84,97,023
कुल जिनबिंब 1,52,94,44,760
पाँच चैत्य
अनुत्तर
नवग्रैवेयके
त्रणसे अढार (318)
(11-12 में 300)
(9-10 में 400)
8वें स्वर्ग
6000
7वें स्वर्ग
40000
6वें स्वर्ग
50000
5वें स्वर्ग
4 लाख
त्रीजे 12 लाख
चौथे 8 लाख
पहले स्वर्गे लाख 32
बीजे 28 लाख
ज्योतिषि
असंख्य
मन्दिर
बिंब
व्यंतर - असंख्य मन्दिर बिंब
भवनपति में
7,72 लाख
मन्दिर
1389 क्रोड
60 लाख बिंब

उसके ऊपर	=	+ 323 चैत्य	+ 38,760 प्रतिमाजी
ऊर्ध्वलोक में कुल	**=**	**84,97,023 चैत्य**	**1,52,94,44,760 प्रतिमाजी हुए।**

अधोलोक में जिनबिंब - अधोलोक में मात्र भवनपति के 7,72,00,000 भवनों में जिनभवन है। ये सभी भवन सभा वाले होने से 180 प्रतिमाजी प्रत्येक चैत्य में हैं।

जिन भवन प्रतिमाजी की संख्या 7,72,00,000×180 = 13,89,60,00,000 प्रतिमाजी

तिर्च्छालोक में जिनबिंब - व्यंतर एवं ज्योतिष निकाय में असंख्यात जिनभवन होने से उसकी संख्या नहीं गिन सकते। द्वीप में रहे हुए शाश्वत चैत्य एवं प्रतिमाजी की गिनती की जाती है। (जो तिर्च्छालोक के विस्तार पूर्वक अभ्यास में समझ पायेंगे।)

3259 चैत्य तथा 3,91,320 प्रतिमाजी तिर्च्छालोक में है। सकल तीर्थ में ये सारी गिनती दी गई है।

तीन लोक में चैत्य तथा प्रतिमाजी

	चैत्य	जिनबिंब
उर्ध्वलोक -	84,97,023	1,52,94,44,760
अधोलोक -	+7,72,00,000	+13,89,60,00,000
तिर्च्छालोक -	3259	+3,91,320
कुल -	**8,57,00,282**	**15,42,58,36,080**

इन सभी शाश्वत चैत्यों में ऋषभ, चन्द्रानन, वारिषेण एवं वर्धमान नाम वाली प्रतिमाजी है। ये शाश्वत मन्दिर एवं प्रतिमाजी पृथ्वीकाय के बने हैं। पुद्गल होने से पूरण-गलण तो चालु ही है। फिर भी जैसे पुद्गल जाते हैं वैसे ही गृहित होने के कारण प्रतिमाजी आदि का आकार शाश्वत रहता है। तथापि पृथ्वीकाय के जीव तो बदलते ही रहते हैं।

स्तुति

मुझ रोमे-रोमे नाथ, तारा नाम नो रणकार हो,
मुझ श्वासे-श्वासे नाथा, तारा स्मरण नो धबकार हो,
प्रगट प्रभावी नाम तारुं, करे करम निकंदना,
त्रणलोक ना सवि तीर्थ ने, करुं भाव थी हुँ वंदना।

जैनाचार

प्रणिधान, सामायिक
सीमंधर स्वामी के पास
हमें जाना है ...

प्रभु के जन्म कल्याणक से बदली सृष्टि

प्रभु का जन्म होते ही सर्व शुभ ग्रह, राशि अपने उच्च स्थानों पर आ जाते है। प्रभु का जन्म सकल सृष्टि को प्रभावित करता है। प्रभु के जन्म से पृथ्वी में दूध-घी-इक्षुरस आदि की वृद्धि होती है। सर्व वनस्पतिओं में रही हुई औषधियाँ अपने-अपने प्रभाव में अतिशय वृद्धि को प्राप्त होती है। रत्न, सोना, रुपा आदि धातुओं की खानों में इन वस्तुओं की अत्याधिक उत्पत्ति होती है। समुद्र में भरती आती है। पानी अत्यन्त स्वादिष्ट एवं शीतल बनता है। पृथ्वी में रहे हुए निधान ऊपर आते हैं।

प्रभु की प्रभावकता का असर प्रकृति के साथ-साथ प्राणी जगत पर भी होता है। प्रभु के जन्म से लोगों के मन परस्पर प्रीति वाले बनते हैं। शुभ एवं सात्विक विचार तथा मंत्रों के साधकों को सिद्धियाँ सुलभ बनती है। लोगों के हृदय में सद्बुद्धि उत्पन्न होती है। प्राणीयों के मन दया से आद्र बनते हैं। उनके मुख से असत्य वचन नहीं निकलते। जीव अत्यन्त भद्रिक एवं सरल परिणाम वाले बनते है। लोगों के मनोवांछित पूर्ण होते ही सुख एवं शांति प्राप्त करते हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि परमात्मा के जन्म कल्याणक से मानों सर्व जीवों के हृदय में प्रभु की प्रीति का जन्म हुआ हो।

प्रभु के जन्म के समय मेरुगिरि पर 64 इन्द्र प्रभु का अभिषेक करते है एवं प्रभु से प्रार्थना करते है कि " हे अनंत उपकारी अर्हम् प्रभु आपके प्रदेश-प्रदेश से बहती आपकी अनंत करुणा, अपार वात्सल्य एवं असीम कृपा के प्रभाव से चौदह राजलोक के सर्वजीवों की चेतना में मोक्ष प्राप्ति के अनुकूल गुणों की प्राप्ति हो, जगत् के सर्व जीव परस्पर एक-दूसरे को वीतराग स्वरुप बनने में सहायक बने, पृथ्वी, पानी, अग्नि, वायु, वनस्पति रूप पंचभूत जगत के जीवों के आत्मविकास में अनुकूल बने।"

उस समय सकल ब्रह्माण्ड की सर्व शिव शक्तियाँ प्रभु के अभिषेक धार में अभेद बनती है। जिससे पूरे चौदह राजलोक में विशेष मंगल होता है।

धर्म क्रिया कैसे करें?

योग विंशिका में मोक्ष को सिद्ध करने के लिए धर्म क्रिया में प्रणिधानादि आशय पूर्वक धर्मक्रिया करने का विधान बताया गया है। उसका सामान्य स्वरुप इस प्रकार है-

1. प्रणिधान: कोई भी कार्य करने से पूर्व उसका लक्ष्य निर्धारित करना प्रणिधान है। दर्शन, पूजा आदि कार्य करने से पूर्व इनके प्रणिधानों को निश्चित कीजिए। प्रणिधान के बिना क्रिया में स्थिरता नहीं आती। सर्व धर्म क्रियाओं का मुख्य प्रणिधान (लक्ष्य) तो मोक्ष ही है। फिर भी जिस प्रकार एक-एक सीढ़ी चढ़कर ही मंजिल को हासिल कर सकते हैं। उसी प्रकार अहिंसा, मैत्री आदि छोटी-छोटी सिद्धि का बल प्राप्त कर ही पूर्ण सिद्धि को प्राप्त कर सकते हैं।

2. प्रवृत्ति: लक्ष्य प्राप्ति के लिए उसके उपाय में प्रवृत्ति करना। उसमें विधि-जयणा का खास ध्यान रखना चाहिए। प्रत्येक धर्म क्रिया का लक्ष्य हिंसादि पापों से निवृत्ति या राग-द्वेष से निवृत्ति होता है। लेकिन उस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए जो धर्म किया जाता है, उसमें विधि अर्थात् शास्त्रकारों ने जिस प्रकार उस क्रिया को करने को कहा हो, उस प्रकार उसकी जानकारी प्राप्त कर विधि पूर्वक क्रिया करनी चाहिए एवं उसमें जयणा का ख्याल रखना भी अत्यन्त जरुरी होता है।

3. विघ्न जय: धर्म करते यदि विघ्न आए तो, समुचित उपाय करके भी धर्म क्रिया को अस्खलित रखना।

4. सिद्धि: विघ्न आने पर भी जो अडिग रहता है उसको धर्म आत्मसात् बनता है। यह धर्म की सिद्धि है।

5. विनियोग: धर्म स्वभाव सिद्ध बनने के बाद दूसरों को उसका उपदेश देकर धर्म में जोड़ना।

इस प्रकार प्रणिधानादि पाँच के उपयोगपूर्वक किया गया धर्म अल्प अवधि में ही मोक्ष को देता है।

प्रत्येक क्रिया के प्रणिधान (संकल्प)

प्रणिधान अर्थात् क्रिया करने से पूर्व करने योग्य संकल्प, जो निम्न प्रकार से किये जा सकते है। हमेशा संकल्प पूर्वक क्रिया को करें।

मंदिर जाने का प्रणिधान: हे प्रभु! मैं 84 लाख योनि में भटक-भटक कर आया परन्तु कहीं पर भी मुझे वीतराग प्रभु के दर्शन नहीं हुए। इस जन्म में मेरा कैसा अहोभाग्य है कि मुझे तीन लोक के नाथ देवाधिदेव के दर्शन मिल रहे है। अत: हे प्रभु! मैं आपके दर्शन को शुद्ध चित्त एवं एकाग्रता पूर्वक करुँगा। "श्री तीर्थंकर गणधर प्रसादात् मम एष योग: फलतु" अर्थात् तीर्थंकर प्रभु एवं गणधर भगवंत की कृपा से मेरे यह (मंदिर जाने रुप) योग सफल बने, ऐसी धारणा कर प्रभु दर्शन करें।

व्याख्यान सुनने का प्रणिधान: सर्वज्ञ होने से जिनका ज्ञान अधूरा नहीं है एवं वीतराग होने से जो झूठ नहीं बोलते, इन दो कारणों से प्रभु की वाणी एकदम सत्य है। प्रभु ने मेरी आत्मा के हित के लिए, मुझे दु:ख में से बचाने के लिए अत्यन्त करुणा एवं तारने की बुद्धि से देशना दी है। मैं पूर्ण श्रद्धा से प्रभु की वाणी का श्रवण कर उसके अनुसार आत्मा के हित-अहित का बोध प्राप्त करुँगा। ''श्री तीर्थंकर गणधर प्रसादात् मम एष योग: फलतु'' ऐसी धारणा कर व्याख्यान श्रवण करें।

घर के काम करने से पूर्व जयणा का प्रणिधान: घर के काम में सतत पाप प्रवृत्ति करनी पड़ती है। हे प्रभु! इन कार्यों में हो सके उतनी जयणा करने की पूरी सावधानी रखूँगी। जरुरत से ज्यादा पानी, अग्नि आदि का उपयोग नहीं करुँगी। सतत मन में जीव दया का विचार रखकर सब्जी आदि सुधारुँगी। धान्य आदि छान बिनकर उपयोग में लूँगी। किसी में जीव जन्तु उत्पन्न होने से पहले ही उसका उपयोग करुँगी। जाले आदि न बंध जाये उसका ध्यान रखूँगी। घर को साफ रखूँगी, जयणा के पालन से ही मेरा श्रावक धर्म सार्थक बनेगा इस भावना से श्राविका गृह कार्य करते हुए भी जयणा धर्म का पालन कर सकती है।

व्यापार(धंधा) करने से पूर्व नीतिमत्ता का प्रणिधान: हे प्रभु! मुझमें नीति पूर्वक कमाई करने की सद्बुद्धि दे। मैं व्यापार के चक्कर में अपना नैतिक धर्म नहीं छोड़ूँगा। पूजा-पाठ, रात्रि-भोजन त्याग, प्रतिक्रमण आदि व्यवस्थित हो सके तथा 15 कर्मादान रहित ऐसा नीतिपूर्वक व्यापार करुँगा। इस प्रकार नीति को मन में रखकर व्यापार करने से श्रावक पैसे कमाने पर भी मात्र अल्प बंध ही करता है। पैसा परलोक में साथ आने वाला नहीं हैं, परंतु पैसे के लिए किया गया पाप तो अवश्य साथ में आएगा। नीति से कमाया हुआ धन धर्म-कार्य में उपयोग करने पर विशेष लाभकारी बनता है, अत: मैं नीति को ही व्यापार में मुख्यता दूँगा।

सामायिक के पूर्व प्रणिधान : प्रभु ने कैसा सुन्दर अनुष्ठान बताया है। छ: काय के जीवों को अभयदान देकर पापों को त्याग करने की अपूर्व साधना मैं करने जा रहा हूँ। मेरा कैसा सद्भाग्य है कि 48 मिनिट तक मैं साधु के जीवन का आस्वाद करुँगा, सतत अशुभ कर्मों की निर्जरा होगी। मैं इस सामायिक में 32 दोष के त्याग पूर्वक ज्ञान-दर्शन-चारित्र की आराधना करने का संकल्प करता हूँ। सामायिक में बातें, निंदा, विकथा नहीं करुँगा तथा इससे मुझे समभाव की प्राप्ति हो ''श्री तीर्थंकर गणधर प्रसादात् मम एष योग: फलतु'' सामायिक के पहले अवश्य यह धारणा करें।

प्रतिक्रमण करने का प्रणिधान : पाप के कारण जीव को दुर्गति में जाना पड़ता है तो प्रतिक्रमण एवं पश्चाताप से मैं पाप को क्यों न मिटा दूँ? प्रभु ने पाप को बिना भोगे खत्म कर देने का कितना सुंदर

उपाय बताया है। इस पाप को खत्म करने के लिए अपने मन की चंचलता को छोड़कर एकाग्रता पूर्वक पूरी विधि के उपयोग से प्रतिक्रमण करुँगा। पूरे दिन भर में किये हुए हिंसादि पापों को मैं याद करके और प्रतिक्रमण में यथास्थान पश्चाताप पूर्वक उनका मिच्छामि दुक्कड़म् दूँगा। ''श्री तीर्थंकर गणधर प्रसादात् मम एष योग: फलतु''।

आलोचना का प्रणिधान : आलोचना से कर्म रुप शल्य दूर हो जाते है, अत: इस शल्य को दूर करने में अहंकार तथा माया शल्य नहीं रखूँगा। जो भी है जैसा भी है, मैं स्पष्ट रुप से तथा पश्चाताप पूर्ण हृदय से पाप को स्वीकार कर गुरुदेव से पाप का निवेदन करुँगा। गुरुदेव की करुणा एवं कृपा को सतत नजरों के समक्ष रखूँगा। ''श्री तीर्थंकर गणधर प्रसादात् मम एष योग: फलतु''।

पूजा का प्रणिधान : वाह! तीन लोक के नाथ के स्पर्श से मेरी आत्मा को पवित्र बनाने का मौका मिल रहा है। मुझे प्रभु के एक-एक उत्तम अंगों के स्पर्श से प्रभु के जैसा सामर्थ्य एवं शक्ति प्राप्त हो। पूजा से मुझे मन की प्रसन्नता प्राप्त हो। मुझे भी प्रभु के गुणों की प्राप्ति हो। ''श्री तीर्थंकर गणधर प्रसादात् मम एष योग: फलतु''।

पौषध का प्रणिधान : पौषध साधु जीवन का आस्वाद लेने की उत्तम क्रिया है। पौषध में मैं अप्रमत्त रुप से क्रिया और स्वाध्याय करुँगा, लेकिन इस अमूल्य समय को बातों में एवं नींद में व्यर्थ नहीं करुँगा। ''श्री तीर्थंकर गणधर प्रसादात् मम एष योग: फलतु''।

जाप के पूर्व प्रणिधान : अरिहंत प्रभु के नाम को ग्रहण कर जीभ और मन को पवित्र बनाना है। प्रभु के नाम से उत्तम वस्तु इस दुनिया में क्या है? जिसके लिए मन को जाप छोड़कर बाहर जाना पड़े, अत: मैं एकाग्रता पूर्वक जाप करुँगा। ''श्री तीर्थंकर गणधर प्रसादात् मम एष योग: फलतु''।

गोचरी वहोराते समय का प्रणिधान : आज मेरे अपूर्व पुण्योदय से गुरुभगवंत मेरे आंगन में पधारे है तो अत्यन्त भक्ति पूर्वक में उनका स्वागत करुँ। निर्दोष गोचरी का दान कर मैं कृतार्थ बनूँ। इन गुरुदेव को दान करने से मेरी आत्मा भवोदधि से पार हो जायेगी। ''श्री तीर्थंकर गणधर प्रसादात् मम एष योग: फलतु''।

मंदिर बंधाने का प्रणिधान : घर बांधकर तो मैंने बहुत पाप किये है, लेकिन आज मुझे परमात्मा का मंदिर बंधाने का सुयोग मिला है। तो मैं इसके निर्माण में अपने घर से भी अधिक ध्यान एवं छाने हुए पानी का उपयोग आदि जयणा रखूँगा। देवाधिदेव के मंदिर से कितने भव्य जीव तीर जायेंगे; इसका मुझे पूरा लाभ उठाना है। बाह्य मंदिर में प्रतिष्ठा के साथ मेरे मन मन्दिर में भी प्रभु की प्रतिष्ठा हो। ''श्री तीर्थंकर गणधर प्रसादात् मम एष योग: फलतु''।

सामायिक

सामायिक यानि क्या? 48 मिनिट तक मन, वचन, काया को समभाव में रखना। इससे समता की प्राप्ति होती है, एवं अनंत कर्मों का नाश होता है।

सामायिक के कितने प्रकार है? सामायिक के 4 प्रकार है:-

1. श्रुत सामायिक – इरियावहियं करके जब तक व्याख्यानादि में जिनवाणी का श्रवण करते है। वह श्रुत सामायिक है।
2. समकित सामायिक – सुदेव-सुगुरु-सुधर्म पर श्रद्धा रखनी यह समकित सामायिक है। सम्यक्त्व सामायिक लेकर जीव परलोक से आ सकता है।
3. देशविरति सामायिक – व्रतधारी श्रावक बनना देशविरति सामायिक है। वर्तमान में श्रावक जो 'करेमि भंते' का उच्चार पूर्वक 48 मिनिट की सामायिक करते है। वह भी देशविरति सामायिक है। इस चेप्टर में मुख्यतया इसी सामायिक की विचारणा की गई है।
4. सर्वविरति सामायिक – चारित्र ग्रहण करना यह सर्वविरति सामायिक है।

सामायिक कौन कर सकता है? प्रभु ने बताया है कि 8वर्ष के पहले जीव को सामायिक के परिणाम प्राप्त नहीं होते। इसलिए 8 वर्ष के बालक से लेकर जीवन के अंत समय तक सभी व्यक्ति सामायिक कर सकते है। आठ वर्ष के पहले भी संस्कार हेतु बालक को सामायिक करवा सकते है।

सामायिक कहाँ बैठकर करनी चाहिए? हो सके वहाँ तक सामायिक पौषधशाला में करनी चाहिए और यदि घर पर करो तो एकांत स्थान में बैठकर करनी चाहिए। हर घर में आराधना करने के लिए अलग रुम होनी ही चाहिए।

सामायिक कब करनी? 24 घंटे में जब भी आपका चित्त शांत, प्रशांत, विक्षेप रहित हो तब सामायिक कर सकते है।

सामायिक एक साथ में कितनी करनी? इसकी कोई सीमा नहीं है। पूरे दिन में जितनी ज्यादा सामायिक करें उतना अधिक लाभ होता है। एक साथ बिना पारे 3 सामायिक कर सकते है फिर चौथी सामायिक लेना हो तो सामायिक पार कर पुन: लेनी चाहिए। एक साथ 3-6 या 10 सामायिक "अहन्नं भंते ..." देशावगासिक के पच्चक्खाण से उच्चर सकते है।

सामायिक कैसे करनी? सर्व उपकरणों को साथ लेकर, मन-वचन-काया के 32 दोषों को टालकर

आत्मा को समभाव में रखते हुए सामायिक करना।

सामायिक कितने समय की होती है? करेमि भंते में 'जाव नियमं' शब्द के द्वारा सामायिक में 48 मिनिट रहने की मर्यादा बताई है। सामायिक लेते ही समय देख लेना चाहिए एवं 48 मिनिट का पूरा उपयोग रखना चाहिए। उपयोग नहीं रखने पर 'स्मृति भंग' नामक अतिचार लगता है।

सामायिक लेने के बाद तुरंत घड़ी देखना आवश्यक है। मान लो कि प्रतिदिन प्रतिक्रमण में सामायिक आ ही जाती है फिर भी घडी देखना इसलिए जरूरी है कि अचानक कोई बुलावा आ जाए तो जिसने घड़ी देखी हो वह सामायिक का समय पूरा होने पर पार सकता है। अन्यथा अंदाज से पारने पर दोष लगता है तथा अंदाज से सामायिक पारने पर सामायिक काल से अधिक समय हो गया हो तो भी दोष लगता है।

प्र. : नित्य सामायिक के नियम वालों को रेलगाडी आदि में क्या करना चाहिए ?

उ. : गाडी आदि में सामायिक तो नहीं हो सकती, लेकिन चलती गाडी में भी 3 नवकार गिनकर 48 मिनिट धर्माराधना करने पर नियम की सापेक्षता रह सकती है।

प्र. : स्थापनाचार्यजी स्थापित कर सामायिक लेने के बाद अन्यत्र जा सकते है ? यदि जाना हो तो क्या करें ?

उ. : सामान्य से सामायिक में कहीं जाना-आना नहीं चाहिए। फिर भी विशेष लाभकारी व्याख्यान, वाचना आदि के लिए एक स्थान से दूसरे स्थान में जाना पडे तो नवकार से स्थापनाचार्यजी का उत्थापन कर, जहाँ जाना हो वहाँ ले जाये। वहाँ गुरु भगवंत के स्थापनाचार्यजी हो तो स्थापना करने की जरूरत नहीं है यदि न हो तो पुन: नवकार, पंचिंदिय से स्थापना कर इरियावहियं करें।

सामायिक के उपकरण

चरवला, कटासणा, मुँहपत्ति, स्थापनाचार्यजी, घडी, शुद्ध वस्त्र, नवकारवाली, ठवणी, पुस्तक।

1. चरवला – यह सामायिक में पूंजने, चलने, उठने में काम आता है। इसके बिना सामायिक नहीं ले सकते, क्योंकि कोई जीव आपके पास आ जाए तो उसे कैसे दूर करेंगे ? हाथ में पकडेंगे तो उसे दुःख होगा अथवा कभी मर भी सकता है एवं सामायिक में कोई पुस्तक आदि वस्तु लेते रखते समय पूंजकर ही ली या रखी जा सकती है। कटासणा बिछाने से पूर्व आँखों से भूमि देखना एवं चरवले से पूंजना चाहिए। सामायिक में उठना-बैठना हो तो इससे शरीर को पूंजकर बैठना एवं चलना हो तो जमीन को पूंजते-पूंजते चलना चाहिए।

माप – 24 दंडकों एवं 8 कर्मों से मुक्त होने के लिए कुल 32 अंगुल का चरवला होता है। इसमें 24 अंगुल की दंडी एवं 8 अंगुल की दशी होती है। चरवला के ऊपर डोरी होनी जरूरी है। [illegible]

रखकर ऊपर टाँग सके। चरवला श्रावक का चिन्ह है।

2. कटासणा -इसे बेटका भी कहते है। यह सामायिक में बैठने के लिए काम आता है। ऊन की उष्मा से जीव-जंतु की सुरक्षा होती है साथ ही पृथ्वी में रहे गुरुत्वाकर्षण से शरीर की ऊर्जा को ज़मीन खींच न ले, इसलिए भी शरीर एवं पृथ्वी के बीच कटासणा बिछाने से शरीर की ऊर्जा नष्ट नहीं होती है। कटासणे पर नाम लिखने पर ज्ञान की आशातना होती है। कटासणा हो सके तो सफेद रखें, जिससे जयणा हो सके एवं उसकी किनारी सिली हुई नहीं होनी चाहिए तथा उस पर किसी प्रकार का कसिंदा भी नहीं निकलवाना चाहिए।

माप – सुख पूर्वक बैठ सके उतना।

3. मुँहपत्ति – भाषा समिति का पालन करने में यह उपयोगी बनती है। सामायिक में संसार संबंधी बातें तो कर ही नहीं सकते। लेकिन जो कुछ स्वाध्याय आदि करते है, उस समय भी मुख से निकलने वाले वायु आदि से सचित्त वायु एवं सांपातिक (उड़ते हुए) जीवों की रक्षा के लिए इसका उपयोग जरुरी है। एक फायदा यह भी है कि मुँहपत्ति सामने आने पर हमें क्रोध आने पर भी हम गाली आदि खराब शब्द नहीं बोल पाते। इसलिए जब भी आपको क्रोध आये, झगड़ने की इच्छा हुई हो तब मुख के सामने हाथ रख लें, क्रोध चला जायेगा।

* मुँहपत्ति में एक तरफ किनारी होती है यानि एक मनुष्य गति से ही मोक्ष में जा सकते है।
* मुँहपत्ति को समेटने पर ढ़ाई मोड़ होते है यानि ढ़ाई द्वीप से ही मोक्ष में जा सकते है।
* तीन मोड़ दर्शन-ज्ञान-चारित्र के प्रतीक है।
* इस पर पेंटिंग व कसिंदा (कढ़ाई) करने से दोष लगता है।

माप – खुद की एक वेंत एवं चार अंगुल यानि चारों तरफ 16-16 अंगुल होनी चाहिए। 16 कषायों को नाश करने के लिए 16 अंगुल की मुँहपत्ति होती है।

4. स्थापनाचार्यजी – इसके दो प्रकार होते हैं। एक तो जो साधु-साध्वी भगवंत के पास होते है। उसे यावत्कथित कहते है। इनके सामने सामायिक करने के लिए स्थापना करने की जरुरत नहीं होती। दूसरी ठवणी पर पुस्तक की स्थापना की जाती है। इसमें ज्ञान, दर्शन एवं चारित्र के कोई भी साधन से स्थापना कर सकते है पर वर्तमान में नवकार, पंचिंदिय वाली पुस्तिका से ही स्थापना करने की समाचारी है। स्थापनाचार्यजी में सुधर्मास्वामीजी की परंपरा होने से इनकी स्थापना होती है।

माप – इसका कोई निश्चित माप नहीं है। स्थापनाचार्यजी की पडिलेहन 13 बोल से करनी चाहिए।

स्थापनाचार्यजी पडिलेहन के 13 बोल – 1. शुद्ध स्वरुप के धारक गुरु 2. ज्ञानमय 3. दर्शनमय 4.

चारित्रमय 5. शुद्ध श्रद्धामय 6. शुद्ध प्ररुपणामय 7. शुद्ध स्पर्शनामय 8. पंचाचार पाले 9. पलावे 10. अनुमोदे 11. मन गुप्ति 12. वचन गुप्ति 13. काय गुप्ति ए गुप्ता।

स्थापनाचार्यजी इन बोलों से पडिलेहन करें। उसकी ठवणी-मुँहपत्ति आदि मुँहपत्ति के प्रथम 25 बोल से पडिलेहण करें।

सामायिक के पहले करने योग्य भावना – प्रभु ने कहा है कि सामायिक में श्रावक भी साधु के समान कहलाता है, वैसे सच्चा साधु तो मैं कब बनूँगा? लेकिन 48 मिनिट की सामायिक में तो साधु जीवन का आस्वादन लूँ। जीव जब तक सामायिक में रहता है तब तक सतत अशुभ कर्मों का नाश करता है; अत: मैं इस सामायिक के अवसर को सार्थक बनाऊँ, ऐसे शुभ भाव से आत्मा को वासित करें, जिससे पाप करने की इच्छा का त्याग हो जाये।

घर में पूरे दिन षट्काय जीव के कूटे में जीव पाप का बंध करता है तो कम से कम जब सामायिक करते है, तब इन पापों से बचने का अवसर मिलता है। इस प्रकार मन में शुभ भाव लाकर हर्ष के साथ सामायिक करने के लिए कटिबद्ध बनें।

सामायिक का रहस्य – सामायिक का रहस्य करेमि भंते में है। इस करेमि भंते को द्वादशांगी का सार कहा गया है। इसके मुख्य दो अंश है:- एक ''सावज्जं जोगं पच्चक्खामि'' इससे हम विरति में आते है। पाप से अटकने का यह पच्चक्खाण है। मन-वचन-काय से स्वयं पाप नहीं करना एवं दूसरों से नहीं करवाना। इस प्रकार यह पच्चक्खाण छ: कोटी की शुद्धि वाला कहलाता है। इसमें भूतकाल में किये गये पापों का पश्चाताप वर्तमान में पाप से अटकना एवं भविष्य में पाप नहीं करने की प्रतिज्ञा है, क्योंकि जब तक आत्मा पाप से नहीं अटकती तब तक उसमें समभाव नहीं आ सकता। समभाव की विशेष प्राप्ति के लिए दूसरा अंश है ''जाव नियमं पज्जुवासामि'' इससे सामायिक में रत्नत्रयी की आराधना करने का विधान है। इसलिए करेमि भंते रुप सामायिक का पच्चक्खाण लेने के बाद पाप का व्यापार करना उचित नहीं है।

हमारी बहनें सामायिक में कच्चा पानी, अग्नि, हरी वनस्पति या सचित्त मिट्टी आदि को तो नहीं छूती लेकिन उन्हें यह भी पता होना चाहिए कि जैसे सामायिक में कच्चे पानी आदि का स्पर्श नहीं किया जाता, वैसे ही संसार की बातें, निंदा, संक्लेश, पैसे, मोबाईल, सेल वाली घड़ी आदि का भी स्पर्श सावद्य होने से नहीं कर सकते है। सामायिक के 32 दोषों का भी त्याग करना होता है। वे इस प्रकार है -

मन के दस दोष– 1.शत्रु को देखकर द्वेष-क्रोध करना। 2.अविवेक पूर्ण विचार करना अर्थात् सांसारिक बातों का विचार करना। 3.शुभ भावों का विचार न करना। 4.मन में कंटाला आना। 5.यश की

इच्छा करना। 6.विनय न करना। 7.भयभीत बनना। 8.धंधे की चिंता करना। 9.सामायिक के फल में शंका करना। 10. प्रभावना आदि की इच्छा से क्रिया करना।

वचन के दस दोष – 1.मोबाईल अथवा फोन से बातें करना अथवा करवाना, घर के किसी काम का आदेश देना। 2.गलत बातों में हामी भरना। 3.जीव विराधना आदि जिसमें हो ऐसे पापकर्म करना। 4.झगड़ा अथवा क्लेश करना। 5.गृहस्थों का मीठे शब्दों से स्वागत करना। 6.गाली देना। 7.बालक को खेलाना। 8.विकथा करना। 9.व्यर्थ में बड़-बड़ करना। 10.हँसी मजाक करना।

काया के 12 दोष – 1.बार बार एक स्थान से दूसरे स्थान बिना कारण एवं बिना पूंजे जाना। 2.चारों तरफ देखना। 3.पाप कर्म करना। 4.आलस्य मरोड़ना। 5.अभिनय (हाव-भाव) पूर्वक बैठना। 6.दीवार आदि का सहारा लेकर बैठना। 7.शरीर का मैल उतारना। 8.खुजली खुजलाना। 9.पैर पर पैर चढ़ाकर बैठना। 10.कामवासना से अंग खुल्ले रखना। 11.जंतु-कीटाणु के उपद्रव से भयभीत होकर सम्पूर्ण अंग ढँकना। 12.निद्रा करना। इन सब दोषों से रहित शुद्ध सामायिक करनी चाहिए।

सामायिक से लाभ

भगवान ने बताया है- एक सामायिक करने से जीव 92, 59, 25, 925पल्योपम अर्थात् असंख्य वर्ष के देवलोक के आयुष्य का बंध करता है अर्थात् सामायिक के प्रत्येक सेकैंड में जीव 3 लाख पल्योपम जितना देवभव का आयुष्य बांध सकता है। दूसरी बात-श्रेणिक महाराजा ने भगवान से नरक निवारण के उपाय पूछें उसमें से एक उपाय था-यदि पुणिया श्रावक की एक सामायिक खरीद ली जाये तो नरक टल सकती है। श्रेणिक राजा पुणिया श्रावक के घर पहुँचे और सामायिक देने को कहा। चाहे एक सामायिक के लिए राज्य भी दे देना पड़े तो श्रेणिक राजा तैयार थे। पुणिया ने कहा कि " हे राजन्! मैं सामायिक करना जानता हूँ, लेकिन बेचना नहीं। चलो, हम प्रभु से ही इसके बारे में पूछ लेते है।" दोनों प्रभु के पास पहुँचे एवं एक सामायिक का मूल्य पूछा। प्रभु ने कहा "एक व्यक्ति यदि प्रतिदिन सोने (सुवर्ण) की एक लाख हांडी दान में दे एवं दूसरा मात्र एक सामायिक ही करें, तो इन दोनों में सामायिक करने वाले को ही ज्यादा लाभ मिलता है", अर्थात् एक लाख सोने की हांडी दान देने से भी एक सामायिक का फल अधिक है, अतः अधिक से अधिक सामायिक करनी चाहिए।

सामायिक लेने के हेतु

प्रथम गुरु स्थापना : क्रिया की सफलता गुरु की निश्रा में होने से स्थापना की जाती है। गुरु की सानिध्यता का भान साधक को विराधना से बचाने में समर्थ बनाता है। जैसे सेठ की उपस्थिति होने मात्र से नौकर

कामचोरी आदि नहीं करते। इसी प्रकार गुरु का सानिध्य होने मात्र से अप्रमत्त क्रिया होती है।

गुरुवंदन : विनय हेतु किया जाता है।

एक **खमासमणा** देकर, **इच्छा .... सामायिक लेने की मुँहपत्ति पडिलेहुं ?**

प्रत्येक आदेश के पूर्व में खमासमणा विनय के लिए दिया जाता है। क्रिया में जयणा की मुख्यता होने से मुँहपत्ति की पडिलेहन की जाती है।

इच्छं गुरु के आदेश को स्वीकारने के लिए प्रत्येक आदेश के बाद 'इच्छ' कहा जाता है।

एक खमासमणा, इच्छाकारेण संदिसह भगवन्! सामायिक संदिसाहुं ?

गुरु से सामायिक करने की आज्ञा इस सूत्र से मांगी जाती है।

गुरु कहे - **संदिसावेह** अर्थात् आज्ञा दें।

इच्छं आपकी आज्ञा स्वीकारता हूँ।

एक खमासमणा, इच्छा. सामायिक ठाऊँ ?

इस आदेश से सामायिक में स्थिर होने की आज्ञा मांगी जाती है।

गुरु कहे - **ठावेह** अर्थात् स्थिर होने की आज्ञा दें।

इच्छं, मैं सामायिक में स्थिर होने की आज्ञा स्वीकारता हूँ।

हाथ जोड़कर **नवकार** : सामायिक दंडक उच्चरने से पूर्व मंगल के लिए एक नवकार गिनी जाती है।

इच्छकारी .... उच्चरावोजी : गुरु के पास सामायिक दंडक उच्चरने की प्रार्थना है।

करेमि भंते : यदि गुरु हो तो करेमि भंते उनसे उच्चरें। उनके अभाव में विनय हेतु पौषधधारी अथवा अपने पूर्व जिसने सामायिक ले ली हो उनसे उच्चरना चाहिए तथा कोई न हो तो स्वयं उच्चरें।

खमासमणा पूर्वक इरियावहिं सूत्र : खमासमणा विनय के लिए है। इरियावहियं सूत्र से मार्ग में जो कोई जीव विराधना हुई हो उनका मिच्छामि दुक्कड़ दिया जाता है, क्योंकि जब तक सर्व जीव से क्षमा नहीं मांगते तब तक सामायिक में स्थिरता भी नहीं आती। इस सूत्र के द्वारा गुरु के समक्ष हमने पापों की आलोचना की तब गुरु ने एक लोगस्स का प्रायश्चित दिया।

तस्स उत्तरी : इसमें काउस्सग्ग करने के 4 हेतु बताये गये हैं।

अन्नत्थ : इसमें काउस्सग्ग में कुछ छूट रखी गई है।

काउस्सग्ग : इरियावहियं में 25 श्वासोश्वास प्रमाण का काउस्सग्ग होता है। लोगस्स सूत्र के प्रत्येक पद का प्रमाण एक श्वासोश्वास का गिना है, अर्थात् "चंदेसु निम्मलयरा" तक 25 श्वासोश्वास होते हैं। जिन्हें लोगस्स

नहीं आता हो वे 4 नवकार गिने।

प्रायश्चित में गुरु भगवंत तप देते है। 12 प्रकार के तप में काउस्सग्ग भी एक तप है, इसलिए यहाँ जितना काउस्सग्ग कहा है उतना ही करना। ज्यादा-कम करे तो अविधि है।

प्रगट लोगस्स : इसमें 24 तीर्थंकर भगवंत के नाम स्तुति रुप होने से मंगल भूत है। काउस्सग्ग द्वारा प्रायश्चित करने से प्राप्त आनंद की अभिव्यक्ति के लिए 24 तीर्थंकरों के नाम स्मरण रुप लोगस्स बोला जाता है।

(नोट : सर्व क्रिया के प्रारंभ में इरियावहियं करनी चाहिए। इस अपेक्षा से चार थुई में इरियावहियं पहले होती है तो यह हेतु पूर्व में समझ ले। त्रिस्तुतिक मत के अनुसार आवश्यक चूर्णि, योगशास्त्र, श्रावक धर्म विधि प्रकरण आदि के आधार से 'करेमि भंते' उच्चरने के बाद इरियावहियं का विधान है।)

खमासमणा, इच्छा. बेसणे संदिसाहुँ ? इससे एक आसन पर स्थिर होने का आदेश मांगा गया है। इससे यह सिद्ध होता है कि सामायिक खड़े-खड़े ली जाती है। जो खड़ा हो वही बैठने का आदेश ले सकता है।

खमासमणा, इच्छा. बेसणे ठाऊँ ? इससे एक आसन में स्थिर बनने की सूचना है।

खमासमणा, इच्छा. सज्झाय संदिसाहुँ ? सामायिक में मुख्यतया स्वाध्याय करना होता है, क्योंकि सामायिक का हेतु ही आत्म-रमणता रुप है, अत: सज्झाय का आदेश मांगा जाता है। फिर चाहे वह स्वाध्याय करें, माला गिनें, काउस्सग्ग करें या प्रतिक्रमण करें, सब सज्झाय (स्वाध्याय) रुप ही है।

खमासमणा, इच्छा. सज्झाय करुँ ? इससे सज्झाय करने की बात में दृढ़ता आती है। इसके पश्चात् तीन नवकार स्वाध्याय के प्रतीक रुप गिनी जाती है।

उसके बाद दूसरी एवं तीसरी सामायिक बिना पारे ले सकते है। उसमें 'सज्झाय करुं ? के बदले 'सज्झाय में हूँ।' ऐसा कहकर - एक नवकार सज्झाय के रुप में गिनी जाती है।

सामायिक पारने के हेतु

सर्व प्रथम खमासमणा – विनय पूर्वक आदेश लेने के लिए।

इरियावहियं – यद्यपि सामायिक पाप व्यापार के त्याग की प्रक्रिया है, अत: उसमें आराधना ही करते है। फिर भी प्रमादवश मन-वचन-काया की अशुभ प्रवृत्ति हो जाने की संभावना से यह इरियावहियं की जाती है।

खमासमणा इच्छा. मुँहपत्ति पडिलेहन करुँ ?: मुँहपत्ति पडिलेहन जयणा के लिए है। (इस आदेश में **सामायिक पारवा मुँहपत्ति पडिलेहन करुँ ?** ऐसा नहीं बोलना, क्योंकि मुँहपत्ति पडिलेहन करते-करते पुन: सामायिक लेने के भाव आ जाये तो पारने के बदले सामायिक ले भी सकते है।

खमासमणा, इच्छा. सामायिक पारुँ ? : इससे सामायिक पारने का आदेश मांगा जाता है।

यहाँ गुरु कहते है **'पुनरवि कायव्वं'**: अर्थात् सामायिक वापस करने जैसी है (यह सुनकर किसी की अनुकूलता हो और भाव आ जाये तो तुरंत सामायिक संदिसाहुँ आदि आदेश लेकर सामायिक ले सकते है।)

यहाँ श्रावक कहता है **'यथाशक्ति'** - मैं शक्ति अनुसार सामायिक करने की भावना रखता हूँ।

खमासमणा, इच्छा. सामायिक पार्युं ? - इसमें श्रावक कहता है मैं सामायिक पार रहा हूँ।

गुरु कहते है- **'आयारो न मुत्तव्वो'** - अर्थात् यदि आप सामायिक पार ही रहे हो तो कम से कम श्रावक के आचार मत छोड़ना।

श्रावक कहता है - **'तहत्ति'** - अर्थात् आपकी आज्ञा शिरोधार्य है।

फिर बेटके पर हाथ रखकर झुककर मंगल के लिए नवकार गिनना।

सामाइय-वय-जुत्तो - इस सूत्र में सामायिक से होने वाले लाभ बताए गए है। जैसे कि जब तक जीव सामायिक करता है तब तक अशुभ कर्मों का नाश करता है एवं वह साधु के जैसा होता है, अत: ज्यादा से ज्यादा सामायिक करनी चाहिए यह उपदेश सामायिक पारते समय हमें प्राप्त होता है। इससे हमें बार-बार सामायिक करने की इच्छा होती है।

दश मनना : किसी भी धार्मिक अनुष्ठान के पश्चात् अविधि का मिच्छामि दुक्कड़म् देना जरुरी है। जिससे जानते- अजानते कोई दोष लगा हो तो वह दूर हो जाता है।

उत्थापना मुद्रा में नवकार : स्थापित किये हुए स्थापनाचार्यजी की नवकार द्वारा उत्थापना की जाती है।

सामायिक मंडल

आज हर गाँव, शहर, कस्बे एवं प्रत्येक एरिये में सामायिक मण्डल देखे जाते हैं, लेकिन सबसे पहला प्रश्न उठता है :-

सामायिक मंडल यानि क्या? सामायिक मंडल यानि समूह में सामायिक करना। घर के वातावरण में मन चल-विचल अधिक बनता है। उपाश्रय में सामायिक अधिक लाभप्रद बनती है। अकेला व्यक्ति सामायिक लेकर जो आराधना कर सकता है, उससे कई गुणा अधिक फायदा समूह में सामायिक लेने से संभवित है।

सामायिक मंडल से लाभ -

1. समूह में कोई विशेष ज्ञानी नया अभ्यास कराता है।
2. एक-दूसरे को देखकर विशेष भाव जागृत होते है।

3. प्रोत्साहन मिलता है।

4. सामूहिक सामायिक में विशेष लाभ भी होता है, लेकिन एक साथ में सामायिक उच्चरने पर ही समूह का विशिष्ट लाभ मिलता है। गुरु भगवंत से सुना है कि

एक व्यक्ति सामायिक उच्चरे तो 1 सामायिक का लाभ मिलता है।

दो व्यक्ति साथ में सामायिक उच्चरे तो 11 सामायिक का लाभ मिलता है।

तीन व्यक्ति साथ में सामायिक उच्चरे तो 111 सामायिक का लाभ मिलता है।

चार व्यक्ति साथ में सामायिक उच्चरे तो 1111 सामायिक का लाभ मिलता है।

पाँच व्यक्ति साथ में सामायिक उच्चरे तो 11111 सामायिक का लाभ मिलता है।

इस प्रकार जितने व्यक्ति हो उतने एकडे पास-पास में रखने पर जो संख्या बनती है उतनी सामायिक का लाभ मिलता है। इससे समूह सामायिक का अर्थ स्पष्ट ख्याल आता है।

आजकल स्वैच्छिक रीति से अलग-अलग सामायिक उच्चरना, मन चाहे तब आना, सामायिक में बातें करना, एक-दूसरे को धर्म का निमित्त न देकर अधर्म का निमित्त देना, तथा फाइन (दंड) के झगडे, प्रभावना आदि विषय के झगडे करना आदि से सामायिक के प्रदूषण बढ़ते जा रहे हैं। इन दोषों के कारण सामायिक मण्डल गुण के बदले दोष कारक बनकर आत्मा के लिए अहितकर सिद्ध होता जा रहा है। मात्र सामायिक हो जाती है लेकिन वास्तविक संतोष प्राप्त नहीं होता।

अत: प्रत्येक सामायिक मण्डल में सामायिक को उद्देश्य बनाना चाहिए। सामायिक की प्रतिज्ञा है कि 48 मिनिट तक सावद्य पाप व्यापार का त्याग करना। जैसे एकासणा का पच्चक्खाण लेने के बाद व्यक्ति नाश्ता नहीं करता। ठीक उसी प्रकार पाप व्यापार का त्याग करने रुप 'करेमि भंते' उच्चरने के बाद संसार संबंधी बातें, विचार या पैसे के विषय में, व्यवस्था के नाम पर संक्लेश करना सर्वथा अनुचित है। मुख्यत: सामायिक मण्डल के प्रतिनिधि को यह विवेक रखना बहुत जरुरी है।

सामायिक मण्डल का उद्देश्य :

सामायिक मण्डल की स्थापना का लक्ष्य है, समूह में रत्नत्रयी की सुन्दर आराधना करना। सामायिक मण्डल होने से घर में जिसे सामायिक करनी नहीं आती हो वह भी समूह में उल्लास से जुड़ जाता है एवं समूह में नई-नई बातें सीखने का उल्लास जागृत होता है।

प्रत्येक गाँव में दो सामायिक मण्डल होने चाहिए। एक 15 से 45 वर्ष की उम्र तक की स्त्रियों के लिए। इस वर्ग में जैनिज़म कोर्स की पढ़ाई कराए तथा इसके एक-एक चेप्टर पूर्ण होने पर परीक्षा ली जाए। इस

मण्डल में सभी की अनुकूलतानुसार सप्ताह में कोई भी एक दिन सामायिक के लिए निर्धारित करें एवं सभी को अनुकूल हो तो सुबह 10 से 11 बजे का समय रखें। जिससे दोपहर में श्रावक के खाने आने का समय, कामवाली तथा मेहमानों के आने-जाने के कारण किसी को क्लास चुकने का अवसर ही न आए। यदि कभी सुबह 10-11 बजे कुछ काम आ जाए तो स्वयं को ही अपना काम आगे-पीछे कर लेना चाहिए। निर्धारित वार के दिन यदि तिथि हो और बड़ों का मंडल हो तो बहुओं का मंडल एक दिन आगे अथवा पीछे पहले से ही नक्की कर दें ताकि जिस घर में सास-बहू दोनों साथ में न निकल सकते हो; उन्हें सुविधा रहे। यदि व्याख्यान का योग हो तो सामायिक में व्याख्यान वाणी श्रवण करें।

45 वर्ष से अधिक उम्र वालों के लिए सामायिक मंडल तिथि के दिन रखें। उन्हें धीरे-धीरे मुख जुबान क्रमशः एक-एक विषय कराना चाहिए। इस मंडल में मौखिक परीक्षा रखी जा सकती है।

जहाँ सामायिक मण्डल न हो, वहाँ इस पुस्तक में दी गई पद्धति से नया सामायिक मण्डल बनाएँ। रत्नत्रयी की आराधना सामायिक में होती है अतः उसका "रत्नत्रयी आराधना मण्डल" नाम दें। तथा इसमें निम्नलिखित नियम तथा गतिविधियाँ हो।

सामायिक मण्डल के नियम -

(1) निर्धारित दिन में निर्धारित समय से पाँच मिनिट पहले सभी आ जाए। जैसे 10.30 बजे का समय हो तो 10.25 तक एवं 2.30 बजे का समय हो तो 2.25 तक सभी श्राविकाएँ आ जाए।

(2) तत्पश्चात् पहले हाजरी भरी जाए, ताकि सामायिक में कोई स्खलना न हो।

(3) हाजरी के तुरंत बाद समूह में विधि पूर्वक सामायिक उच्चरें।

(4) सामायिक में पूर्ण मौन रहें।

(5) विचार-विमर्श के लिए सामायिक के पहले अथवा सामायिक के बाद का समय रखें।

(6) जिस व्यक्ति ने समूह में 'करेमि भंते.' न उच्चरा हो, लेकिन बाद में आकर सामायिक ली हो, उसके लिए एक रु. का दण्ड रखें।

(7) जो अनुपस्थित हो उसको 5 रुपये का दण्ड रखें।

(8) एम.सी. एवं बाहर गाँव के लिए छुट रहेगी। लेकिन उसके लिए छुट्टी पत्रक लिखित में किसी के साथ अथवा एम.सी. से उठने के बाद स्वयं अवश्य लेकर आए। अन्यथा फाइन भरना अनिवार्य होगा।

(9) फाइन का पैसा मण्डल में रखी गई स्पर्धा के इनाम में अथवा 7 क्षेत्र में ही उपयोग करें एवं फाइन भरने वाले भी किसी प्रकार की चर्चा किये बिना उत्साह से फाइन भरें, जैसे मंदिर में भगवान के भंडार में पैसा पुरते

है उसके समान ही यह भी पैसा 7 क्षेत्र में जाने से लाभकारी ही है। इसलिए फाइन के विषय को लेकर किसी प्रकार की चर्चा नहीं होनी चाहिए।

(10) मण्डल में प्रवेश फीस 51 रुपया रखें। प्रतिवर्ष 51 रुपया भरें। किसी कारणवश लगातार 3 महीनें नहीं आ सकने पर पुन: 51 रुपया भरकर प्रवेश प्राप्त करें। 3 महीनें तक नहीं आने वाले का नाम काट दिया जाए।

(11) प्रभावना सामायिक पारने के बाद ही करें, जिससे सामायिक में पैसे का स्पर्श न हो।

* सामायिक चेप्टर में बताई गई सभी बातों का सामायिक में पूरा उपयोग रखे।

सामायिक की गतिविधियाँ-

सभी का उत्साह बना रहे, किसी का मन न दु:खे, शासन की शोभा बढ़े, ऐसे मैत्री भाव पूर्वक तथा समभाव वर्धक सामायिक हो... ऐसा लक्ष्य होना जरुरी है।

(1) सामायिक मौन पूर्वक ही हो, गाथा दे-ले सकते है अथवा पुस्तक का वांचन एवं तत्त्वज्ञान समझ सकते है। पढ़ाई के सिवाय विषयांतर वाली बातें न हो इसका खास ध्यान रखें।

(2) **प्रार्थना** - सामायिक में सर्वप्रथम नवकार सुंदर राग में बोलें। फिर इसी बुक के पेज नं. 23 के काव्य-विभाग में 'सीमंधर स्वामी के पास हमें जाना है...' यह स्तवन दिया गया है वह प्रभु की प्रार्थना के रुप में बोलें। फिर गुरु म.सा. की एक स्तुति बोलें। समूह में सभी मिलकर सामायिक का प्रणिधान बोलें।

(3) तत्पश्चात् कोर्स की यथोचित पढ़ाई करें। सभी काव्य विभाग में से स्तवनादि की राग बिठाएँ। जिन्हें सूत्र के अर्थ अथवा तत्त्वज्ञान आता हो वह सभी को सिखाएँ।

(4) प्रति सप्ताह में होम-वर्क (गृहकार्य) दें। जिसे अगली सामायिक तक सब करके लाएँ।

(5) कभी सब मिलकर प्रभुजी के मंदिर या उपाश्रय की शुद्धि करें।

(6) कभी मंदिरजी में स्नात्र पूजा-नृत्यादि करें।

(7) कभी चातुर्मास में नियमावली भराए उसके इनाम निकाले, कभी आस-पास के तीर्थों की यात्रा कराए ऐसी विविध आराधना-पूर्वक प्रेम-पूर्वक मंडल की प्रगति कर विश्वमंगल करें।

(8) सामायिक पारते समय मेरे इस सामायिक के पुण्य से सर्व जीव सुखी हो और मेरी आत्मा की मुक्ति हो ऐसी भावना करें।

सीमंधर स्वामी के पास हमें जाना है

विश्व में जीव मात्र सतत सुख की इच्छा रखते है पुरुषार्थ भी सुख के लिए ही करते है। फिर भी कर्माधीन एवं मोहाधीन जीव परिणाम में दु:ख को पाता है आखिर ऐसा क्यों होता है? इसका मूल कारण एक ही है कि **''अब तक जीव परमात्मा के समीप नहीं जा पाया।''**

जो-जो आत्माएँ जन्म लेती है उन सबकी मृत्यु निश्चित है। प्रभु की असीम कृपा से इस भव में तो हमें जैन धर्म मिल गया है। यदि हम इस धर्म का एवं प्रभु का सहारा ले ले तो इस एक भव में अनंत भवों के दु:खों से मुक्ति पा सकते है।

हमारी आत्मा शरीर में बिराजमान है। आत्मा सेठ है एवं शरीर उसके रहने का बंगला है। लेकिन आत्मा का यह बंगला नाशवंत है और आत्मा शाश्वत है अर्थात् आयुष्य पूर्ण हो जाने पर शरीर यहीं पर रह जायेगा और आत्मा परलोक प्रयाण कर लेगी।

किराये का मकान खाली करने के पूर्व ही व्यक्ति अपने रहने के लिए अन्य सुरक्षित घर की व्यवस्था कर लेता है एवं जो नहीं करता वह दु:खी होता है। इसी प्रकार अपना यह शरीर रुपी घर भी नाशवंत होने से छोड़ना पड़ेगा, तो आपने कभी सोचा परलोक में कहाँ जाना है? कौन-सा शरीर पाना है? उसकी कोई योजना बनाई? पहले सोचो! आपको परभव में कहाँ जाना है? उसका लक्ष्य बनाकर, उसकी योजना बनाओं। आपके सामने चार गति हैं उसमें से :-

नरक- यह पाप भोगने का स्थान है। यहाँ जीव आर्त्तध्यान से विशेष कर्मबंध करता है तथा यहाँ धर्म करने का कोई अवसर ही नहीं होता।

तिर्यंच गति- यह भी पाप भोगने का ही स्थान है। महान शुभ योग होने पर समवसरण में प्रभु से अथवा अन्य कोई निमित्त से देशविरति पा सकते है लेकिन ऐसे मौके तिर्यंच गति में बहुत कम मिलते है।

इन दोनों गति की जोड़ी है। एक बार जीव नरक में गया तो वहाँ से तिर्यंच, फिर पुन: पाप बांधकर नरक, वहाँ से तिर्यंच, वहाँ से पुन: नरक, इस चक्कर में से बाहर निकलना मुश्किल है, क्योंकि दोनों पाप भोगने एवं पाप बांधने के स्थान होने से पापी जीव इन गतियों में भटकता रहता है।

देवगति- इस गति में जीव अविरति के उदय से विशेष धर्माराधना या कर्म निर्जरा नहीं कर सकते। विपुल- वैभव, सुन्दर वावड़ियों में जल क्रीड़ा, बाग-बगीचों एवं रत्नों में आसक्ति के कारण मरकर ज्यादातर देव भी पृथ्वी, जल एवं वनस्पति रुप एकेन्द्रिय में उत्पन्न होते हैं। एकेन्द्रिय की कायस्थिति असंख्य

उत्सर्पिणी व अवसर्पिणी की होने से वहाँ से निकलना अति मुश्किल होता है। मात्र शासन के अनुरागी देव ही शासन सेवा के लिये विमान के मन्दिर में प्रभु-भक्ति से अल्प निर्जरा कर पुनः मनुष्य गति में उत्तम चारित्र को प्राप्त करते हैं।

मनुष्य गति- यह पुण्य-पाप उपार्जन करने एवं विपुल कर्म निर्जरा करने तथा मोक्ष में जाने का उत्तम स्थान है। इस मनुष्य गति में व्यक्ति को अपने-अपने कर्मानुसार भोग सामग्री एवं धर्म सामग्री सब कुछ सुलभ है। भोग सामग्री का उपयोग नरक-तिर्यंच गति में ले जाता है एवं धर्म सामग्री के उपयोग से जीव मोक्ष के सन्मुख बनता है। इसलिए श्रेष्ठ तो मनुष्य गति ही है।

अब हमें देखना होगा कि मनुष्य गति में ऐसा कौन-सा स्थान है कि जहाँ जाने से हम शाश्वत सुख को पा सकते है? तो इसका जवाब है-महाविदेह क्षेत्र में। जहाँ सीमंधर स्वामी भगवान विचर रहे है वह श्रेष्ठ स्थान है। जिस प्रकार 2534 वर्ष पूर्व भगवान महावीर स्वामी ने भरत क्षेत्र में साक्षात् विचरकर अपने अतिशय से जीवों को मोक्षगामी बनाया उसी प्रकार वर्तमान काल में महाविदेह क्षेत्र में सीमंधर स्वामी भगवान विचर रहे हैं। हम इस शरीर से तो वहाँ नहीं जा सकते, लेकिन यदि हम यहाँ पर लक्ष्य बनाकर थोड़ा पुरुषार्थ करें, तो आने वाले भव में वहाँ जा सकते है, जहाँ साक्षात् सीमंधर स्वामी विचर रहे हैं। उनके समवसरण का ऐसा अतिशय होता है कि उनके सानिध्य में जाने मात्र से अपने कषाय शांत हो जाते है एवं परमात्मा की कृपा से ही हमारा मोक्ष की तरफ गमन सहज बन जाता है। इस प्रकार हमें भवभ्रमण एवं जन्म-मरण के दु:खों से हमेशा के लिए मुक्ति मिल जाती है।

तो आप सब तैयार है ना? "महाविदेह क्षेत्र में सीमंधर स्वामी के पास जाने के लिए" यदि हाँ! तो आज से ही आप एक छोटा-सा प्रयास शुरु कीजिए।

1. इस पुस्तक के साथ प्रभु के समवसरण एवं विचरण करते हुए भगवान का लैमिनेटेड फोटो आपको दिया जा रहा है। उसे एक टेबल पर रखकर उसके नीचे लिखे हुए **"एक ही अरमान है हमें समवसरण में सर्व विरति मिले"** इस मंत्र को बोलते हुए प्रतिदिन कम से कम 27 प्रदक्षिणा लगाए।

इस प्रकार प्रतिदिन प्रदक्षिणा लगाने पर लगभग डेढ़ साल में आपकी 12,500 (बारह हज़ार पाँचसौ) प्रदक्षिणा पूर्ण हो जायेगी। इसके उपरांत भी यदि हो सके तो आप जीवन के अंत तक प्रदक्षिणा जारी रखें एवं न हो तो कम से कम 27 बार इस मंत्र का जाप करें। जिससे आपके हृदय(अनाहत चक्र) में एक लक्ष्य बन जायेगा कि मेरी एक मात्र यही इच्छा है कि मुझे सीमंधर स्वामी भगवान के समवसरण में सर्वविरति (दीक्षा) मिलें। इस क्रिया से प्रतिदिन आपकी आत्मा में निर्मलता बढ़ती जायेगी।

2. साथ ही आप प्रातः जब भी उठे सर्वप्रथम आठ नवकार मंत्र गिनकर अत्यंत भाव पूर्वक तीन बार यह दो लाईन गाएँ।

पहला मंत्र- **''सीमंधर स्वामी के पास हमें जाना है,**

संयम लेके केवल पाके, मोक्ष हमें जाना है...''

रात्रि के शांत वातावरण के कारण अपना मस्तिष्क शांत होने से प्रातः काल में बोली हुई ये पंक्ति आपके मन मन्दिर में प्रभु को ले आयेगी। इन दो पंक्ति में आने वाले भव में सीमंधर स्वामी के पास जाने की भावना होने से आप दुर्गति से बच जायेंगे एवं इस भव में भी संयम, केवलज्ञान एवं मोक्ष की भावना आ जाने से आत्म कल्याण निश्चित हो जायेगा।

प्र.: क्या इतनी छोटी क्रिया हमें प्रभु के पास जन्म दे सकती है ?

उ.: जरूर दे सकती है लेकिन इसमें प्रतिदिन का सातत्य होना जरूरी है। ठीक है, कभी किसी कारणवश या दूसरे गाँव भूल से कार्ड न ले गए और प्रदक्षिणा रह जाए तो दूसरे दिन दुगुनी दे दीजिए, लेकिन आपको जीवन के अंत तक यह प्रक्रिया करनी होगी।

प्रतिदिन की इस क्रिया से आत्मा में एक भाव बन जाते है कि- ''मुझे सीमंधर स्वामी के पास जाना है।'' इससे अंत घड़ी नज़दीक आ जाने पर भी जीव को आर्त्तध्यान नहीं होगा क्योंकि उस समय भी उसे यही याद आयेगा कि मुझे तो सीमंधर स्वामी के पास जाना है .... और ये याद आने पर उसे मरने का कोई गम नहीं रहेगा।

झोपड़ी में से बंगले में जाने वाले को दुःख किस बात का ? और जिसको अंत समय भगवान याद आ जाए तो उसकी सद्गति निश्चित है। इस प्रकार यह छोटी-सी प्रक्रिया भी आपको सीमंधर स्वामी भगवान के पास ले जा सकती है।

अब जैसे-जैसे आप इस प्रदक्षिणा से जुड़ेंगे, आपके मन में शुभ भाव और बढ़ते जायेंगे तब आप निम्न दो मंत्रों को और जोड़ दीजिए:- (इस मंत्र का जाप प्रतिदिन 27 बार करें।)

दूसरा मंत्र- **''अणु-परमाणु शिव बनी जाओ।**

आखा विश्व नु मंगल थाओ।

सर्वे जीवों मोक्षे जाओ।।''

भारतीय संस्कृति अध्यात्म प्रधान थी। वह वर्तमान में पाश्चात्य हवा के कारण लुप्त होती जा रही है। एवं भौतिक साधनों में व्यक्ति उलझता जा रहा है। हिंसा प्रधान सुख-सुविधा के साधन वातावरण को दूषित

बनाते है। बाह्य स्तर में व्यक्ति भले कितना ही सुखी क्यों न दिखे; परंतु आंतरिक स्थिति उतनी ही अशांत बनती जा रही है; इस अशांतता का मूल कारण है दूषित वातावरण। **''अणु-परमाणु शिव बनी जाओ''** इस पंक्ति का अर्थ है कि बाह्य वातावरण में अणु-परमाणु पाप साधन के बदले धर्म साधन के रुप में परिवर्तित हो जाए। जिससे मंदिर, उपाश्रय बढ़ेंगे एवं पाप के साधन घटेंगे। इससे बाह्य वातावरण शुद्ध अर्थात् शिव रुप बनेगा तथा बाह्य वातावरण शिव रुप बनने पर हर व्यक्ति के मन पर उसका सुंदर प्रभाव पड़ेगा।

जैसे तीर्थ भूमि के शुद्ध वातावरण से वहाँ शिव रुप बने हुए अणु-परमाणु का प्रभाव व्यक्ति के मन पर पड़ता है, जिससे मन के परमाणु भी शिवरुप बन जाते है तथा जिसके मन में शुभ विचार चलते है, उसकी भाषा भी सुंदर बन जाती है अर्थात् भाषा भी शिव रुप बन जाती है और जिसके मन-वचन शुभ हो जाए उसकी काया का वर्तन शिव रुप बन जाए उसमें कोई आश्चर्य नहीं। इस प्रकार अणु-परमाणु के शिव रुप बन जाने से हर व्यक्ति के मन-वचन-काया के योग शुभ बन जाते है।

'' आखा विश्व नुं मंगल थाओ'' अर्थात् वातावरण की शुद्धि से जीव मात्र का मंगल हो, सर्व जीव सुखी बनें।

''सर्वे जीवों मोक्षे जाओ'' यहाँ सुखी बनने के बाद भविष्य में कोई जीव दु:खी न बनें। सर्व जीव शाश्वत सुख के स्थान रुप मोक्ष को प्राप्त करें ऐसी शुभ भावना इस मंत्र में व्यक्त की गई है।

इस छोटे से मंत्र में विश्व मंगल की उत्कृष्ट भावना व्यक्त होती है। सर्व जीवों के मोक्ष की भावना हम जितनी अधिक करते है, हमारा मोक्ष उतना ही शीघ्र होता है। यह प्रकृति का नियम है कि हम दूसरों के लिए जो सोचते है वही हमें मिलता है। यदि हम दूसरों का भला चाहते है तो हमारा भी भला ही होगा एवं दूसरों का बुरा सोचते है तो हमारा बुरा हुए बिना नहीं रहेगा।

तीसरा मंत्र - ''तीर्थंकर मारा प्राण, क्षायिक प्रीति थी निर्वाण।'' (प्रतिदिन 27 बार गिनें)

जिसे विश्व मंगल करना हो उसे तीर्थंकर परमात्मा से अतिशय प्रीति करनी होगी और प्रीति को दृढ़ बनाने के लिए इस मंत्र का जाप बहुत सहायक है। जिस प्रकार प्राण के बिना जीवन नहीं होता उसी प्रकार तीर्थंकर प्रभु को प्राण से भी अधिक प्रिय बनाने होंगे। जिससे प्रभु के साथ हमारी प्रीति क्षायिक प्रीति बनेगी। क्षायिक प्रीति यानि कि इस शरीर के नाश होने पर भी जो प्रेम परभव में साथ चले, कभी क्षय न हो वह क्षायिक प्रीति है। यह क्षायिक प्रीति अवश्य ही व्यक्ति को सीमंधर परमात्मा से मिलन करवाती है। इस प्रकार इन तीन मंत्रों को जीवन मंत्र बनाने से सहज ही जीव का मोक्ष की तरफ प्रयाण हो जाता है।

अब हमने जिस प्रभु के पास जाने का लक्ष्य बनाया है उन सीमंधर स्वामी भगवान के विहार के अतिशयों की एक झलक एवं समवसरण रचना देखेंगे।

प्रभु के विहार का रोमांचक दृश्य

* केवलज्ञान के पश्चात् प्रभु जब विहार करते है तब चारों निकाय के देव भक्ति से भाव-विभोर होकर प्रभु की सेवा में आते है कोई सम्यग् दर्शन की निर्मलता के लिए तो कोई अपने संशयों का समाधान करने के लिए आते-जाते रहते है। इस प्रकार कम से कम करोड़ो देवी-देवता प्रभु की सेवा में तत्पर रहते हैं।

* केवलज्ञान प्राप्ति के पश्चात् प्रभु का प्रकृष्ट पुण्योदय शुरु होता है। देवता नव-सुवर्ण कमल की रचना करते हैं जो हज़ारों पंखुड़ियों से सुशोभित होते हैं। ये कमल सुवर्ण के होने के बावजूद भी स्पर्श में मक्खन से भी अधिक कोमल होते हैं ऐसे नव सुवर्ण कमलों की कर्णिका पर पदकमल रखते हुए प्रभु जब विहार करते है तब प्रभु के अतिशय से प्रकृति नव पल्लवित बन जाती है।

* प्रभु के विहार के दरम्यान शरद, हेमंत आदि छः ऋतुओं का एक ही साथ समन्वय होता है, जिससे बाह्य वातावरण अत्यंत आल्हादक बन जाता है। ऐसा लगता है मानो सभी ऋतुएँ प्रभु की सेवा में खिल उठी हो और साथ ही पाँचों इन्द्रियों के मनोहर विषय सर्व जन को अनुकूल बनकर वातावरण को मघ-मघायमान बना देते हैं।

* परमात्मा को केवलज्ञान के बाद देव, मनुष्य, तिर्यंच तो अनुकूल बनते ही है लेकिन एकेन्द्रिय की सृष्टि भी प्रभु को अनुकूल बन जाती है। प्रभु जब विचरते है तब मंद-मंद अनुकूल वायु बहने लगती है और सबको शाता पहुँचाती है। परमात्मा ने पूरे जगत को अनुकूल बनकर साधना की थी तो अब प्रभु को पवन तो क्या पूरा जगत अनुकूल बन जाए तो इसमें कौन-सी बड़ी बात है?

* मानो, प्रभु के विहार से पृथ्वी पूजनीय बनी हो इस आशय से देवता एक योजन प्रमाण भूमि पर शीतल-सुगंधि जल की वृष्टि करते हैं। इस मार्ग पर चलने वालों को मानो अमृत की वर्षा हुई हो, वैसे आनंद का अनुभव होता है।

* प्रभु विहार कर रहे हो या समवसरण में बैठे हो तब देवता एक योजन प्रमाण भूमि पर सर्वत्र जानुप्रमाण पुष्पवृष्टि करते हैं। ये पुष्प पाँच वर्ण के तथा छः ही ऋतुओं के होते हैं। इन पुष्पों द्वारा देवता स्वस्तिक आदि प्रशस्त आकृति की रचना करते हैं। दसों दिशाओं को सुगंधित करते इन पुष्पों पर लाखों लोग चले फिर भी इन पुष्पों को प्रभु के प्रभाव से लेश मात्र पीड़ा नहीं होती तथा उनकी आकृति नहीं बिगड़ती।

* पृथ्वीतल पर प्रभु जब विहार करते है तब मानो कि, कंटक भी प्रभु को वंदन कर रहे हो इस प्रकार अपनी

तीक्ष्णता को धरती में छुपा देते है अर्थात् काँटे भी उल्टे हो जाते हैं। प्रभु किसी भी जीव के लिए कंटक रुप नहीं बने उनके मार्ग में भला काँटे भी विघ्न रुप कैसे बन सकते है?

* प्रभु महात्मय से प्रभावित होकर मार्ग के दोनों तरफ के वृक्ष प्रभु का स्वागत करने के लिए अपनी डाली झुका-झुकाकर प्रभु को प्रणाम करते हैं, एकेन्द्रिय गिने जाने वाले वृक्ष भी जब प्रभु को देखकर प्रणाम करते हैं तो पंचेन्द्रिय मनुष्यों तथा देव प्रभु की सेवा में रहे तो इसमें कौन सी बड़ी बात हैं?

* जिस प्रकार देव और मनुष्य प्रभु को प्रदक्षिणा देते हैं उसी प्रकार तोता, सारस, मोर आदि पक्षी भी आनंदातिरेक होकर आकाश में प्रभु को प्रदक्षिणा लगाते हैं। यह देख किसी कवि ने सुंदर कल्पना की है मानो, ये पक्षी प्रदक्षिणा के द्वारा प्रभु को सुकन नहीं दे रहे हो?

* प्रभु जहाँ विचरते है वहाँ सवा सौ योजन तक मारी नहीं होती, मरकी भी नहीं होती। तीड़ नहीं होते, मूषक भी नहीं होते। काल नहीं पड़ता, दुष्काल भी नहीं पड़ता। अतिवृष्टि नहीं होती, अनावृष्टि भी नहीं होती। कोई स्वचक्र का भय नहीं और कोई परचक्र का भी भय नहीं। वैर नहीं, विरोध भी नहीं। ये सातों 'इति' अर्थात् उपद्रव शीघ्र ही नाश हो जाते हैं। अहो! कैसा महान प्रभु का योग साम्राज्य!

* विहार के समय प्रभु जिस भूमि पर विचरण करते है वहाँ आस-पास सौ योजन तक रहते सर्व जीवों के तमाम रोग शांत हो जाते हैं। इतना ही नहीं, छः महीने पूर्व उत्पन्न हुए रोग भी नाश हो जाते हैं। तथा प्रभु के प्रभाव से छः महीने तक उनमें नये रोगों की उत्पत्ति नहीं होती। वाह! कैसा अद्भुत प्रभु का अतिशय।

* प्रभु जब विहार करते है तब प्रभु के आगे आकाश में धर्मचक्र चलता है। जो सुवर्ण एवं रत्नों का बना होता है तथा एक हजार आराओं से सुशोभित होता है। परमात्मा जब सिंहासन पर विराजित होते है तब प्रत्येक सिंहासन के आगे सुवर्ण कमल पर यह धर्मचक्र प्रतिष्ठित होता है। सूर्य से भी अधिक तेजस्वी, दसों दिशाओं को प्रकाशित करता यह धर्मचक्र मिथ्यादृष्टि के लिए मानो कालचक्र है तो सम्यग् दृष्टि के लिए मानो अमृत के समान है।

* प्रभु के विहार के समय इन्द्रध्वज आकाश में प्रभु के साथ-साथ चलता है। एक हजार योजन की ऊँचाई वाला यह इन्द्रध्वज मोक्ष में ले जाने वाली सीढ़ी के समान सुंदर दिखता है। सोने के दंड से बना यह ध्वज हजारों छोटी-छोटी ध्वज, पताकाओं तथा पवन से झूलती अनेक मणिमय घंटियों से शोभित होता है। प्रभु जब समवसरण में पधारते है तब चारों दिशाओं में चार इन्द्रध्वज स्थापित हो जाते हैं।

इस प्रकार अतिशयों से युक्त प्रभु जब समवसरण में पधारते है तब ऐसा लगता है मानो, प्रभु के प्रभाव से संपूर्ण पृथ्वी माला-माल हो गई हो।

* सर्वप्रथम वायुकुमार देव एक योजन प्रमाण भूमि को संवर्तक पवन से काँटे-कंकर रहित बनाकर शुद्ध करते हैं।

* तत्पश्चात् भवनपति देव 10,000 चाँदी की सीढ़ियों सहित सोने के कांगरों से युक्त प्रथम चाँदी का गढ़ बनाते हैं। इस प्रथम गढ़ में देव-मनुष्य अपने वाहन छोड़ते हैं।

* फिर ज्योतिष देव 5000 सोने की सीढ़ियों सहित रत्नों के कांगरों से युक्त दूसरा सोने का गढ़ बनाते हैं। इस गढ़ में तिर्यंच बैठते हैं।

* फिर वैमानिक देव 5000 रत्नों की सीढ़ियों सहित सोने के कांगरों से युक्त तीसरा रत्नों का गढ़ बनाते हैं। इसमें बारह पर्षदा यानि कि साधु-साध्वी, श्रावक-श्राविका (4), चार निकाय के देवों की चार पर्षदा एवं देवियों की चार पर्षदा बैठती है।

* प्रत्येक गढ़ में तोरणों से युक्त चार दरवाज़े, ध्वज पताकाएँ, सुन्दर वेदिका, धूपदानी, वावड़ियाँ आदि भी होते हैं।

* तीसरे गढ़ के मध्य में देवता मणिमय पीठिका पर अशोक वृक्ष की रचना करते है। जो परमात्मा की ऊँचाई से 12 गुणा ऊँचा तथा एक योजन विस्तार वाला अत्यन्त घटादार होता है। इसके पत्ते कोमल एवं हरे रंग के होते हैं। यह वृक्ष छ: ऋतुओं के फूलों से शोभित होता है। साथ ही इस पर अनेक प्रकार के छत्र, घंटियाँ, मालाएँ, ध्वजाएँ, पताकाएँ लटकती एवं लहराती हैं। इस अशोक वृक्ष के ऊपर चैत्य वृक्ष शोभित होता है। चैत्य वृक्ष यानि कि प्रभु को जिस वृक्ष के नीचे केवलज्ञान हुआ हो वह वृक्ष। प्रभु के विहार के समय सबको छाया देता हुआ यह अशोक वृक्ष भी आकाश में प्रभु के साथ-साथ ही चलता है।

* प्रभु तीन भुवन के स्वामी है यह सूचित करने के लिए देवता चारों दिशाओं में अशोक वृक्ष के नीचे लटकते तीन छत्र की रचना करते हैं। यह छत्र श्वेत स्फटिक रत्न के बने होते हैं। इनके चारों तरफ सुंदर मोतियों की माला लटकती है। प्रभु के विहार के समय यह छत्र भी आकाश में प्रभु के साथ ही चलते हैं।

* इस छत्र के ठीक नीचे चारों दिशाओं में देवता सिंहाकृति वाले चार सिंहासन की रचना करते हैं। जिस पर बैठकर प्रभु देशना देते है। ये सुवर्ण जड़ीत होते हैं और इसके आगे रत्नमय पादपीठ होता है। प्रभु जब विहार करते है तब पादपीठ सहित यह सिंहासन भी आकाश में प्रभु के साथ ही चलता है।

* प्रभु जब समवसरण के सन्मुख पधारते है, तब चारों तरफ से असंख्य देव, असंख्य तिर्यंच, करोड़ों मनुष्य आदि प्रभु के दर्शन हेतु दौड़े-दौड़े आते हैं। प्रभु को देखकर चमत्कृत हृदय से गद्-गद् हो,

अनिमेष नयनों से प्रभु को निहारते हुए प्रणाम करते हैं तथा प्रभु का जयनाद करते हैं। इस जयनाद की ध्वनि से दसों दिशाएँ गूंजित हो उठती हैं। देव-मानव से परिवरित प्रभु क्रमशः विहार करते हुए समवसरण की 20 हज़ार सीढ़ियाँ चढ़कर तीसरे गढ़ में पधारते हैं। वहाँ अशोक वृक्ष को तीन प्रदक्षिणा देकर रत्नमय सिंहासन पर प्रभु पूर्वाभिमुख बिराजमान होते हैं। उसी समय अन्य तीन दिशाओं में देव अत्यंत देदीप्यमान प्रभु सदृश ही तीन प्रतिबिंब की रचना करते हैं। जिससे चारों दिशाओं में प्रभु बिराजमान हो ऐसा प्रतीत होता है। चारों दिशाओं में प्रभु के दोनों तरफ इन्द्र अहोभाव पूर्वक चामर वींजते हैं। इस चामर के बाल श्वेत एवं तेजस्वी होते हैं। दंड सुवर्ण तथा रत्नों का होता है। वींजते समय इसमें से रंगबिरंगी किरणें सतत निकलती रहती है। एक साथ वींजे जाने वाले चामरों को देखकर ऐसा लगता है मानो हिमालय से श्वेत एवं अतिरमणीय झरने बह रहे हो। प्रभु के चरणों में झुकते ये चामर हमें यह सूचित कर रहे है कि जो हमारी तरह प्रभु के चरणों में झुकेंगे वे हमारी तरह ही ऊर्ध्वगति को प्राप्त किये बिना नहीं रहेंगे।

* प्रभु के पीछे सूर्यसम देदीप्यमान तेजोमंडल होता है, जिसे भामंडल कहते है। प्रभु का रुप असंख्य सूर्य से भी अधिक तेजस्वी होने से उनके सामने देख नहीं पाते परंतु यह भामंडल प्रभु का तेज अपने में संहरण कर लेता है जिससे हम प्रभु को सुख-पूर्वक देख सकते हैं।

* अपने पूर्व के तीसरे भव में, जगत के सर्व जीवों को तारने की भावना के साथ जिन्होंने स्वयं इन जीवों को अपने हृदय में बिठाया हो ऐसे तारक देवाधिदेव के समवसरण में मात्र एक योजन विस्तार वाली भूमि पर प्रभु के प्रभाव से एक साथ करोड़ों देव, करोड़ों मनुष्य तथा करोड़ों तिर्यंच का आसानी से समावेश हो जाएँ तो इसमें आश्चर्य ही क्या ?

* परमात्मा जब देशना देते है तब देवता आकाश में अद्‌भुत वाजिंत्र बजाते हैं जिसे देव दुंदुभि कहते है। इसकी आवाज़ गंभीर तथा अत्यन्त मनोरम होती है। यह बजकर लोगों को प्रेरणा कर रही है कि "हे भव्य प्राणियों! यहाँ आओ, तीन लोक के नाथ यहाँ बिराजमान है। जो दुःख को हरने वाले है तथा शिवपद को देने वाले है। ऐसे नाथ की सेवा करोगे तो शीघ्र मोक्ष को पाओगे।"

इस देवदुंदुभि की आकाशवाणी को सुनकर प्रभु की देशना सुनने हेतु करोड़ों देव, मनुष्य, तिर्यंच पधारते हैं। अब करुणा के सागर, विश्वतारक प्रभु 'नमो तित्थस्स' कहकर भव्य जीवों को प्रतिबोध देने हेतु अर्धमागधी भाषा एवं मालकोश आदि विविध राग में चतुर्मुखी देशना प्रारंभ करते है।

प्रभुजी की वाणी कैसी है? शक्कर जैसी या द्राक्ष जैसी? अरे! प्रभुजी की वाणी तो अमृत से भी ज्यादा मीठी है। इतना ही नहीं किन्तु 80 वर्ष की बुढ़िया अपने सिर पर काष्ठ का भार उठाकर खड़ी हो, और प्रभु की

देशना शुरु हो जाए और छः महीने तक देशना चलती रहे तो वह बुढ़िया भी उसमें इतनी मग्न बन जाती है कि छः महिने तक उसे बैठना भी याद नहीं आता।

अरे! प्रभु की वाणी की महिमा के बारे में और तो क्या कहे सिंह और बकरी, शेर और सियाल, साँप और मोर, चूहा और बिल्ली परस्पर जाति-वैर को भूलकर पास-पास में एक साथ बैठते हैं। वहाँ किसी को किसी से ना कोई वैर है और ना ही कोई विरोध। सभी प्रेम-पूर्वक उत्कंठित हृदय से प्रभु वाणी सुनने में एक तान हो जाते हैं।

दिव्य ध्वनि रुप अतिशय से प्रभु की वाणी एक योजन प्रमाण भूमि तक फैलकर सर्वत्र एक समान आवाज़ में सुनाई देती हैं। उस समय सभी को लगता है मानो प्रभु हमें ही उपदेश दे रहे हो। इतना ही नहीं प्रभु की वाणी हित, मित, पथ्य, पैंतीस गुणों से युक्त होने से सभी को अपनी-अपनी भाषा में सुनाई देती हैं।

ज्यादा तो क्या कहे? प्रभु के अतिशयों का वर्णन करना अर्थात् एक फुटपट्टी से एवरेस्ट की ऊँचाई मापने के बराबर हैं। यह वर्णन तो प्रभु के अतिशय रुपी सागर का एक बिंदु मात्र है। बाकी प्रभु का पुण्यातिशय तो कल्पनातीत हैं।

तो आईए! ऐसे अतिशय युक्त प्रभु को साक्षात् निहारने के लिए दृढ़ संकल्प बनाए **''सीमंधर स्वामी के पास हमें जाना है''** इस हेतु से चेप्टर में बताए गए उपायों का आज से ही जीवन में अमल करना शुरु करें।

श्री सीमंधर स्वामी भक्ति गीत

(**राग** - याद तेरी आती है ....)

सीमंधर स्वामी के पास हमें जाना है ....
संयम ले के, केवल पा के, मोक्ष हमें जाना है,
चौराशी लाख जीव योनि में, अनंत काल से भटकु ..... (2)
चारों गति में मेरे प्रभु, दुःख अपार मैं पाऊँ ..... (2)
अब तो स्वामी दया करके (2) मुक्ती पुरी ले चलो, सीमंधर स्वामी .... ।।1।।
कितने भवों तक भटका फिरा, प्रभु तेरा शासन न पाया ..... (2)
पुण्योदय से जैन धर्म, इस भव में मैंने है पाया ..... (2)
सम्यग् दर्शन, सम्यग् ज्ञान और सम्यग् चारित्र दो, सीमंधर स्वामी .... ।।2।।

श्री सीमंधर स्वामी भक्ति गीत

(राग - ऊंचा अंबर थी आवो ने)

समवसरणमां बोलावो प्रभुजी, ... हो.... हैयु तलसे लेवा विरति,
विरति ने आपो सीमंधर प्रभुजी, विरति क्षपकश्रेणी देती ....

सीमंधर प्रभुजी महाव्रत देता, प्रदक्षिणा प्रभुने अहोभावे देता
आशिष आपे क्षायिक प्रीतना, क्षायिक प्रीत क्षपकश्रेणी देती ... समवसरणमां ...।।1।।

अभयदानी प्रभु ने अहोभावे वंदता, देवाधिदेवने हैयामां धरता,
आणा तमारी गुणों देनारी, आणा थी सहुने मुक्ति मलती ... समवसरणमां ...।।2।।

ध्यान समाधि प्रभुने जोता प्रगटती, शुक्लध्यान धारा क्षपकश्रेणी देती,
उपकारों प्रभुना करुणा प्रभुनी, निर्वाण पद ने जे देती ... समवसरणमां ...।।3।।

प्रभुनी कृपाथी मैत्री भाव जाग्या, चौदलोके सहु जीवोने अहोभावे वांद्या,
सहु विरति पामे समवसरण स्थाने, वीतरागता सहुनी प्रगटती ... समवसरणमां ...।।4।।

प्रभुना अतिशये इन्द्रियो विरामे, अढार पापोनी वेदना छोड़ावे,
समता समाधि प्रगटे प्रभुथी, केवलज्ञान थई जाय ... समवसरणमां ...।।5।।

अपूर्व भावोथी महायोग वर्ते, गद्‌गद् हैयु प्रभुने पलपल पूजे,
मंगल थाये आज चौदलोके, सिद्धगति सहुने मलती ... समवसरणमां ...।।6।।

देवाधिदेवनी देशना वरसे, प्रातिहार्यो थी प्रभुजी पूजाये,
प्रभु पासे रहेवा महाभाग्य जाग्युं, करुणा प्रभुनी व्हाले वहेती ... समवसरणमां ...।।7।।

विश्वमाता पद्मनंदी पर करुणा वहावे, समर्पित बालगोपालो विरति ने पामे
समर्पित परिवार पर वात्सल्य प्रभुनुं, सहुने शीवपुरे लई जाये ... समवसरणमां ...।।8।।

कैसी करुणता .... !!!

मौत के बाद साथ नहीं आने वाली, टी.वी., बंगला, पत्नी, पैसों आदि के लिए आपके पास बहुत समय है और मौत के बाद साथ में आने वाले धर्म के लिए आपके पास समय न हो तो यह आपके जीवन की करुणता नही ?

प्रेम का नशा
जिंदगी में सजा

ज़हर बना अमृत

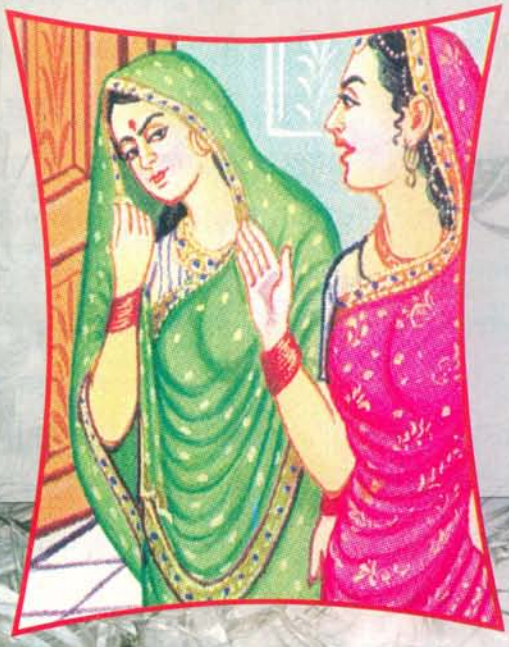

वास्तुशास्त्र

दिशा यंत्र

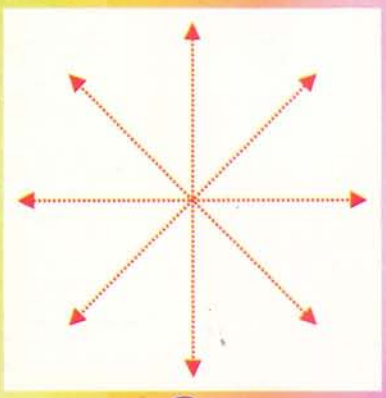

पूर्व (EAST) – शुभ
पश्चिम (WEST) – अशुभ
दक्षिण (SOUTH) – अशुभ
उत्तर (NORTH) – शुभ

✻ **बाल्कनी :** सदैव उत्तर या पूर्व की तरफ खुलनी चाहिए। बाल्कनी 3 फुट से ज्यादा लंबी नहीं होनी चाहिए एवं बाल्कनी में ज्यादा वजन नहीं रखना चाहिए। बाल्कनी की हाईट 9 या 10 फीट की होनी चाहिए।

✻ टेलिफोन अग्निकोण में रखें। कोर्ट केस की फाईले या इंपोर्टेंट पेपर हमेशा पूर्व या ईशान में रखें। जहाँ तक हो इष्ट देवता के आले के नीचे रखे तो इष्टकृपा प्राप्त होगी। ये फाईले कभी भी अग्निकोण में न रखे।

✻ **गैरेज :** शास्त्रों के अनुसार कार पार्किंग हमेशा वायव्य कोण में होना चाहिए। यदि स्थान न हो तो अग्निकोण में हो सकता है। ईशान कोण में कार पार्किंग नहीं करनी चाहिए।

✻ घर में गोदाम, भंगार, कबाड़ा, कचरा, अनुपयोगी सामान नैऋत्य कोण वाले कमरे में होने चाहिए। सही नैऋत्य कोण के अभाव में पश्चिम या दक्षिण दिशा का उपयोग कर सकते है।

✻ बीमार व्यक्ति को जल्दी स्वस्थ करने के लिए वायव्य कोण में सुलाये। पश्चिम दिशा में वजन ज्यादा रखें उसे कभी खाली न रखें। वर्ना घर के लोगों का पैसा दवाईयों पर ज्यादा खर्च होगा। दवाई का बॉक्स ईशान में रखें। दवाई लेते समय अपना मुँह ईशान की ओर रखे।

✻ अपने रहने के लिए बने घर का मुख्य दरवाजा पूर्व, उत्तर या इशान्य की तरफ होना चाहिये। पश्चिम, दक्षिण, आग्नेय व वायव्य की दिशा में यदि मुख्य दरवाज़ा हो तो वह योग्य नहीं है।

✻ घर के मुख्य दरवाज़े के सामने खंभा, कुआँ, चौकोर यंत्र, बड़ा पेड, जुते–चप्पल बनाने की दुकान या अवैध धंधा करने वालों की दुकान नहीं होनी चाहिए। इनके होने से अशुभ फल की प्राप्ति होती है एवं अनेक व्यवधान आते है।

✻ भवन को लगने वाली खिड़कीयों की संख्या सम हो। विषम संख्या नहीं होनी चाहिए।

जैनिज़म के पिछले खंड में आपने देखा कि किस प्रकार डॉली अपने माता-पिता के अरमानों को कुचलकर समीर के साथ भाग गई। यदि डॉली भाग जाने के बाद जीवन में आने वाले दु:खद परिणामों को जानती तो शायद ही वह इतना बड़ा कदम उठाती, पर यौवन के बहकावे में आकर डॉली ने दु:खों की ओर ले जाने वाला अपने जीवन का एक अहम् कदम उठा लिया। बेचारी सुषमा ने कितने अरमान सजाए थे अपनी बेटी को अंतिम विदाई देने के, पर डॉली ने कब उस घर से हमेशा-हमेशा के लिए विदाई ले ली सुषमा को पता ही नहीं चला।

(घर से निकलते ही समीर और डॉली एक होटल में गये।वहाँ...)

डॉली : समीर! अब जल्द से जल्द अपनी कोर्ट मेरेज़ का इंतज़ाम करो।

समीर : डॉली! तुम चिंता मत करो। सारा इंतज़ाम हो गया है। कल 11 बजे हम कोर्ट में जाकर शादी करेंगे और वहीं से साढ़े बारह बजे की अपनी कश्मीर जाने की फ्लाइट है। मैं अब तुम्हें इस शहर में नहीं रखूँगा।

डॉली : वाह समीर! हनीमून और वो भी कश्मीर। **I love Kashmir** तुम कितने अच्छे हो। मेरा कितना ध्यान रखते हो।

समीर : हाँ डॉली! वो तो है..

डॉली : समीर ! क्या बात है तुम किस सोच में हो ? बहुत टेंशन में दिख रहे हो।

समीर : जब से तुमसे प्यार किया है तब से दिल में ये ही अरमान है कि तुम्हें दुनिया की सारी खुशियाँ दूँ। मेरा बस चले तो मैं तुम्हें ज़मीन पर चलने भी न दूँ। तुम्हारी राहों पर फूल बिछा दूँ। तुम्हें दुनिया की सारी अच्छी चीज़ें दिखा दूँ। पर डॉली! आज के ज़माने में ये सब करने में बहुत पैसों की आवश्यकता होती है और तुम तो जानती ही हो कि मैं नौकरी ढूँढने के लिए दिन-रात मेहनत कर रहा हूँ, लेकिन मुझे कहीं अच्छी नौकरी ही नहीं मिल रही है। तुम्हें कश्मीर तो लेकर जा रहा हूँ लेकिन सोच रहा हूँ कि किस दोस्त के पास पैसे उधार माँगू ?

डॉली : अरे समीर! तुम क्यों चिंता करते हो। मैं अपने पापा के घर से इतने पैसे लायी हूँ कि हम सारी जिंदगी आराम से रहेंगे। उन सब पैसों पर अब तुम्हारा ही अधिकार है। तुम उन्हें जब चाहो, जैसे चाहो, जहाँ चाहो खर्च कर सकते हो।

(इतना कहकर डॉली ने रुपयों का सूटकेस समीर के सामने रख दिया।)

समीर : डॉली! तुम मेरे लिए अपने पापा के यहाँ से इतने पैसे लेकर आयी हो। तुम मुझसे इतना प्यार करती

हो Sweet Heart, पर डॉली मैं तुम्हारे पैसे कैसे ले सकता हूँ? नहीं, मैं ये पैसे नहीं ले सकता।

डॉली : समीर! तुम ये क्या मेरी-तेरी बातें कर रहे हो? जब मैं तुम्हारी हूँ। तो मेरा सब कुछ भी तुम्हारा ही तो है।

समीर : ओह डॉली! सच में तुम बहुत अच्छी हो, पर डॉली! फिलहाल तो इतने पैसों की हमें जरुरत नहीं है। एक काम करते है थोड़े पैसे साथ में रख लेते है और बाकी तुम्हारे नाम से बैंक में जमा कर देते हैं।

डॉली : समीर! तुम ये क्या परायों जैसी बातें कर रहे हो। खाता तुम्हारे नाम से खोलना।

समीर : ठीक है जैसी तुम्हारी इच्छा।

(यहाँ डॉली का पत्र पढ़कर डॉली के पिता को सदमे के कारण हार्ट-अटेक आ गया। सुषमा पर तो मानो दु:खों का पहाड़ टूट गया हो। एक तरफ डॉली भा ग गई और दूसरी तरफ उसके पति की ऐसी हालत। ऐसी स्थिति में उसने सोचा कि मैं क्या करुँ? किससे कहूँ। तब उसने अपने हर दु:ख में साथ देने वाली अपनी सहेली जयणा को फोन किया। जयणा तुरंत ही अपने पति जिनेश के साथ सुषमा के घर पहुँची और तीनों आदित्य को हॉस्पीटल ले गये। जाँच के बाद डॉ. ने कहा कि "गहरे सदमे के कारण इन्हें हार्ट अटेक आ गया है। फिलहाल ये खतरे से बाहर है, पर आगे ध्यान रखने की जरुरत है।" आदित्य को होश आने पर वह रोने लगा और उसके मुँह से सिर्फ एक ही शब्द निकला 'डॉली'।)

जिनेश : आप लोग आदित्य का ध्यान रखों। मैं डॉली की पूछताछ करता हूँ। मुझे लगता है वह कोर्ट मेरेज़ करने के लिए कोर्ट में गई होगी। मैं सबसे पहले वहीं जाकर देखता हूँ।

(जिनेश वहाँ से निकला और उसने जैसा सोचा था वैसा ही हुआ। डॉली उसे कोर्ट के बाहर मिली।)

जिनेश : डॉली बेटा! तुम यहाँ?

डॉली : (छुपाते हुए) हाँ अंकल, वो ऐसे ही मैं अपनी सहेली के साथ आई थी।

जिनेश : झूठ मत बोलो डॉली। पता है तुम्हारे पापा को हार्ट-अटेक आ गया है।

डॉली : ओह! तो उन्होंने आपको सब कुछ बता दिया है और अब मुझे तंग करने, मेरी सी.आई.डी. करने के लिए आपको भेजा है। उनसे कहना कि मुझे बहलाने की जरुरत नहीं है। बहुत देख लिए उनके नाटक।

जिनेश : बेटा! ये कोई नाटक नहीं है। तुम्हारी माँ कितनी टेंशन में है। थोड़ी तो शर्म करो। जिसने तुम्हें आज तक पाल-पोसकर बड़ा किया, उनके बारे में एक बार तो सोचो। चलो, मेरे साथ।

डॉली : सॉरी अंकल! अब मैं उनका मुँह भी नहीं देखना चाहती और फिलहाल मेरे पास समय भी नहीं है।

जिनेश : बेटा! एक बार चलो...

डॉली : प्लीज़ अंकल! मुझे टॉर्चर मत कीजिए।

जिनेश : ठीक है बेटा! एक बार अपनी मम्मी से बात तो कर लो। (जिनेश ने मोबाईल लगाकर डॉली को दिया। तब सुषमा रोते हुए..)

सुषमा : बेटा डॉली! तू कहाँ चली गई? देख तेरे पापा की क्या हालत हो गई है? सिर्फ तेरा ही नाम ले रहे है। एक बार तुझे देखना चाहते है। तू जो बोलेगी हम वो करने के लिए तैयार है। एक बार घर आ जा बेटा।

डॉली : प्लीज़ मॉम! ये रोने-धोने का ढ्रोंग मेरे सामने मत कीजिए। कौन-से पापा की बात कर रही हो आप? मैं तो सब छोड़ कर चली गई हूँ। अब मेरा आपसे कोई भी रिश्ता नहीं है। मैं अब आपकी बातों में आने वाली नहीं हूँ। मैं जा रही हूँ समीर के साथ।

सुषमा : डॉली! यदि यही तुम्हारा फैसला है तो हमारा भी आखरी फैसला सुन लो। यदि आज तुम घर वापस नहीं आयी तो इस घर के दरवाज़े तुम्हारे लिए हमेशा के लिए बंद हो जायेंगे। हमारे लिए तुम और तुम्हारे लिए हम मर गये हैं, समझी तुम।

(सुषमा की बात पर डॉली को गुस्सा आ गया। उसने गुस्से में फोन कट करके जिनेश को दे दिया और समीर का हाथ पकड़कर वहाँ से चली गई।)

(सचमुच यौवन के उन्माद में डॉली ने समीर का हाथ पकड़ कर अपने ही पैर पर कुल्हाड़ी मारने जैसा मूर्खतापूर्ण कार्य कर तो लिया। लेकिन डॉली को कहाँ पता था कि ....

"प्यार क्या होता है?, प्यार कैसा होता है?,
क्या प्यार भी कभी पूरा होता है जिसका पहला अक्षर ही अधूरा होता है"।

इस प्रकार प्यार में अंधी बनी डॉली समीर के साथ हनीमून के लिए चली गई। वहाँ समीर और डॉली एक कॉटेज में ठहरे। समीर ने डॉली को कश्मीर के हर खूबसूरत स्थान पर घूमाया। समीर के प्यार के साथ कश्मीर की सैर डॉली के जीवन के अविस्मरणीय पल बन गये। एक बार रात में समीर और डॉली को डिस्को से आते हुए बहुत लेट हो गया और तब कुछ नॉनवेज होटल को छोड़कर बाकी सारे होटल बंद हो गये थे। भूख के कारण समीर का सिर दुखने लगा था।

डॉली : समीर! तुम्हारी तबियत बिगड़ती जा रही है, एक काम करो तुम इस होटल में खाना खा लो।

समीर : यह कैसी बात कर रही हो डॉली। याद नहीं तुम्हें, कॉलेज में मैंने तुम्हें प्रॉमिस किया था कि मैं कभी भी नॉनवेज नहीं खाऊंगा। यहाँ तक कि नॉनवेज होटल का वेज खाना भी नहीं खाऊंगा और आज यदि मैंने यहाँ खा लिया तो मेरी प्रॉमिस का क्या होगा? यह प्रॉमिस ही तो मेरे सच्चे प्यार की निशानी है।

डॉली : भूल जाओ उस प्रॉमिस को समीर। तुम्हारी तबियत खराब हो रही हो तो ऐसी प्रॉमिस मेरे लिए कोई मायने नहीं रखती।

समीर : नहीं डॉली! मैं अपने प्यार को धोखा नहीं दे सकता। तुम्हारे लिए मैं इतना तो कर ही सकता हूँ और यदि एक दिन नहीं खाऊँगा तो मर तो नहीं जाऊँगा ना। चलो, अभी इन बातों पर सोचना बंद करो।

(समीर की इन बातों को सुनकर डॉली की खुशी सातवें आसमान पर पहुँच गयी। मानो उसे तो दुनिया की हर खुशी मिल गई थी। उसे कल्पना भी नहीं थी कि समीर उसके लिए इतनी बड़ी कुर्बानी दे देगा। इस प्रकार घूम-फिर कर डॉली अपने ससुराल आई। घर पहुँचने से पहले ही समीर ने फोन क़रके बता दिया था कि वह और डॉली दो दिनों में घर आ रहे हैं। साथ ही उसने यह भी बता दिया था कि डॉली एक पैसे वाले माँ-बाप की इकलौती बेटी है इसलिए उसका बराबर ध्यान रखना। इस तरफ कुछ नए सपने संजोकर डॉली ने अपने ससुराल में पहला कदम रखा और पहली बार अपनी सासुमाँ से मिली।)

समीर : सलाम वालेकुम अम्मी!

शबाना : वालेकुम अस्सलाम बेटा! जब से तूने फोन किया है तब से तुम दोनों की राह देख रही हूँ। आँखें तरस रही है अपनी बहू का मुँह देखने के लिए। अल्लाह ताला ने देखकर जोड़ी बनायी है। क्या चाँद-सी बहू लाया है मेरा बेटा। खुदा करे तुम्हें किसी की नज़र न लगे ।(डॉली ने शबाना के पैर छूएँ।)

(समीर ने अपनी बहन रुबी, फर्जाना, तस्लीम से भी डॉली का परिचय करवाया। सभी का प्रेम भरा व्यवहार देख डॉली की खुशी का ठिकाना न रहा। वह तो मन ही मन अपने सारे डिसीज़न पर गर्व महसूस करने लगी। पूरा दिन हँसी-खुशी भरे माहौल में बीत गया। समीर का घर बहुत छोटा था। घर में एक हॉल, एक रुम और एक किचन ही था। रुम में समीर की माँ शबाना सोती थी। इसलिए समीर रात को सोने के लिए डॉली को भाड़े पर लिये गए एक फ्लेट पर ले गया।)

समीर : डॉली! बस कुछ दिन और, मुझे एक अच्छी-सी नौकरी मिले तब तक तुम एड्जस्ट करो। फिर तो मैं तुम्हें महलों में रखूँगा।

डॉली : समीर! मुझे तुम्हारे दिल में जगह मिल गयी। मेरे लिए यही बहुत है।

(इस प्रकार दिन भर डॉली शबाना के साथ रहती थी और रात को समीर उसे फ्लेट पर ले जाता था। एक दिन सुबह नाश्ता करने के बाद डॉली झाड़ू निकालने लगी।)

शबाना : बेटा! ये क्या कर रही हो? ये झाड़ू-पोता छोड़ो। अभी-अभी तो तुम्हारी शादी हुई है। अभी तो तुम्हारे घूमने-फिरने की उम्र है। घर तो तुम्हें पूरी जिंदगी संभालना ही है। समीर बेटा, तुम डॉली को चौपाटी

आदि जितनी भी अच्छी-अच्छी देखने जैसी जगह है वहाँ घूमा लाओ।

(इस प्रकार 10-11 महिनें घूमने-फिरने में ही गुज़र गये। एक दिन पिक्चर देखने के बाद डॉली और समीर घर आ रहे थे तब किसी शॉपींग मॉल में डॉली ने एक सुंदर ड्रेस देखी। डॉली ने समीर से वह ड्रेस खरीदने के लिए फोर्स किया पर लेट होने के कारण समीर डॉली को वहाँ से ले गया।

डॉली को वह ड्रेस इतना पसंद आ गया था कि उसके मन से निकलने का नाम ही नहीं ले रहा था। इसी बीच कुछ दिनों के बाद डॉली का बर्थ-डे आनेवाला था। डॉली को बताये बिना समीर ने उसके लिए सरप्राईज पार्टी अरेंज करने की प्लानिंग बनाई और देखते ही देखते बर्थ-डे का दिन भी आ गया। सुबह उठते ही डॉली को अपने कमरे का नज़ारा कुछ अलग ही लगा। तभी हाथ में फूलों का गुलदस्ता लेकर समीर आया। डॉली को तो कुछ समझ में नहीं आ रहा था कि यह सब क्या है?)

समीर : हेप्पी बर्थ डे टू यू, हेप्पी बर्थ डे टू डीयर डॉली! हेप्पी बर्थ डे टू यू (इतना कहकर उसने गुलदस्ता डॉली को दिया।)

डॉली : समीर ! आज मेरा जन्म दिन है। मैं तो भूल ही गई थी। समीर मुझे बिलीव नहीं हो रहा है कि तुम्हें मेरा बर्थ डे याद है और मैं खुद भूल गई। यह सब तुमने मेरे लिए किया। थैंक्स समीर! तुम मुझे कितना प्यार करते हो।

समीर : अरें डॉली, मैं तुम्हारा बर्थ-डे याद नहीं रखूँगा तो और कौन रखेगा? तुम ही तो मेरी सब कुछ हो।

(सुबह उठते ही मिले इस सरप्राईज से डॉली की खुशी का कोई पार नहीं था।)

(अपने सुखी जीवन की कल्पनाओं में खोई डॉली तैयार हुई और दोनों घर पर आये। घर में कदम रखते ही शबाना और समीर की तीनों बहनों ने भी उसे विश कर गिफ्टस् दिए। शबाना ने डॉली का फेवरेट गाज़र का हलवा बनाकर उसे अपने हाथों से खिलाया। सभी का इतना प्रेम देखकर डॉली की आँखों में आँसू आ गये। इतना सब कुछ होने के बाद तो अब डॉली के मन में अपने माता-पिता के प्रति नफरत और भी बढ़ गई। उसे ऐसा लगने लगा कि जयणा और मोक्षा के लेक्चर सुनकर उसने फालतु में अपना समय बर्बाद किया। डॉली को विश्वास हो गया कि समीर के साथ शादी करने का उसका निर्णय सही था। उसे जयणा और मोक्षा की बातों तथा उनकी सोच पर हँसी आने लगी। शाम को समीर डॉली को होटल ले गया। होटल के बाहर वॉचमेन ने भी डॉली को विश किया। यह देख डॉली आश्चर्यचकित हो गई)

(डॉली कुछ पूछे उसके पहले समीर हाथ पकड़कर उसे अंदर ले गया और अंदर पहुँचते ही समीर द्वारा बुलाए गए दोस्तों की, मेहमानों की तथा म्यूज़िक की आवाज़ से हॉल गूंज उठा।)

Happy Birthday to u .... Happy Birthday to Dear Dolly ....

(यह सब देख डॉली सारी बात समझ गई। इतने में समीर ने उसे गिफ्ट दिया।)

डॉली : समीर! यह तो वही ड्रेस है ना जो उस दिन ....

(डॉली सारी बात समझ गई। खुशी से डॉली की आंखे भर आई)

समीर : (आँसू पोछते हुए) डॉली इसमें रोने की क्या बात है? तुम तो मेरा सपना हो और अपने सपने का सपना मैं पूरा नहीं करुँगा तो कौन करेगा?

डॉली : समीर, तुम्हें कैसे पता चला कि इस प्रकार की बर्थ-डे पार्टी अरेंज करना मेरा ख्वाब था।

समीर : डॉली, शायद तुम भूल गई हो पर मैं कैसे भूल सकता हूँ। याद है कॉलेज में तुम्हारे बर्थ-डे के दिन तुमने मुझसे कहा था कि "समीर मेरी बहुत इच्छा है कि मैं एक आलीशान 5-स्टार होटल में बर्थ-डे पार्टी दूँ, मेरी सारी फ्रेन्डस् को इनवाईट करुँ। मैं रेडी होकर होटल में एन्टर करुँ। सब मुझे विश करें और पास में म्यूज़िक भी हो" डॉली उस वक्त यह सब मेरे हाथ में नही था क्योंकि उस वक्त मेरी परिस्थिति नहीं थी। आज तो मैं कर सकता हूँ ना। बस तुम्हारे फ्रेन्डस् को नहीं बुला पाया, उसका मुझे अफसोस है।

डॉली : उनकी अब मुझे कोई जरुरत नहीं है समीर! मुझे तुम मिल गए तो सब मिल गया। समीर किन शब्दों में कहूँ कि मैं कितनी खुश हूँ।

एक दोस्त : अरे अब मियाँ-बीबी की खुसर-पुसर बंद हो तो हमें भी भाभीजान से मिलने का और उन्हें विश करने का मौका मिले।

(सभी हँस पड़े। समीर ने सभी से डॉली का परिचय करवाया। खाते, पीते, नाचते देर रात तक पार्टी चलती रही। अपने हर एक सपने को साकार होता देख डॉली तो अपने-आपको विश्व की सबसे खुशनसीब इंसान मानने लगी। उसने कभी कल्पना भी नहीं की थी कि समीर उसे इतना बड़ा गिफ्ट देगा। इस प्रकार भोग-विलास में डूबी डॉली ने गर्भ धारण किया और खुश होकर उसने यह बात समीर को बतायी।)

डॉली : क्या बात है समीर? मेरी बात सुनकर तुम्हारे चेहरे पर वह खुशी नहीं दिख रही है, जो दिखनी चाहिए थी। कोई टेंशन है क्या?

समीर : डॉली! वो क्या है ना बात तो खुशी की है, पर वैसे भी हमारा घर छोटा है। इतनी गरीबी में उस नये मेहमान की परवरिश बहुत मुश्किल है, इसलिए मैं सोचता हूँ कि नौकरी और नया फ्लेट लेने के बाद ही हम इन सब चीज़ों के बारे में सोचेंगे। फिलहाल तो तुम एबोर्शन करवा दो तो अच्छा रहेगा।

डॉली : क्या? एबोर्शन .. समीर ये क्या कह रहे हो तुम? ये तो हमारे पहले प्यार की पहली निशानी है। नहीं समीर....

समीर : डॉली! परिस्थिति को समझने की कोशिश करो।

(समीर ने डॉली को बहुत समझाया है, पर वह एबोर्शन करवाने के लिए तैयार नहीं हुई। इससे समीर गुस्सा होकर चला गया। इस तरफ घूमने-फिरने और घर के खर्चें में डॉली के द्वारा लाये हुए सारे पैसे खत्म हो गये। तब शबाना ने सोचा कि किसी तरह डॉली को अपने मायके भेज दिया जाये, ताकि वह थोड़े और पैसे ला सके। इससे उसके गर्भ पालन में, डॉ.के खर्च में, बच्चे को पालने-पोसने में और घर के खर्चें में सुविधा रहेगी, इसलिए एक दिन बातों ही बातों में शबाना ने डॉली से पूछा...)

शबाना : बेटा, तुम्हें कभी अपनी मम्मी की याद नहीं आती?

डॉली : आप जैसी अम्मी मिल जाने पर किसे अपने घर की याद आयेगी? आप मेरा कितना ख्याल रखती है। शादी करके इतने दिन हो गये लेकिन आप ने तो अब तक मुझे घर का झाड़ू तक निकालने नहीं दिया। अपनी बेटियों से भी ज्यादा प्यार आपने मुझे दिया है। भगवान करे मुझे हर जनम में आप जैसी सासुमाँ मिलें।

शबाना : अरे बेटा, तुम ने तो मेरे घर को जन्नत बना दिया है जन्नत, पर बेटा, कभी-कभी तो अपने मम्मी के यहाँ भी जाया करो। भले तुम्हें उनकी याद नहीं आती, पर उन्हें तो तुम्हारी याद आती ही होगी।

डॉली : नहीं अम्मी! अब उस घर के लोग मेरे कुछ नहीं लगते और मैंने भी उस घर से हमेशा-हमेशा के लिए रिश्ता तोड़ दिया है।

(बेचारी शबाना... उसके तो सारे अरमानों पर पानी फिर गया। उसने तुरंत समीर को सारी बात बतायी।)

शबाना : बेटा, ये तू कैसा खोटा सिक्का उठा लाया है? ये तो अपने घर जाने का नाम ही नहीं लेती तो पैसे कहाँ से लायेगी?

समीर : अम्मी, चिंता मत करो। धीरे-धीरे सब ठीक हो जाएगा।

(कुछ दिन बाद .....)

डॉली : समीर, पिछले दो महिनों से मैं ब्यूटी पार्लर ही नहीं गई। देखो ना मेरा चेहरा कितना खराब हो गया है और बाल तो देखो झाड़ू जैसे हो गये है। समीर, मुझे फेसिअल और बाल कटवाने के लिए 1000 रु. चाहिए।

समीर : 1000 रु.! पागल हो गई हो क्या?

डॉली : इसमें पागल होने की क्या बात है? मैं अपने घर में हर हफ्ते हज़ार रु. खर्च करती थी।

समीर : लेकिन डॉली, फिलहाल मेरे पास इतने रुपये नहीं है।

डॉली : तो क्या हुआ? बैंक से निकलवा दो।

समीर : डॉली, वो सारे पैसे तो खर्च हो गये है।

डॉली : क्या? खर्च हो गये। समीर! वो कोई 1000...2000 रुपये नहीं थे। लाखों रुपये लायी थी मैं अपने घर से। एक-डेढ़ साल में सारे खर्च हो गये?

समीर : तुम्हें क्या लगता है, मैं झूठ बोल रहा हूँ? इतनी बार घूमने गए, 5 स्टार होटल का खाना, 5 स्टार होटलों में रहना, जहाँ हम सोते है वहाँ का भाड़ा और तो और तुम्हारी बर्थ-डे पार्टी का खर्चा ही चालीस हज़ार का हो गया था। इतने खर्चों में सारे पैसे खत्म हो जाना सहज है और अब आगे भी तुम्हारे बच्चे के पालन पोषण के लिए पैसों की जरुरत तो होगी ही। और... (समीर बात पूरी करे उससे पहले ही)

डॉली : समीर! ये "तुम्हारा बच्चा" क्या लगा रखा है? क्या ये सिर्फ मेरा ही बच्चा है तुम्हारा नहीं?

समीर : मैंने तो पहले ही गर्भपात करवाने को कहा था, पर तुम्हें ही जरुरत है इस बच्चे की। मुझे तो कोई जरुरत नहीं है। अब इस बच्चे के लिए जितने रुपयों की जरुरत है उसकी व्यवस्था तुम्हें ही करनी है।

डॉली : समीर! मैं कहाँ जाऊँ पैसे लेने के लिए और कौन देगा मुझे पैसे?

समीर : क्यों? तुम्हारे पियर में क्या कमी है? जाओ और थोड़े रुपये मांगकर ले आओ?

डॉली : समीर! मैंने उस घर से हमेशा के लिए रिश्ता तोड़ दिया है। मैं मर जाऊँगी लेकिन उस घर में कदम नहीं रखूँगी।

समीर : ठीक है या तो कम पैसे में रहना सीखो या अपना इन्तज़ाम स्वयं करो।

(इतना कहकर समीर वहाँ से चला गया और इस प्रकार ब्यूटी पार्लर की एक छोटी-सी बात से झगड़ा इतना बढ़ गया। अब रोज समीर इन्हीं झगड़ों के माध्यम से डॉली की जिंदगी में ज़हर घोलने लगा।)

कसाई के हाथ में जब मुर्गी आती है तब कसाई उसे बहुत खिलाता-पिलाता है फिर भी मुर्गी के मन में तो यही भय होता है कि यह सब मुझे मारने के लिए ही हो रहा है, परन्तु प्यार का नाटक करने वाले जल्लादों के बीच डॉली की हालत उस मुर्गे से भी बद्तर बन गई, क्योंकि उसे तो यह पता ही नहीं चला कि यह प्यार का नाटक उसके जीवन को बर्बाद करने के लिए किया गया है।

अपने बर्थ-डे के दिन समीर के दो-चार गिफ्ट देखकर डॉली बहुत खुश हो गई थी। सचमुच कितनी बेवकूफ होती है लड़कियाँ। कोई यदि उन्हें दो-चार मीठी बातें बोल दे या दो-चार गिफ्ट लाकर दे दे, उनके लिए कुछ कर दे तो वह उनके पीछे पागल बन जाती है। आजकल की पढ़ी-लिखी लड़कियों की सारी होशियारी, चतुराई लड़कों की दो मीठी बातों के सामने खत्म हो जाती है और फिर वह मान बैठती है कि

बस अब यही मेरी जिंदगी है, पर वह यह नहीं समझती कि जिंदगी मात्र दो-चार बातों या गिफ्टस् से नहीं चलती, पर बेचारी डॉली को उस वक्त क्या पता था कि भविष्य में समीर इन तोहफों से भी बड़ा तोहफा उसे देगा जो उसकी जिंदगी को तहस-नहस कर देगा और तब शायद उसे अपनी बिगड़ी जिंदगी को सुधारने का मौका भी न मिले। डॉली समीर की चालाकी न समझ पाई और उसके जाल में फँस गई। उसे तो यह भी पता नहीं चला कि इतने दिनों तक उसने जिन पैसों के बल पर मौज-मजे किए थे, जिन पैसों के बल पर समीर उसे इतनी खुशी दे रहा था, वह समीर के नहीं उसके अपने ही थे, पर कहते है ना- 'विनाश काले विपरीत बुद्धि' बस डॉली के लिए भी यह बात बिल्कुल ठीक लागु होती थी। भले आज तक उसे जयणा और मोक्षा की बातें लेक्चर लगती थी। उसमें उसे टाईम-वेस्ट नज़र आ रहा था, पर भविष्य किसने देखा था? हो सकता है कि भविष्य में मोक्षा के एक-एक शब्द पर उसके पास आँसू बहाने के अलावा और कोई चारा न हो, और शायद अब वह दु:खद भविष्य आ गया था।)

(एक दिन शाम को डॉली डॉ. के पास चेकअॅप के लिए जाती है तब घर पर ....)

समीर : अम्मी; मुझे नहीं लगता कि डॉली अपने पियर जायेगी। सारा प्लॉन चौपट हो गया।

शबाना : बेटा! चिन्ता मत कर। जब घी सीधी ऊँगली से न निकले तब ऊँगली को टेढ़ी करके निकालना पड़ता है। अब तक तो हम इसके साथ प्यार का बर्ताव करते रहे जिससे इसे पियर की याद ही नहीं आयी, पर अब हम इसके साथ ऐसा सलूक करेंगे कि इसे पैसे लेने के लिए मजबूरन पियर जाना ही पड़ेगा।

समीर : पर अम्मी कैसे?

शबाना : तु चिन्ता मत कर। बस मैं जैसा कहूँ वैसा तू करते जाना।

(उस रात समीर डॉली को फ्लेट में नहीं ले गया और डॉली को किचन में सोने के लिए कहा।)

डॉली: समीर! हमें यहाँ पर सोना पड़ेगा। कितना अँधेरा है यहाँ तो। मुझे अँधेरे से और कॉकरोच से बहुत डर लगता है।

समीर : डॉली ! यह तुम्हारा पियर नहीं है। जहाँ हो उस माहौल में सेट होना सीखो। और हाँ, यहाँ पर सुबह 5 बजे पानी आता है। इसलिए जब अम्मी दरवाज़ा खटखटाएगी तब बाथरुम से बाल्टी दे देना। अम्मी पानी भर देगी।

(समीर की बात सुनकर डॉली आगे कुछ नहीं बोल पाई और चुपचाप अपने आँसुओं के साथ सोने की कोशिश करने लगी। करीब रात के 2 बजे...)

डॉली : समीर! समीर! .... मेरे ऊपर कुछ चल रहा है। समीर उठो। (समीर ने उठकर लाईट चालु की।)

समीर : (गुस्से में) क्या डॉली! बच्चों की तरह एक कॉकरोच से डर गई।

डॉली : मैंने पहले ही कहा था कि मुझे कॉकरोच और अंधेरे से बहुत डर लगता है।

समीर : अब सो जाओ चुपचाप। मेरी भी नींद खराब कर दी। (डॉली नींद लेने की कोशिश करने लगी और देखते-देखते 5 बज गये।)

शबाना : डॉली, जरा बाल्टी तो देना।

(फूलों की शय्या पर सोने वाली, 8 बजे उठने वाली, उठते ही बेड-टी पीने वाली बेचारी डॉली के पास आज ना तो बेड था और ना ही टी थी , पर क्या करे? अपने हाथों से गले में घंटी बाँधी थी तो अब वह बजेगी ही। अभी तक डॉली ने सिक्के के एक पहलु यानि कि सुखी जीवन को ही देखा था पर अब उसके जीवन रूपी सिक्के ने मोड़ लेना शुरु कर दिया था।

कुछ दिनों बाद समीर के एक दोस्त ने होटल में पार्टी रखी। डॉली और समीर उस पार्टी में गये। होटल नॉनवेज थी। लेकिन डॉली को इस बात का पता नहीं था। सब खाना खाने बैठे। प्लेटों में नॉनवेज आईटम को देखकर डॉली चकरा गई। फिर भी चुपचाप वही बैठी रही। समीर के दोस्तों ने समीर का मज़ाक उड़ाने के लिए डॉली की प्लेट में भी नॉनवेज डाल दिया। अपने दोस्तों के साथ समीर भी नॉनवेज खाने लगा। तब डॉली ने एकदम धीमे से समीर से कहा...)

डॉली : समीर ये क्या? तुम नॉनवेज खा रहे हो। तुमने तो मुझसे वादा किया था कि तुम कभी नॉनवेज नहीं खाओगे....

समीर : चुप बैठो डॉली। सब लोग हमें ही देख रहे है। परिस्थिति के अनुसार रहना सीखो।

दोस्त : अरे! दोनों मियाँ-बीबी में क्या खुसर-पुसर चल रही है, जरा हमें भी बताओ और ये क्या समीर, तुमने अभी तक भाभीजान को नॉनवेज खाना नहीं सिखाया?

समीर : सिखाया नहीं तो क्या हुआ। आज सीख लेगी। डॉली, खा लो।

दोस्त: अरे समीर! भाभीजान पहली बार नॉनवेज खा रही है, तुम अपने हाथों से खिलाओ।

(समीर जैसे ही कबाब का एक टुकड़ा चम्मच से डॉली के मुँह के पास ले गया, वैसे ही डॉली को ज़ोर से उपका आया और वह समीर का हाथ झटककर वहाँ से उठकर चली गई। सारे दोस्त समीर का मज़ाक उड़ाने लगे। इस पर समीर को डॉली पर बहुत गुस्सा आया और वह भी पार्टी को अधूरी छोड़कर घर चला आया। घर पर आते ही सीधे डॉली को पकड़कर एक चाँटा मारा।)

समीर : बद्तमीज़ तेरी माँ ने तुझे इतना भी नहीं सिखाया कि दोस्तों के बीच कैसे रहा जाता है? नॉनवेज खाना नहीं था तो कम-से-कम वहाँ चुपचाप बैठी तो रह सकती थी। इस प्रकार बेइज्ज़त करके आने की

क्या जरुरत थी। पता है मेरे सब दोस्त किस प्रकार से मुझ पर हँस रहे थे और नॉनवेज खा लेती तो कहीं मर नहीं जाती।

डॉली : तुम्हारी हिम्मत कैसे हुई मुझे मारने की। मेरे मम्मी-पापा ने भी आज तक मुझ पर कभी हाथ नहीं उठाया तो तुम कौन होते हो मुझे मारने वाले? कश्मीर में जब मैंने तुम्हें नॉनवेज होटल में खाने के लिए कहा था तब कितनी बड़ी-बड़ी बातें की थी तुमने। उन सबका क्या हुआ? कॉलेज में तुमने मुझसे वादा किया था कि तुम कभी नॉनवेज नहीं खाओगे। क्या हुआ तुम्हारे उस वादे का?

समीर : भाड़ में गया तुम्हारा वादा। तंग आ गया हूँ तुमसे और तुम्हारे वादों से।

(बेचारी डॉली आज तक जिसने कभी अपने माता-पिता की भी थप्पड़ नहीं खायी थी। माता-पिता ने जिसे लाड-प्यार से बड़ा किया था, उसी डॉली के सच्चे प्यार ने ही उसे थप्पड़ खाने के लिए मजबूर कर दिया। उस रात डॉली बहुत रोई लेकिन समीर ने उसकी ओर देखा तक नहीं।

डॉली ने सोचा कि शादी के पहले मेरी आँख से एक आँसू आने पर जिस समीर के दिल के टुकड़े-टुकड़े हो जाते थे, आज वही समीर खुद मेरी आँखों में आँसू लाने के लिए तुला हुआ है। दोस्तों के सामने अपनी बेइज़्ज़ती हो जाने के कारण समीर ने डॉली से बात नहीं की और तीन दिन ऐसे ही गुज़र गये। तीन दिन बाद रात को)

समीर : डॉली! अम्मी की तबियत ठीक नहीं है, इसलिए कल 4 बजे उठकर पानी भर लेना।

डॉली : समीर! डॉ. ने मुझे वजन उठाने का मना किया है।

समीर : (गुस्से में) डॉली! मैं तुम्हें मेरे घर में आराम करने के लिए नहीं लाया हूँ। 2 साल हो गये ससुराल आये पर तुमने अभी तक घर का कोई काम नहीं किया है। वो तो मेरी अम्मी का दिल बहुत बड़ा है इसलिए तुम्हें कुछ नहीं कहती। अब ये सब नाटक नहीं चलेंगे। डॉ. तो कल जाकर तुम्हें बेडरेस्ट का भी कह देगा और तुम बेड-रेस्ट कर लोगी तो तुम्हारी सेवा कौन करेगा? अब घर का सारा काम तुम्हें ही संभालना है। अम्मी कब तक करेगी?

(उसी वक्त समीर की अम्मी भी वहाँ आई।)

शबाना : एकदम सही कहा तुमने बेटा। महारानी को तो खाली तीन काम ही अच्छे लगते है। खाना, घूमना और सोना। बाकी काम तो महारानी से होते नहीं है। कोई काम करने को कह दे तो डॉ.और अपने बच्चे का बहाना बना लेती है और बैठी रहती है। वो तो इस घर में आयी है इसलिए अब तक सम्भाल लिया। कहीं और होती तो मार-मार कर घर से बाहर निकाल देते।

डॉली : समीर! तुम तो समझो मेरी हालत....

समीर : चुप रहो डॉली! बहुत देख लिया तुम्हारा नाटक।

(बेचारी डॉली। घर पर जिसने एक ग्लास पानी भी कभी अपने हाथों से नहीं भरा, जिसे घर में रानी की तरह रखा गया था। आज उसके साथ काम करने वाली नौकरानी जैसा बर्ताव हो रहा था। डॉली को अब महसूस होने लगा कि यह सब पैसों का खेल था और इस खेल को खेलने के लिए समीर ने फुटबॉल की तरह उसका उपयोग किया। पैसे थे तब तक प्यार था। पैसे पूरे और प्यार खत्म और इसलिए शायद समीर बार-बार मुझे पियर से पैसे लाने के लिए फोर्स कर रहा है।

इस प्रकार रोज-रोज की झंझट से थककर एकबार डॉली ने सोचा कि "यदि मैं माता-पिता की इच्छा से शादी करती और ससुराल जाने के बाद पैसे मंगवाती तो वे मुझे जरुर पैसे भेजते। यानि कि अब भी उनके पैसों पर मेरा पूरा अधिकार है और न भी हो तो आखिर वे मेरे माँ-बाप है। मेरी खराब परिस्थिति देख उनका दिल पिघल जाएगा और वह मेरी मदद जरुर करेंगे। अब कुछ दिनों में डिलेवरी आएगी तो बच्चे की परवरिश के लिए पैसों की जरुरत तो पड़ेगी ही। रोज-रोज की इस झंझट से तो अच्छा है कि एक बार मम्मी को फोन लगा ही दूँ। कम से कम इससे समीर और मेरे बीच के रिश्ते तो सुधर जायेंगे"।

ऐसा सोचकर डॉली ने फोन उठाया। जिनकी खराब परिस्थिति पर डॉली का दिल नहीं पिघला था। आज अपनी खराब परिस्थिति में डॉली उन्हीं लोगों का दिल पिघलने की अपेक्षा रख रही थी। खैर अब आगे क्या होता है? क्या डॉली अपने घर पर फोन से बात करेगी? क्या उसके माता-पिता पैसों द्वारा उसकी मदद करेंगे? या फिर डॉली को उसी हालत में रोता छोड़ देंगे? इस फोन के बाद क्या डॉली और समीर के रिश्ते में मधुरता आ पायेगी? या फिर डॉली के जीवन में कुछ और ही होगा? देखेंते जैनिज़म के अगले खंड में।

(डॉली के भाग जाने के बाद उसी के साथ विदा हुई अपने घर की खुशियों को वापस लाने के लिए सुषमा ने अपने बेटे प्रिन्स की शादी करवाई। अपनी बेटी डॉली को तो वास्तविक माँ बन संस्कार देने के विषय में सुषमा मार खा गई, परंतु क्या अब वह अपनी बहू के साथ बेटी जैसा बर्ताव कर पाती है? या फिर कुछ और ही होता है? देखते है। जैनिज़म के अगले खंड "सासु बनी माँ" में

जैनिज़म के पिछले खंड में आपने देखा कि जयणा ने अपनी पुत्री के जीवन को संस्कारित बनाने में कोई कमी नहीं रखी और अच्छा रिश्ता देखकर, सुयोग्य हितशिक्षा देकर उसे ससुराल विदा किया। अब आगे....

अपनी माँ की दी हुई हितशिक्षा को ग्रहण कर मोक्षा ने ससुराल में अपना पहला कदम रखा। उसके परिवार में सास-ससुरजी, ननंद एवं दो देवर थे। उसकी सास एवं ननंद का स्वभाव थोड़ा चिड़चिड़ा और गुस्से वाला था। शादी के पश्चात् मोक्षा के सास-ससुर ने उन्हें थोड़े दिनों के लिए घूमने भेजा। घूम-फिर कर जब मोक्षा पुन: अपने ससुराल आई, तब दाम्पत्य जीवन के हर कदम पर अपनी माँ की दी हुई हितशिक्षा को अमल करने लगी।

वह प्रतिदिन प्रात: उठकर घर का सारा कार्य निपटाकर जिन पूजा करने जाती। नाश्ता बनाकर परिवार को नाश्ता करवाती। फिर भोजन बनाने लग जाती। भोजन बनते ही नौकरों के हाथों अपने ससुरजी एवं पति के लिए टिफिन भिजवाती। बाद में सासुजी एवं ननंद को भोजन करवाकर स्वयं भोजन करके बाकी का सारा कार्य भी स्वयं ही करती। दोपहर को समय मिलता तो सामायिक लेकर स्वाध्याय करती। मोक्षा का ससुराल धार्मिक न होने के कारण घर के सभी लोग रात्रिभोजन करते थे। लेकिन मोक्षा को रात्रिभोजन त्याग होने के कारण वह स्वयं का ख़ाना जल्दी बनाकर चउविहार कर लेती एवं बाकी लोगों के लिए अनिच्छा से रात को भोजन बनाकर देती। काम निपटाकर रात्री में वह अपने सास-ससुर की सेवा (पैर दबाना आदि) करती। पढ़ाई में अपने ननंद एवं देवर की मदद करती। इस प्रकार वह पूरे परिवार की सारी जिम्मेदारियाँ भली-भाँति निभा रही थी। मोक्षा नई-नई थी, अत: थोड़े दिनों तक तो मोक्षा की सास एवं ननंद ने मोक्षा के साथ अच्छा बर्ताव किया, पर धीरे-धीरे हर सास एवं ननंद की तरह वे दोनों मोक्षा के हर काम में गलतियाँ निकालने लगे।

एक बार रात्री में भोजन बनाते समय मोक्षा यह भूल गई कि उसने दाल में नमक डाला है या नहीं परंतु रात्रिभोजन त्याग होने के कारण उसने दाल को चखे बिना ही उसमें अंदाज़ से थोड़ा नमक और डाल दिया। दाल में नमक डबल हो जाने के कारण दाल खारी बन गई। जैसे ही दाल का पहला निवाला उसकी सासुमाँ ने लिया वैसे ही -

सुशीला : (गुस्से में) मोक्षा ! आज ये दाल कैसी बनाई है ?

मोक्षा : क्यों ? क्या हुआ मम्मीजी ?

सुशीला : थूँ, ये भी कोई दाल है । दाल में नमक डाला है या नमक में दाल ?

मोक्षा : मम्मीजी! मैं ये भूल गई थी कि मैंने दाल में नमक डाला है या नहीं। रात्रि भोजन त्याग होने के कारण मैंने दाल को चखे बिना ही उसमें थोड़ा और नमक डाल दिया। जिससे दाल खारी हो गई होगी। माफ करना मम्मीजी।

सुशीला : हाँ, हाँ, बड़ी आई रात्रिभोजन त्याग वाली। तेरे ये धर्म के ढोंग के पीछे हमें क्या-क्या सहन नहीं करना पड़ता। कभी नमक डबल डाल देती हो तो कभी बिल्कुल नमक ही नहीं डालती। कभी इतनी मिर्ची

डाल देती हो कि बच्चें खाना भी नहीं खा सकते है।

विधि : हाँ मम्मी! मैं तो तंग आ गई हूँ ऐसा खाना खा-खाकर। इससे तो होटल का खाना अच्छा।

सुशीला : महारानी स्वयं तो अपने लिए अच्छी-अच्छी गरम रसोई चख-चखकर बनाकर आराम से खाती है और हमारे लिए रोज ऐसा बनाती है। रोज-रोज का तेरा ये नाटक हो गया है। ये तो हम सब कब से सहन कर रहे है पर सहन करने की भी कोई हद होती है। अब इतना नमक डाली हुई यह दाल खायेगा कौन?

विधि : हाँ माँ! अब यह दाल ना आप खाओगी ना मैं और ये महारानी तो कल नहीं खायेगी, क्योंकि इसके लिए तो ये बासी हो जाती है। इतनी महँगी दाल अब बाहर डालनी पड़ेगी। यहीं सिखाया है इसकी माँ ने ...

मोक्षा : मम्मीजी! इस बार गलती हो गई। अगली बार आपको शिकायत का मौका नहीं दूँगी।

(मोक्षा के इस विनय भरे जवाब के सामने सुशीला एवं विधि की बोलती बंद हो गई। सासु व बहू का संबंध माता-पुत्री के समान होना चाहिए, क्योंकि जिस घर में लड़की बड़ी हुई उस घर को छोड़कर पराये घर को अपना बनाने के स्वप्न संजोये वह बहू बनकर ससुराल में पाँव रखती है। जिस प्रकार अपनी लड़की की भूल हो जाने पर माता उसे प्रेम पूर्वक समझाती है। उसी प्रकार सास भी माँ बनकर प्रेम से बहू को हितशिक्षा दे। पुत्री या बहू में कभी किसी प्रकार का भेदभाव न रखें। ध्यान रहे अपनी पुत्री तो थोड़े ही दिनों में ससुराल चली जायेगी, परंतु पूरा जीवन तो हमें बहू के साथ ही व्यतीत करना है, अत: किसी भी प्रकार का माया प्रपंच न कर सरलता का बर्ताव करें। जिससे बहू के दिल में भी सास के प्रति माता के समान प्रेम उत्पन्न होगा।

मोक्षा अपने दिल में बिल्कुल भी क्रोध न लाते हुए पुन: अपने काम में जुड़ गई और काम पूरा होते ही अपने कमरे में चली गई। तभी मोक्षा का पति विवेक ऑफिस से घर आया। विवेक के आते ही सुशीला ने उसे मोक्षा की सारी गलतियाँ बताई और विवेक से कहा कि वह मोक्षा से रात्रिभोजन शुरू करने का कह दे। ताकि यह तकलीफ ही न आए। तब-)

विवेक : माँ! हम तो रात्रिभोजन त्याग नहीं कर सकते, पर वो कर रही है तो उसे क्यों रोके? माँ तुम टेन्शन मत लो, मैं उसे समझा दूँगा।

(ऐसा कहकर विवेक अपने कमरे में चला गया और वहाँ मोक्षा को रोते देखकर)

विवेक : मोक्षा! तुम भी मम्मी की बातों पर रोने बैठ गई। मम्मी की अब उम्र हो गई है।

मोक्षा : नहीं! गलती मम्मीजी की नहीं मेरी ही है। मैंने ही ध्यान नहीं रखा। जिसके कारण मैं मम्मीजी को क्रोध दिलाने में निमित्त बनी।

विवेक : चलो ठीक है, अब आगे से ध्यान रखना।

(यहाँ यदि मोक्षा चाहती तो अपनी सास द्वारा लगाए गए आरोपों का प्रतिकार भी कर सकती थी। परंतु जयणा द्वारा बचपन से दिए गए संस्कारों एवं अंतिम हितशिक्षा के शब्द उसके हृदय में आज भी जागृत थे। वह जानती थी कि ऐसी परिस्थिति में मौन रहना ही श्रेष्ठ है। उसके शब्द छोटी-सी बात को पहाड़ जितना बड़ा बना देने में मदद करते। जिससे घर का वातावरण बिगड़ते देर नहीं लगती। अत: अपने संस्कारों का परिचय देते हुए मोक्षा ने मौन पूर्वक सब कुछ सहन करके वास्तव में नारी सहनशीलता की मूर्ति होती है, इस बात को सार्थक कर दिया।

इस प्रकार चिंतित अवस्था में सोने के कारण मोक्षा दूसरे दिन सवेरे उठने में लेट हो गई। उस दिन मोक्षा के रसोई घर में पहुँचने से पहले विधि रसोई घर में पहुँच गई। मोक्षा भी जल्दी-जल्दी काम में लग गई। तभी बाहर से आवाज़ आई ....)

विवेक : विधि! जल्दी से चाय लाओ, मुझे ऑफिस के लिए लेट हो रहा है।

(तब मोक्षा ने विधि के हाथों में गरमा-गरम चाय का कप दिया। संयोगवश विधि उसे पकड़े उसके पहले मोक्षा ने कप छोड़ दिया और गरमा-गरम चाय मोक्षा और विधि पर गिर गई तथा कप प्लेट भी टूट गये। तब ...)

विधि : मॉम ... मॉम... मॉम ...

सुशीला : क्या हुआ? अरे ये कप किसने तोड़ा? बेटा तुझे कही लगी तो नहीं ना?

विधि : मॉम! गरम-गरम चाय से मेरा पैर जल गया। आऽऽऽ

सुशीला : मोक्षा! खड़ी-खड़ी देख क्या रही हो? जा जाकर बरनॉल लेकर आ।

(मोक्षा बरनॉल लेने गई। इतने में घर के बाकी लोग भी वहाँ आ गये।)

विधि : मॉम! देखा आपने, भाभी ने कल शाम का गुस्सा अब निकाला है। भैय्या! आप भी देख लो, फिर मत कहना कि मैं झूठ बोल रही थी।

(इतने में मोक्षा बरनॉल लेकर आई और विधि को लगाने लगी, तब सुशीला ने उसके हाथ से बरनॉल खींच लिया।)

सुशीला : जा-जा! तू क्या लगायेगी, पहले तो जान-बुझकर चाय गिरा दी और अब दवा लगाने आई है।

मोक्षा : मम्मी! मैंने जान-बुझकर चाय नहीं गिराई। मैंने विधि को कप पकड़ाया था, पर उन्होंने पकड़ा नहीं और मैंने भी छोड़ दिया।

विधि : देखा भैय्या देखा! कैसे मुझ पर गलत इल्ज़ाम लगाया जा रहा है।

प्रशांत : ये इस घर में क्या हो रहा है ?

सुशीला : अजी! आप तो चुप ही रहिए। आप इसमें ना पड़े तो ही अच्छा है। देख बेटा देख, कितना जला दिया विधि का पैर।

विवेक : मॉम! क्यों छोटी-सी बात को इतना बड़ा बना रही हो ?

सुशीला : हाँ-हाँ! तेरे लिए तो ये छोटी-सी बात है। कल जो इस महारानी का पैर जल जाता तो पूरे घर को सिर पर उठा लेता और तेरी अपनी बहन का पैर जल गया तो छोटी-सी बात।

विवेक : मॉम! आप जानो और ये जाने...

(ऐसा कहकर विवेक नाश्ता किए बिना ही ऑफिस चला गया। मोक्षा उसके पीछे गई पर तब तक विवेक कार में बैठकर चला गया था। मोक्षा ने भी उसके बाद पूरे दिन कुछ नहीं खाया। शाम को जब विवेक ऑफिस से घर आया तब ...)

सुशीला : आ गया मेरा बेटा! सुबह से नाश्ता नहीं किया। थक गया होगा।

विवेक : माँ, विधि का पैर कैसा है ?

सुशीला : बस सुबह से दर्द के मारे रो रही थी। अभी जाकर कहीं नींद आई है। ले बेटा! तू खाना खा ले।

विवेक : क्यों माँ! आज आप परोस रही हो ? मोक्षा कहाँ है ?

सुशीला : महारानीजी को सुबह थोड़ा कह क्या दिया, गुस्सा आ गया। सुबह से रुम में पड़ी है। कमरा बंद है। पता नहीं अंदर क्या कर रही है। सुबह से खाना नहीं खाया। चार बार तो मैंने जा-जाकर कह दिया। बेटा खाना खा लो, पर मेरी सुने कौन ?

(विवेक ने चुपचाप खाना खाया। लेकिन उसे अपनी माँ का स्वभाव पता होने के कारण उसे अपनी माँ की बात पर विश्वास नहीं आया और वह अपने पिताजी के पास गया।)

विवेक : पापा! क्या आज मोक्षा सच में सुबह से कमरे में है।

प्रशांत : बेटा! तू अपनी माँ की बातों में मत आ। सुबह से बेचारी काम कर रही थी। अभी आधे घंटे पहले ही कमरे में गई है। तू ही जाकर उसकी हालत देख ले और हाँ, सुन ...सुबह से बेचारी ने कुछ नहीं खाया है।

(विवेक अपने कमरे में गया तब मोक्षा सोई हुई थी और उसकी आँखों में आँसू थे।)

विवेक : मोक्षा! क्या हुआ तुम्हें ? पापा ने बताया तुमने सुबह से कुछ नहीं खाया और तुम क्यों रो रही हो ?

मोक्षा : कुछ नहीं, ऐसे ही मम्मी की याद आ गई।

विवेक : मोक्षा! तुम्हें तो तेज़ बुखार भी है और इतना बुखार होते हुए भी तुमने खाना क्यों नहीं खाया ? अरे!

ये क्या तुम्हारे पैर पर फोले हो गए है? तुमने सुबह बताया क्यों नहीं कि तुम्हारा पैर भी इतना जल गया है।

मोक्षा : बस यूँ ही, आप सुबह मेरे कारण नाश्ता करके नहीं गए, इसलिए मैंने भी नहीं खाया।

विवेक : मोक्षा! तुमने टिफिन भेजा था ना। मैंने सुबह का खाना खा लिया था। तो फिर तुमने खाना क्यों नहीं खाया? और तुमने इस पर बरनॉल लगाया या नहीं?

(मोक्षा ने इस पर कोई जवाब नहीं दिया।)

विवेक : रुको, मैं अभी डॉक्टर को बुलाता हूँ।

मोक्षा : नहीं प्लीज़! आप डॉक्टर को मत बुलाना। नहीं तो घर में फिर एक नया हंगामा शुरू हो जायेगा।

विवेक : कब तक तुम मम्मी से डरती रहोगी। अपनी हालत देखो, शादी के बाद कितनी पतली हो गई हो। कल पियर जाओगी तो वहाँ क्या जवाब दोगी? ससुराल में ठीक से नहीं रखते क्या? मोक्षा! मैं भी रोज़-रोज़ की इस किट-किट से तंग आ गया हूँ। मम्मी का स्वभाव तो बदलेगा नहीं और उसके पीछे हमारी जिंदगी खराब हो जायेगी। इससे अच्छा तो हम मम्मी से अलग जाकर रहें।

मोक्षा : ये आप क्या कह रहे हो? मम्मी से अलग?

विवेक : हाँ मोक्षा! अब इसका समाधान यही है। हम इसी शहर में कहीं आस-पास छोटा-सा फ्लेट ले लेंगे और हम ज्यादा दूर तो नहीं जा रहे हैं। मम्मी-पापा के पास आते-जाते रहेंगे। बस मैंने फैसला कर दिया है, मैं तुम्हें और रोता हुआ नहीं देख सकता। पापा मेरी बात समझ जायेंगे, मैं जल्दी ही उनसे बात करता हूँ।

मोक्षा : पर एक बार मेरी बात तो सुनिए!

विवेक : नहीं मुझे कुछ नहीं सुनना। (इस प्रकार विवेक ने मोक्षा को बहुत समझाकर मोक्षा को भी मना लिया। दूसरे दिन ..शाम 5 बजे)

सुशीला : मोक्षा! मेरे पैर बहुत दर्द कर रहे हैं जरा दबा देना।

मोक्षा : मम्मी! आपको तो पता है कि मुझे रात्रिभोजन त्याग है और चउविहार का समय होने आया है। आप कहे तो मैं पहले चउविहार करके फिर आपके पैर दबा दूँगी।

सुशीला : हाँ, हाँ, खाना कहीं भागे थोड़े ही जा रहा है। पहले पैर दबा दे फिर खा लेना।

मोक्षा : मम्मी! अभी तक खाना बनाना भी बाकी है। बनाने में भी टाईम लग जायेगा। मैं 15 मिनिट में बनाकर खाकर आती हूँ।

सुशीला : गरम खाने की इतनी क्या आदत है। एक दिन सुबह का खायेगी तो मर नहीं जायेगी। फिर रोज-रोज दो-दो बार गैस जलाना पड़ता है। आज गैस कितना महँगा हो गया है। तुम अब अपने पियर नहीं हो कि जब

चाहा तब खा लिया। अब सुसराल में आई हो तो यहाँ जैसा माहौल है वैसे रहना सीखो। ससुराल में जहाँ, जब, जैसे सब लोग रहते है, वैसे तुम भी रहो। यह नहीं हो सके तो सुबह का खाना खाने की आदत डाल दो, समझी।

मोक्षा : मम्मीजी! मुझे बचपन से ही रात्रिभोजन त्याग है। इसलिए रात को खाना तो मेरे लिए मुमकिन नहीं है। मैं सुबह का खाने के लिए तैयार हूँ।

सुशीला : हाँ, हाँ, बड़ी आई धर्म की पूछड़ी। मैं भी देखती हूँ कितने दिनों तक सुबह के ठंडे और लुखे सूखे खाने पर टिकती है।

प्रशांत : सुशीला! कुछ सोचकर बोलो। एक दिन की बात हो तो ठीक है। रोज-रोज सुबह का खाना कैसे खायेगी बेचारी। थोड़ा तो ध्यान रखों। वैसे भी शादी के बाद कितनी पतली हो गई है।

सुशीला : आप चुप ही रहिए। आपको पता है आज गैस के दाम कितने बढ़ गए है। बेचारा कितनी मेहनत करके कमाता है मेरा बेटा और ये यूँ ही उड़ाती रहेगी तो एक दिन घर का दिवाला निकल जायेगा।

(इस प्रसंग के बाद मोक्षा अपने लिए नया खाना न बनाकर दोपहर का बचा हुआ खाना ही शाम को खा लेती थी, पर उसने अपने धार्मिक संस्कारों को नहीं छोड़ा। इस घटना से मोक्षा के अलग घर बसाने के विचारों को और बल मिला। शाम को जब विवेक घर आया तब मोक्षा ने उसे इस घटना के बारे में कुछ भी नहीं बताया। क्योंकि वह जानती थी कि पति जब घर आता है तब वह ऑफिस के टेन्शन में होता है। उस वक्त पत्नी का यह कर्तव्य है कि वह उसे पूरे दिन की कहानी न सुनाकर उससे प्रेम भरा व्यवहार कर उसके मन को टेन्शन से मुक्त करें। वर्ना पति की हालत घट्टी में पीसे जाने वाले दानें की तरह हो जाती है। साथ ही वह यह भी जानती थी कि सास और बहू के बीच में हुए झगड़े का समाधान किसी भी बेंटे के पास नहीं होता। यदि इन दोनों के झगड़े के बीच में बेटा फँस जाए तो वह इतना चिड़चिड़ा हो जाता है कि उसे वह घर नरक जैसा दिखने लगता है। वह ऐसा सोचता है कि इस घर को छोड़कर जहाँ मुझे परम शांति मिलती हो ऐसे स्थान पर चला जाऊँ। मोक्षा इन सब परिस्थितियों को समझने के कारण अपने पर बीती कोई भी बात वह विवेक को नहीं बताती थी।

एक सप्ताह तो ऐसे ही सास बहू की खीट-पिट में बीत गया। एक दिन मौका देखकर प्रशांत ने (विवेक के पिता) विवेक को मोक्षा के सुबह का ठंडा खाना खाने की सारी बात बता दी। यह सुनकर विवेक चौंक गया। तब प्रशांत ने उसे अलग घर लेने की सलाह दी। ताकि विवेक-मोक्षा का जीवन शांति से गुजर सके। इसी बीच मोक्षा कुछ दिनों के लिए पियर चली गई। तीन-चार दिन तो वह अपनी माँ को कुछ नहीं बताती। लेकिन एक दिन -

जयणा : क्या बात है बेटा, जब से तुम आई हो थोड़ी उदास लग रही हो ? और चार दिनों में तुम्हारे घर से भी किसी का फोन नहीं आया। ससुराल में सब ठीक तो है ?

मोक्षा : हाँ माँ! सब ठीक है, लेकिन आप ऐसा क्यों पूछ रही हो ?

(जयणा अपनी बेटी के सिर पर हाथ फेरती हुई)

जयणा : बेटा! आज तक मैंने तुम्हें कभी इतना उदास नहीं देखा। (मोक्षा से कुछ बोला नहीं गया वह सिर्फ रोने लगी।)

जयणा : क्या बात है बेटा! तुम रो रही हो ? मुझे बताओ, मुझे नहीं बताओगी तो किसे बताओगी ?

मोक्षा : मम्मी! ससुराल में सब ठीक है, ससुरजी तो बहुत अच्छे है। विवेक भी मुझसे बहुत प्यार करते है पर...

जयणा : पर क्या बेटा ?

मोक्षा : मम्मी! मेरी सासुमाँ और ननंद का स्वभाव.....

(थोड़ी देर बाद रोते-रोते मोक्षा ने अपने साथ बीती सारी घटना सुना दी।)

मोक्षा : मम्मी! मैं आपसे पूछती हूँ , 20-20 वर्ष तक आपके घर पर रहने वाली मैं जब ससुराल में बहू बनकर गई तब से मेरे दिल में एक ही अरमान था कि पूरे परिवार को प्रेम देना, उनकी हर इच्छाओं को पूरा करना, इसलिए मैंने उनकी हर इच्छाओं को ध्यान में रखकर अपनी कई इच्छाओं को दफना दिया। फिर भी उन लोगों ने मेरे साथ खिलौने जैसा बर्ताव किया। उनकी हर इच्छाओं का ध्यान रखना, मेरा कर्तव्य था तो क्या मेरी इच्छाओं का ध्यान रखना उनका कर्तव्य नहीं था? माँ! मैं मानती हूँ कि फुटबॉल किक् मारने के लिए ही होता है । लेकिन फुटबॉल को इस हद तक किक् मारी जाए कि वह फट जाए तो वह उस फुटबॉल के साथ अन्याय होगा। वैसे ही माँ, मैं मानती हूँ मुझे सहन करना था। सहन करना एक बहू का धर्म होता है। लेकिन माँ सहन करने की भी कोई हद होती है । आज तक उनके हर एक आक्रोश को मैंने सहन किया है। लेकिन अब मुझसे सहन नहीं होता। आज तक मैं चुप रही लेकिन आगे से मैं चुप रहने वाली नहीं हूँ । उनके सामने मुझे बोलना ही ना पड़े इसलिए हम दोनों ने सोच लिया है कि हम अब परिवार से अलग रहेंगे और हमारे इस फैसले में पापाजी ने भी अपनी सहमति दे दी है।

जयणा : क्या ? मेरी बेटी होकर तुम एक माँ को अपने बेटे से अलग करोगी ?

मोक्षा : माँ! मैं जान-बुझकर एक माँ से उसका बेटा अलग नहीं कर रही हूँ। लेकिन मेरे साथ हुआ ही ऐसा है कि जिसके कारण मुझे यह कदम उठाना पड़ रहा है। मुझे जिसने प्रेम दिया उसके प्रति मैंने कभी खराब भाव

या द्वेष भाव नहीं रखा। जिसने मेरे जीवन में दीप जलाकर प्रकाश किया उसके जीवन में मैंने कभी अंधकार लाने की कोशिश नहीं की। लेकिन माँ! उन्होंने मेरे साथ ऐसा ही बर्ताव किया है, जिसके बदले में उन्हें अपने बेटे से अलग होना ही पड़ेगा। जैसा उन्होंने किया वैसा उन्हें भुगतना ही पड़ेगा।

जयणा : मोक्षा! तुम्हारे जीवन में चाहे कैसा भी दु:ख का तूफान आए, परंतु इसका अर्थ यह नहीं है कि तुम्हारे दु:ख में जो भी व्यक्ति निमित्त रूप बने हो, उन सबको दु:खी करने में तुम कटिबद्ध बन जाओ। तुम्हारे मन में गलतफहमियों ने अपना अड्डा जमा लिया है। दिमाग को थोड़ा ठंडा रखो तो तुम्हें सारा समाधान मिल जाएगा।

मोक्षा : माँ! कैसे रखूँ अपने दिमाग को ठंडा? विद्यार्थी को सिर्फ एक शिक्षक की आज्ञा माननी होती है, मरीज़ को सिर्फ एक डॉ. की नसीहत के अनुसार चलना होता है। एक क्रिकेटर को सिर्फ अपने टीम कोच की ही सलाह माननी पड़ती है, परन्तु एक बहू बनकर आई स्त्री को, सिर्फ पति के स्वभाव के अनुसार ही नहीं बल्कि परिवार के सभी सदस्य के स्वभाव के अनुसार अपना स्वभाव सेट करना होता है। आप ही बताओ माँ, यह कैसे संभव हो सकता है?

जयणा : बेटा! विद्यार्थी को सिर्फ एक शिक्षक का ही नहीं, बल्कि मोनिटर की आज्ञा भी माननी पड़ती है। मरीज़ को सिर्फ एक डॉ. की ही नहीं, नर्स की नसीहत के अनुसार भी चलना पड़ता है। एक क्रिकेटर को अपने टीम कोच का ही नहीं, अपने टीम के कप्तान का भी मानना पड़ता है। ठीक इसी प्रकार ससुराल जाने वाली बेटी को सिर्फ पति के ही नहीं घर के सभी सदस्यों के स्वभाव के अनुरुप अपना स्वभाव बनाना ही पड़ता है।

मोक्षा : तो इसका मतलब यही हुआ कि मैंने ही गलती की है। लेकिन मम्मी! जब मैंने पहली बार ससुराल में कदम रखा था, तब यही सोचा था कि मैं सभी के दिलों को जीत लूँगी। प्रेम देकर घर का वातावरण बदल दूँगी। पढ़ाई में ननंद एवं देवर की मदद करुँगी। सास-ससुर की मन लगाकर सेवा करुँगी। कभी किसी को शिकायत का मौका ही नहीं दूँगी और यह सब करने के लिए मैंने अपने रात-दिन एक कर दिए पर माँ, मेरी सास और ननंद को तो स्वयं में ही दिलचस्पी है। मेरी तो उन्हें कुछ पड़ी ही नहीं है। अब तो मुझे ऐसा लगता है कि पानी डालना ही है तो वस्त्र पर डालो जिससे वस्त्र साफ तो होगा, वृक्ष पर डालो जिससे वह नवपल्लवित तो होगा, लेकिन पत्थर पर डालने से क्या फायदा? इसलिए हमनें उनसे अलग रहने का विचार कर लिया है।

जयणा : तुम्हारी सोच में कोई दम नहीं है बेटा। आज जिस कार्य में तुम्हें जीत के दर्शन हो रहे है कल उसी कार्य में तुम्हें हार मिले तो आज की ऐसी जीत से सौ कदम दूर रहना अच्छा है।

मोक्षा : मैं कुछ समझी नहीं माँ। आप किस जीत और हार की बात कर रही हो?

जयणा : बेटा! मैं तुम्हें यही बताना चाहती हूँ कि अपने सास-ससुर से अलग होकर आज तो तुम नया घर बसाकर प्रतिकूलताओं के सामने तो जीत जाओगी, परंतु भविष्य में तुम्हें स्वतंत्र कुटुंब की समस्याओं के सामने हारना ही पड़ेगा, इसलिए बेटा, घर से अलग होने का विचार ही छोड़ दो, अन्यथा तुम्हारा भविष्य खतरे में आ जाएगा।

मोक्षा : माँ, हार और जीत तो दूसरे नंबर पर है। लेकिन हमारे बीच में जो प्रेम भाव घट रहा है उसका क्या? माँ, आपको ऐसा नहीं लगता कि यदि हम संयुक्त परिवार से अलग हो जाए तो हमें द्वेष भाव का शिकार होना ही नहीं पड़ेगा। साथ में रहने से एक दूसरे की गलतियाँ दिखती है। हमारी इच्छा के विरुद्ध कोई कार्य होता है तो हमें गुस्सा आता है और हम सामने वाले के विरुद्ध कुछ कर लेते है तो उन्हें भी गुस्सा आ जाता है। स्वभाव भेद होने के कारण शब्दों में मिठास नहीं आती। वातावरण अशांत बन जाता है। इन सब से मुक्त रहने के लिए ही हमने स्वतंत्र परिवार में रहने का निर्णय लिया है और माँ कोई बड़ा झगड़ा होने के बाद उनसे हमेशा के लिए मुँह फेर कर चले जाने से तो अच्छा है कि हम अभी उन्हें समझाकर उनकी सहमति से खुशी-खुशी अलग हो जाए। वैसे भी मम्मी-पापा से प्रेम और लगाव होने के कारण हम थोड़े-थोड़े दिनों में मिलने चले जाया करेंगे, जिससे हमारे बीच प्रेम बना रहेगा।

जयणा : पर बेटा! तुम अभी तक संयुक्त परिवार के महत्त्व को नहीं जान पाई, इसलिए ऐसी बात कर रही हो। संयुक्त परिवार में तुम्हें प्रतिकूलताओं को, दूसरों के स्वभाव को, दूसरों के व्यवहार को जरुर सहना पड़ेगा। लेकिन वहाँ तुम्हारा एवं विवेक का जीवन और तुम्हारा शील सलामत है। स्वतंत्र परिवार में तुम्हें अनुकूलता ही अनुकूलता मिलेगी। लेकिन वहाँ पर तुम्हारा जीवन सुरक्षित नहीं है। इस सच्चाई को तुम कभी भूल मत जाना।

मोक्षा : माँ, आप किस अनुकूलता और किस सलामती की बात कर रही हो?

जयणा : बेटा, कल जाकर तुम अपने सास-ससुर से अलग हो जाओ और अपने स्वतंत्र घर में रहने चली जाओ। तब घर पर रहोगे तुम और विवेक, उसके बाद तुम मन चाहे ढंग से घूम-फिर सकोगी। मन चाहा खाना बनाकर खा सकोगी। वहाँ तुम्हें टोकने वाला कोई नहीं होगा। यानि सिर्फ अनुकूलता ही अनुकूलता। लेकिन हर सिक्के के दो पहलु होते है। उसी प्रकार जीवन रूपी सिक्के के भी दो पहलु है। पहला अनुकूलता रूपी पहलु तो मैंने तुम्हें बता दिया। लेकिन सलामती रूपी दूसरे पहलु के बारे में तुम्हें पता होता तो शायद कभी संयुक्त परिवार से अलग होने की बात नहीं करती।

स्वतंत्र परिवार में विवेक सुबह नौ बजे ऑफिस चला जाएगा जो सीधा रात को नौ बजे ही आएगा। बीच के इन बारह घंटों में तुम घर पर अकेली रहोगी और मान लो कोई इसका फायदा उठाकर तुम्हारे घर में

प्रवेश कर ले और तुम्हारे शील पर आक्रमण करें, तब उस समय में तुम्हारे शील की रक्षा करने वाला कौन? स्वतंत्र परिवार में कभी तुम्हें मायके आना हो तब तुम्हें मायके आने के बाद भी पीछे से कितनी टेन्शन रहेगी कि विवेक कहाँ खाएगा? विवेक के कपड़े कौन धोएँगा? विवेक अकेला कैसे रहेगा? ऐसे में एम.सी. का पालन भी कितना दुष्कर हो जाएगा? चलो ये सब तो छोड़ो लेकिन एक खास बात मायके आने के बाद तुम्हारी अनुपस्थिति में विवेक कोई गलत कार्य कर बैठे तो उसका जिम्मेदार कौन? और इतना ही नहीं विवेक की अनुपस्थिति में तुम भी कोई गलत कार्य कर बैठो तो? स्वतंत्र और अकेले होने के कारण तुम्हें वहाँ रोकने वाला कोई नहीं होगा।

यह तो हुई शील एवं सदाचार संबंधी बातें। लेकिन किसी निमित्त को पाकर तुम दोनों के बीच झगड़ा हो जाए और आवेश में आकर विवेक तुम पर हाथ भी उठा दे। तुम भी गुस्से में आकर कुछ अनुचित कर बैठो तो वहाँ तुम्हें रोकने वाला कौन? संयुक्त परिवार में तो सास-ससुर का डर होने के कारण ये झगड़े कमरे तक ही सीमित रहते है। लेकिन स्वतंत्र परिवार में वे झगड़े आत्महत्या तक पहुँच जाते हैं। शायद तुम्हें मेरी बात पर विश्वास नहीं होता होगा, लेकिन यह सब सम्भव है। पता है - पिछले सप्ताह ही अपने पड़ोस के मोहल्ले में एक करुण घटना घटी। करीब 20 वर्ष की एक विवाहित युवती ने अपने शरीर पर मिट्टी का तेल छिड़ककर मरने का प्रयास किया। उस युवती ने यह कदम क्यों उठाया? इसके बारे में वहाँ के एक युवक के द्वारा जब मैंने जाना तो मैं स्तब्ध रह गयी। उस युवती ने प्रेम विवाह किया था। संयुक्त कुटुंब में रहते हुए उसने झगड़ा करके पति को माँ-बाप के विरुद्ध भड़काकर संयुक्त परिवार से अलग किया। शुरुआत में दो वर्ष तो ठीक-ठीक गए, परन्तु बाद में दोनों के बीच झगड़े शुरू हुए। बोलाचाली, गाली-गलौच, मारपीट तक मामला पहुँच गया। आखिर तलाक तक बात पहुँच गयी और एक दिन झगड़ा इतना बढ़ गया कि आवेश में आकर पत्नी ने अपने पर घासलेट डाल दिया और जलकर मर गई। जब हॉस्पिटल में आखरी सांस ले रही थी तब दूर खड़े अपने पति से कहती गयी कि 'इस जन्म में तो तुझे जिंदा रखकर मैं जली हूँ, परन्तु अगले जन्म में स्वयं जिंदा रहकर तुझे जलाऊँगी।' बेटा, आँख मिली व संबंध बंध तो गया, परन्तु आँख बंद होने के बाद अगले जन्म में ये संबंध टिके न रहें, इसकी घोषणा करती गयी। कितनी करुण है यह घटना! यह घटना यही सूचित करती है कि इस राह पर कदम भरने से पहले प्रत्येक जवान दम्पति को लाख बार सोच लेना चाहिए। मोक्षा! ऐसी कोई घटना भविष्य में तुम्हारे साथ न घट जाए। इसलिए प्रतिकूलताओं को नज़र अंदाज़ करके कुशलता एवं सहिष्णुता इन दो गुणों के द्वारा अपने जीवन को सुरक्षित बनाकर संयुक्त परिवार में रहना ही तुम्हारे एवं विवेक के भविष्य के लिए हितकर है।

मोक्षा : तो माँ, यदि कुशलता एवं सहिष्णुता ये दो गुण ही जो जीवन को सलामत रखने के लिए उपयोगी है

तो फिर इन दोनों गुणों को अपनाकर हम स्वतंत्र परिवार में भी शांति से सुरक्षित रह सकते है ना?

जयणा : चलो, मानती हूँ कि इन दो गुणों के द्वारा तुम अपने स्वतंत्र परिवार में शांति से सुरक्षित रह पाओगी। लेकिन जरा सोचो, अपने सास-ससुर के बारे में जब कभी बेटे का जन्म होता है तो माँ-बाप यही सोचते है कि बड़ा होकर यह हमारे बुढ़ापे की लाठी बनेगा। हमें हमारी सारी जिम्मेदारियों से मुक्त करके धर्माराधना करने की अनुकूलता देगा और हमारा बुढ़ापा तो पोते-पोतियों के साथ हँसते-खेलते, उन्हें कहानियाँ सुनाते यूँ ही बीत जाएगा।

इन्हीं कुछ अरमानों के साथ तुम्हारे सास- ससुर ने विवेक को जन्म देकर बड़ा किया होगा और तुम यह कदम उठाकर उनके लिए पोते-पोतियों के दर्शन तो दूर विवेक के दर्शन भी दुर्लभ बना दो तो यह तुम्हारी क्रूरता नहीं? मोक्षा, तुम अभी तक माँ नहीं बनी हो ना, इसलिए माँ की ममता क्या होती है? वह तुम नहीं जान पाओगी। तुम्हें इतना तो पता ही होगा कि माँ-बाप की आँखों में आँसू दो कारण से ही आते है। एक तो पुत्री की विदाई पर और दूसरा पुत्र की बेवफाई पर। ऐसा न हो कि तुम्हारा उठाया हुआ यह कदम, भविष्य में तुम्हारी ओर आकर ही खड़ा हो जाए। बीस साल तक जिस माता-पिता ने विवेक को पाल पोसकर बड़ा किया उन उपकारी माता-पिता की आँखों में उनसे अलग होकर यदि विवेक आँसू ला सकता है तो तुम्हारे और विवेक के संबंध को तो अभी एक साल भी नहीं हुआ है तो वह भविष्य में तुम्हारी आँखों में आँसू लाये उसमें कौन-सी बड़ी बात है, इसलिए प्रतिकूलताओं को सहन करके भी अपने भविष्य को सलामत रखने के लिए और अपने सास-ससुर के आशीर्वाद पाने के लिए संयुक्त परिवार में रहना ही श्रेयस्कर है।

मोक्षा : तो इसका मतलब यही हुआ कि मुझे ही सहनशील बनना चाहिए। यानि कि एक पालतू कुत्ते को उसका मालिक व उसके घर वाले चाहे जितना भी मारे या परेशान करें, पर वह सब कुछ सहन ही करता है। ठीक वैसे ही मुझे भी मेरी सास व ननंद चाहे जितना भी परेशान करें, पर मुझे सिर्फ सहन ही करना है और उनका प्रतिकार नहीं करना है। यही आपका कहना है ना? लेकिन माँ, मैं यदि अपने शरीर को गौण करके सिर्फ सहन करती रहूँ और मेरी तबियत बिगड़ जाए तो उसका जिम्मेदार कौन? फिर अस्वस्थता के कारण यदि मैं काम न करुँ जिससे घर के सारे सदस्यों का मुँह बिगड़ जाए तो उसका क्या? मैं आपसे पूछती हूँ कि संयुक्त परिवार में यदि बहू के कुछ फर्ज है तो सास के कोई फर्ज नहीं है? भाभी के कुछ कर्तव्य है तो देवर और ननंद के कोई कर्तव्य ही नहीं? मेरे अनुसार घर में शांति का वातावरण लाने के लिए अकेली मुझे ही सुधरने की आवश्यकता नहीं, अपितु मेरी सास को भी अपना दिमाग ठिकाने लाना उतना ही जरुरी है।

जयणा : बेटा, फिलहाल तो तुम अब उस घर में बहू के स्थान पर हो, इसलिए मैं तुम्हें बहू के कर्तव्य सीखा

रही हूँ। हाँ, कल जाकर तुम सास बनोगी और तुम्हारी बहू से तुम्हारी कुछ अन-बन हो जाएगी तब मैं तुम्हें सास के कर्तव्य भी जरुर समझाऊँगी। रही सास को अपना दिमाग ठिकाने लाने की बात तो बेटा। अपनी सास को सुधारने के लिए पहले तुम्हें ही सुधरना पड़ेगा। अब रही बात तुम्हारे स्वास्थ्य की तो उसे तो प्रेम से दूसरों का दिल जीतकर सुलझाया जा सकता है, और परिवार में प्रेम कैसे देना वह मैं तुम्हें सिखाऊँगी।

मोक्षा : क्यों माँ? सहन करने की बात हो या कर्तव्य की बात, फर्ज अदा करने की बात हो या सुधरने की बात, सब कार्य पहले बहू से ही क्यों शुरू होते है? मेरी सास सुधर जाएँगी तो मेरा स्वभाव स्वयं ही सुधर जाएगा, इसलिए मेरा तो यही मानना है कि माँ, पहले मुझे नहीं मेरी सास को ही सुधरना चाहिए।

जयणा : तुम्हारी सास तुम्हारे साथ अच्छा बर्ताव करें तो ही तुम भी उनके साथ अच्छा बर्ताव करोगी। तुम्हारी इस सोच के अनुसार तुम्हारा बर्ताव, तुम्हारा स्वभाव कैसा होना चाहिए? यह तुम्हारे हाथ में नहीं बल्कि तुम्हारे सास के हाथ में है। यदि वे तुमसे अच्छा बर्ताव करें तो तुम्हारा बर्ताव अच्छा और वे तुमसे बुरा बर्ताव करें तो तुम्हारा बर्ताव बुरा होगा। यदि तुम्हें ऐसा ही स्वभाव रखना है तो तुम्हारे घर में अशांति, क्लेश, झगड़े हो इसमें कोई बड़ी बात नहीं है। बेटा! यह तो तुम्हारे हाथ में है कि तुम क्रोध के आगे अधिक क्रोध दिखाकर उनसे जीत जाओ या फिर क्रोध के आगे प्रेम दिखाकर तुम उनका दिल जीत लो। बाज़ी तुम्हारे हाथ में है। चयन तुम्हें करना हैं बेटा। तुम जो सुधरने और सहन करने में पहले बहू को ही क्यों करना यह पूछ रही थी ना? तो इसका जवाब यह है कि तुमने कच्चा घड़ा तो देखा ही होगा। कुंभार उस घड़े को जैसा आकार देना चाहे वह दे सकता है। लेकिन वही घड़ा जब पक्का बन जाए तब उसके आकार को यदि कुंभार बदलना चाहे तो घड़ा टूट जाता है लेकिन बदलता नहीं। ठीक वैसे ही वृद्धावस्था होती है पक्के घड़े जैसी और युवावस्था होती है कच्चे घड़े जैसी, तो फिर सुधरने और सहन करने की सलाह बहू को ही दी जाए इसमें भला आश्चर्य कैसा? तुम्हारी सास का स्वभाव 50 साल से वैसा ही है तुम उस घर में नई गई हो तो तुम अपने स्वभाव को बदलने की कोशिश करो।

मोक्षा : यदि माँ, मैं आपकी इस सोच के अनुसार चलूँ और संयुक्त परिवार में ही रहूँ तो एक और समस्या खड़ी हो जाती है। एक तरफ परिवार है तो एक तरफ धर्म। आपके कहे अनुसार उनके स्वभाव के अनुकूल बनने के लिए यदि मैं रात्रिभोजन करना शुरू कर दूँ तो मेरा धर्म छूट जाता है और यदि मैं अपने धर्म पर टिकी रहूँ तो आये दिन नये झगड़े होने के कारण आपसी प्रेम टूट जाता है। अब आप ही बताईए मैं किसके पक्ष में जाऊँ? धर्म के पक्ष में या परिवार के पक्ष में? यदि मैं धर्म का ही पक्ष लूँ तो क्या मुझे जिंदगी भर सुबह का ठंडा भोजन ही खाना पड़ेगा?

जयणा : मोक्षा! यही तो तुमने बहुत बड़ी गलती की है। सबसे पहले तो तुम्हें अपनी सासुमाँ का दिल

जीतना था और उन्हें भी धर्म के मार्ग पर ले जाना था। लेकिन तुमने सिर्फ अपने धर्म को ही टिकाकर रखना जरुरी समझा और इस कारण तुम अपनी सास के दिल से बहुत दूर हो गई। बेटा, बहू को तो अपनी सास को जिम्मेदारियों से मुक्त करके धर्माराधना में अनुकूलता करके देनी चाहिए। जिससे तुम्हारी सास जो भी धर्माराधना करेगी उसमें तुम भागीदार बनोगी "करन, करावन ने अनुमोदन सरखा फल निपजायो रे ..." शायद संयुक्त परिवार में रहकर तुम मन चाहो उतनी धर्माराधना नहीं कर सकोगी, परंतु सास को करवाकर लाभ तो ले सकती हो और साथ ही तुम्हें भी धर्माराधना में अनुकूलता मिलती रहेगी।

मोक्षा : पर माँ! आप तो जानती ही है कि मेरी सासुमाँ कितनी नास्तिक है। अब मैं उन्हें धर्म में कैसे जोडुँ? अभी तो वे मुझसे इतनी नाराज़ है कि यदि मैं उन्हें कुछ भी कहुँगी तो वे मानने के लिए तैयार ही नहीं होगी?

जयणा : इसके लिए तुम्हें अपनी सासुमाँ का दिल जितना होगा।

मोक्षा : पर माँ कैसे?

जयणा : बेटा! गुरुकुल में पढ़कर तुमने कितनी कलाएँ सीखी है और उसमें भी तुम तो चित्रकला, संगीतकला में निपुण हो। अपनी सास का अच्छा चित्र बनाकर, उन पर अच्छी शायरी या गीत बनाकर उन्हें सुनाओ, उनकी प्रशंसा करो, उनके पास जाकर बैठो, उन्हें अपने दिल की बात कहो, उन्हें कोई तकलीफ तो नहीं है, इस बारे में पूछो। बेटा, मैं तो यही मानती हूँ कि कुआँ खोदने वाले को शायद पानी मिले या न मिले, परंतु सामने वाले के प्रति प्रेमपूर्ण बर्ताव करने से हमें प्रेम का अनुभव न हो ऐसा हो ही नहीं सकता। तुम एक बार प्रयत्न करके देखो...सफलता तुम्हारे पैर छूएँगी। बेटा! एक बात का ध्यान रखना कि विवेक को धर्ममय वातावरण में आगे बढ़ाने के लिए व धर्म करने के लिए कभी जोर-जबरदस्ती या धमकियों का इस्तेमाल मत करना। बल्कि उसे भी अपनी चित्रकला, संगीतकला आदि से खुश करके प्रेम से धर्म में जोड़ना, थोड़ी धीरज रखना, सब ठीक होकर ही रहेगा।

मोक्षा : ठीक है माँ! मैं ससुराल जाकर जल्दी ही आपको शुभ समाचार देती हूँ।

(आजकल की धार्मिक पत्नियाँ सोचती है कि मैं यदि धार्मिक हूँ तो मेरे पति भी धार्मिक बने। यहाँ तक की सोच तो फिर भी ठीक है, परंतु वह अपने पति को धर्म में जोड़ने के लिए धमकियाँ व जबरदस्ती का उपयोग करती है जैसे कि यदि आप मंदिर नहीं जाएँगे तो आपको चाय नहीं मिलेगी। उठिये पहले मंदिर जाकर आइए। इस प्रकार की धमकियों से वह अपने पति को धर्म में जोड़ तो लेती है लेकिन वह धर्म दीर्घकाल तक टिक नहीं पाता। इसके बदले उन्हें खुश करके प्रेम से उनके मन में धर्म के प्रति अहोभाव पैदा करवाकर उनसे धर्म करवाना चाहिए। जिससे वह धर्म दीर्घकाल तक टिका रहे। इस प्रकार मोक्षा को अपने मन की सारी शंकाओं का समाधान अपनी माँ से मिल गया। वैसे तो बहू को अपने ससुराल की छोटी-मोटी

बातें पियर में जाकर नहीं करनी चाहिए और ना ही पियर की बातें ससुराल में करनी चाहिए क्योंकि कई बार समझ फेर के कारण अनावश्यक टकराहट का वातावरण बनता है। यहाँ पर मोक्षा ने भी अपने ससुराल की बातें अपनी माँ को बतानी उचित नहीं समझी, पर जयणा ने एक माँ का कर्तव्य निभाते हुए अपनी बेटी की उदासी का कारण पूछा? तब भी मोक्षा बताना नहीं चाहती थी। लेकिन वह जानती थी कि मेरी शंकाओं का सही समाधान मुझे माँ के सिवाय और कही से नहीं मिलेगा। अत: उसने सारी बाते माँ को बता दी और उसकी माँ ने भी उसे इतने सुंदर समाधान दिए कि जिससे एक कुटुंब बिखरने से बच गया, यदि ऐसा न होता तो कल मोक्षा संयुक्त कुटुंब से अलग हो जाती और न जाने उसे कितनी ही समस्याओं का सामना करना पड़ता।

आजकल के वातावरण पर हम नज़र डाले तो अधिकांश माताएँ अपनी पुत्रियों को विदाई की अंतिम हितशिक्षा में यही कहती है कि "बेटा, अपने ससुराल में किसी से डरकर मत रहना। कोई तुम्हें एक सुनाए तो तुम चार सुनाना। पति को अपने वश में रखना। ससुराल में कोई ज्यादा तकलीफ आ जाए या किसी से अनबन हो जाए तो किसी प्रकार की चिंता मत करना और सीधे अपने पियर आ जाना। हम तुम्हारी और दामादजी की सारी व्यवस्था कर देंगे"। बेटियों को संयुक्त परिवार से अलग होने का जबरदस्त पीठबल तो अपनी माँ से ही मिल जाता है। वैसे भी आजकल की बेटियों में सहनशीलता न होने के कारण व माँ का साथ होने के कारण जरा-सी अनबन हुई नहीं कि अपने पियर आकर बैठ जाती है। उसमें भी माताएँ अपनी बेटियों को यही सिखाती है कि "दामादजी लेने आए तब कह देना कि आप अलग घर लेंगे तो ही मैं आपके साथ आऊँगी वर्ना नहीं"। बेचारा पति क्या करें। अपनी पत्नी को घर पर लाने के लिए उसे अपनी माँ से अलग होना ही पड़ता है। यानि कि अपनी पत्नी की धमकी के आगे पति को झुकना ही पड़ता है। इस प्रकार अपनी पुत्री को अनुकूलता देने की दृष्टि से माताएँ अपने हाथों से अपनी पुत्रियों को समस्याओं के कुएँ में ढकेल देती है। हर माताओं को जयणा का उदाहरण लेकर अपनी पुत्रियों को संयुक्त परिवार के महत्त्व समझाते हुए उनके टूटते घर को बचा लेना चाहिए।

मोक्षा पियर तो आई थी इस इरादे से कि उसे वापस उस घर में कदम रखना न पड़े, पर अब वह उस दिन का इन्तजार करने लगी कि कब उसके घर से बुलावा आये और वह परिवार के सभी सदस्यों को प्रेम देकर एक सूत्र में बांधे। दो-तीन दिन बाद विवेक मोक्षा को लेने आया। जयणा ने मोक्षा की सास के लिए एक साड़ी और ननंद के लिए एक ड्रेस, बाकी परिवार के सभी सदस्यों के लिए कुछ न कुछ भेजा। मोक्षा के पियर जाने के बाद घर का सारा काम सुशीला को ही करना पड़ता था। विधि सुबह छ: बजे कॉलेज जाती तो सीधा शाम छ: बजे ही आती थी और मोक्षा के आने के बाद तो सुशीला ने घर का काम छोड़ दिया था।

पियर जाने के बाद सारा भार सुशीला पर आने के कारण उसे रह-रहकर मोक्षा की याद आती थी। वह सोच ही रही थी कि मोक्षा कितनी जल्दी आए और घर को संभाले भले ही स्वार्थ के कारण पर फिर भी सुशीला को मोक्षा की कमी महसूस होने लगी। मोक्षा विवेक के साथ ससुराल आई। आते ही -)

मोक्षा : प्रणाम मम्मीजी!

सुशीला : आ गई मोक्षा, घर में सब ठीक तो है ना?

मोक्षा : हाँ मम्मीजी ! घर में सब ठीक है, मम्मी ने आपको बहुत याद किया है।

सुशीला : सफर के कारण थक गई होगी। जाओ, थोड़ी देर आराम करके आ जाओ। फिर बाते करेंगे।

मोक्षा : ठीक है मम्मीजी।

(मोक्षा सामान लेकर अंदर गई और थोड़ी देर बाद अपनी सास के कमरे में जाती है।)

मोक्षा : मम्मीजी ! मम्मी ने आपके लिए ये साड़ी भेजी है।

सुशीला : अरे! इसकी क्या जरुरत थी? वैसे साड़ी तो बहुत अच्छी है, पर ब्लाउज तैयार नहीं होगा ना? नहीं तो मैं कल पूजन में पहन लेती।

मोक्षा : मम्मीजी! कैसा पूजन?

सुशीला : अरे हाँ मोक्षा! मैं तुम्हें कहना ही भूल गई। कल मेरी और तुम्हारे ससुरजी की 35 वीं सालगिरा है इसलिए तुम्हारे ससुरजी ने कहा- क्यों न इस बार पूजन पढ़ा लिया जाए, मुझे भी बात जँच गई। इसलिए विवेक को भी तुम्हें लेने के लिए भेज दिया ताकि तुम भी पूजन में भाग ले सको, पर मोक्षा। यहाँ पर तो कोई भी टेलर मुझे इतनी जल्दी ब्लाउज सिकर नहीं देगा। मेरी बहुत इच्छा है कि मैं यही साड़ी पहनूँ।

मोक्षा : मम्मीजी! आपकी सालगिरा वाह! आप ब्लाउज की कोई चिंता मत करो। मैं आपको शाम तक सिलकर दे दूँगी।

सुशीला : तू? तुझे सिलाई आती है क्या?

मोक्षा : हाँ मम्मीजी! मुझे सिलाई आती है।

सुशीला : तूने कभी कहा तो नहीं।

मोक्षा : मम्मीजी! कभी जरुरत ही नहीं पड़ी।

(इतना कहकर मोक्षा चली गई।)

सुशीला : जरुर घर में सिलाई का काम न करना पड़े, इसलिए नहीं कहा होगा। मैं भी देखती हूँ कि शाम तक कैसे सिलती है?

प्रशांत : तुम्हें तो बस गलती ही निकालनी आती है।

सुशीला : आप चुप ही रहिए। आपको क्या पता यह कितनी चालाक है।

(शाम तक तो मोक्षा ने ब्लाउज सिलकर अपने सासुजी के हाथ में दे दिया, साथ ही जबरदस्ती सासुमाँ के हाथ पर मेंहदी लगाने लग गई।)

सुशीला : अरे मोक्षा! ये क्या कर रही हो ?

मोक्षा : मम्मीजी! आपकी सालगिरा है, आपके हाथ कोरे कैसे रह सकते हैं ? इसलिए मैं आपके हाथों में मेहंदी लगा रही हूँ।

(इस प्रकार मोक्षा ने अपने हाथ आए एक भी प्रसंग को जाने नहीं दियाऔर अपने सासु का दिल जीतने की शुरुआत की। दूसरे दिन जब सुशीला पूजन के लिए तैयार हो गई। तब-)

सुशीला : अरे बेटा विधि! और कितना टाईम है तैयार होने में ? पूजन का टाईम हो गया है।

विधि : हाँ माँ! बस 15 मिनिट।

सुशीला : बेटा! पूजन में जाना है कोई पार्टी में नहीं, जो तू 1 घंटे से तैयार हो रही हैं।

(इतने में मोक्षा तैयार होकर आई।)

मोक्षा : माँ! आज तो आप बहुत सुंदर लग रही हो। ये कलर आप पर बहुत ज्यादा जँच रहा है। माँ, आप इस कुर्सी पर बैठिए, पापा आप भी यहाँ आकर बैठिए ना।

सुशीला : अरे, क्या कर रही हो मोक्षा हम दोनों को पास में बिठाकर ?

(इतने में मोक्षा अपने कमरे से चित्र बनाने के लिए कागज़ और पेन्सील लेकर आई!)

मोक्षा : मम्मी-पापा! आप दस मिनिट तक ऐसे ही बैठना, वैसे भी विधि को आने में देर है।

(और मोक्षा ने 15 मिनिट में विधि के आने से पहले ही एक सुंदर-सा चित्र बनाकर अपने सास-ससुर को गिफ्ट दिया।)

प्रशांत : वाह बेटा! क्या चित्र बनाया है, है ना सुशीला ?

सुशीला : हाँ-हाँ ठीक है।

(पूजन से आने के बाद मोक्षा ने चउविहार किया, और शाम को अपने सास की मनपसंद खीर-पुड़ी बनाने में लग गई। इस तरफ ...)

विधि : माँ, ये फोटो किसने दिया आपको ? कितना सुंदर है ये फोटो!

सुशीला : बेटा! ये तुम्हारी भाभी ने बनाकर मुझे दिया है, कुछ सीख अपनी भाभी से, कितना सुंदर चित्र

बनाती है।

प्रशांत : भाग्यवान। यही प्रशंसा मोक्षा के सामने की होती तो वह कितनी खुश हो जाती।

सुशीला : आप तो चुप ही रहिए। मुझे क्या करना है और क्या नहीं यह मुझे पता है।

(वहाँ से सब खाना खाने बैठे। मोक्षा ने खाना परोसा।)

प्रशांत : वाह बेटा! आज तो बहुत बढ़िया खाना बनाया है तुमने। तुम्हें कैसे पता चला कि ये तुम्हारी सासुमाँ की मनपसंद आईटम है।

विधि : पापा! भाभी ने मुझसे पूछा था।

(दो-तीन दिन ऐसे ही गुज़र गये और एक दिन विधि एवं सुशीला खरीदी करने के लिए बाहर गये। अचानक एक कार से धक्का लगने के कारण सुशीला गिर गई और उसके पैर में फेक्चर हो गया। विधि सुशीला को डॉक्टर के पास ले गई और घर पर भी अपनी भाभी को फोन करके सारी बात बतायी। मोक्षा विवेक के साथ अस्पताल पहुँची तब तक सुशीला के पैर पर 7 दिन का प्लास्टर लग गया था। डॉक्टर ने सुशीला को बेडरेस्ट करने को कहा। तीनों सुशीला को घर लेकर आये। बेडरेस्ट होने के कारण सुशीला का खाना-पीना, लेट्रीन, बाथरुम सब बेड पर ही होता था। मोक्षा दिल लगाकर अपनी सासुमाँ की सेवा करने लगी। उन्हें समय-समय पर खाना खिलाना, पानी पिलाना, कुछ जरुरत हो तो लाकर देना आदि सारी जिम्मेदारियों को अपने सिर पर उठा लिया था और एक दिन ...)

सुशीला : विधि बेटा मुझे साफ कर दो।

विधि : सॉरी मॉम! मुझ से ये काम नहीं होगा। रुको, मैं भाभी को बुलाती हूँ।

(विधि बाहर गई और उसने मोक्षा से कहा-)

विधि : भाभी! मॉम आपको बुला रही है। (ऐसा कहकर वह अपने रुम में चली गई।)

मोक्षा : मम्मीजी! आपने मुझे बुलाया।

सुशीला : मोक्षा! वो.....वो.....

मोक्षा : क्या हुआ मम्मीजी! कुछ दर्द हो रहा है? डॉक्टर को बुलाना है क्या?

सुशीला : नहीं मोक्षा! वो मुझे थोड़ा साफ करना था।

मोक्षा : अरे! इतनी-सी बात है, मैं अभी दूसरे कपड़े व पानी लेकर आती हूँ।

(मोक्षा ने कुछ भी कहे बिना सुशीला को साफ कर दिया। शाम के वक्त जब परिवार के सारे सदस्य इकट्ठे हुए तब-)

सुशीला : विवेक! मेरे काम के लिए थोड़े दिन किसी बाई को रख दो।

मोक्षा : क्यों मम्मीजी! बाई की क्या जरुरत है? मैं हूँ ना, मुझे आपकी सेवा का मौका कब मिलेगा? मैं सब कर लूँगी।

प्रशांत : बेटा! इसका काम, घर का सारा काम और मेहमानों को भी संभालना, सब तुम अकेली कैसे करोगी?

मोक्षा : पिताजी! आप चिंता मत कीजिए। मैं जल्दी उठकर सब कुछ संभाल लूँगी। फिर भी मेरा पहला लक्ष्य होगा मम्मीजी की सेवा। यदि मुझसे नहीं होगा तो मैं आपको कह दूँगी।

प्रशांत : ठीक है बेटा! जैसी तुम्हारी मर्जी, जरुरत पड़े तो सुशीला को तो विधि भी संभाल लेगी।

विधि : प्लीज़ डेड! वैसे भी मेरी परीक्षा के दिन नज़दीक आ रहे हैं और ये मॉम को साफ-वाफ करने का काम मुझसे नहीं होगा।

मोक्षा : पापा ! आप निश्चित रहिए, सब ठीक हो जाएगा।

(मोक्षा और विधि के विचारों को जानकर सुशीला को पहली बार मोक्षा पर अपनी बेटी जैसा प्रेम आने लगा। मोक्षा भी दिल लगाकर अपने सास की सेवा करने लगी, सुशीला भी कोई भी काम हो तो सहजता से मोक्षा को कहने लगी। मोक्षा और सुशीला अब मन की बातें एक दूसरे को कहने लगे। इस प्रकार सास व बहू में कुछ नज़दीकियाँ बढ़ने लगी।)

मोक्षा द्वारा किए गए प्रेम पूर्ण व्यवहार ने सुशीला के आक्रोश को प्रेम में बदल दिया, क्योंकि मोक्षा को अपनी माँ से यही हितशिक्षा मिली थी कि बाह्य समग्र प्रतिकूलताओं को दूर करने की ताकत जो पैसे में है तो अभ्यन्तर समस्त प्रतिकूलताओं को दूर करने की ताकत प्रेम में है।

इस प्रकार प्रेम भरे वातावरण में सात दिन कैसे बीत गये, पता ही नहीं चला। आठवें दिन सुशीला का प्लास्टर निकल गया। डॉ. ने मालिश करने को कहा। मोक्षा ने इस सेवा को भी सहर्ष स्वीकार कर लिया और मन लगाकर तीनों वक्त सुशीला के पैर की मालिश करने लगी। एक दिन मोक्षा सुशीला की दोपहर में मालिश कर रही थी तब ....)

सुशीला : मोक्षा! आज तो मैं पूरे दिन बोर हो जाऊँगी। आज पूरे दिन करेंट नहीं आने वाला है। अब दोपहर में टाईम पास कैसे होगा, पता नहीं?

मोक्षा : मम्मीजी! एक काम कीजिए ना। मैं वैसे भी अभी सामायिक लेने वाली हूँ। आप भी मेरे साथ ले लीजिए।

सुशीला : मन तो नहीं है फिर भी तुम कह रही हो तो चलो ले लेती हूँ। टाईम भी पास हो जाएगा।

(सामायिक में मोक्षा ने सुशीला को जैनिज़म के पहले खंड में रहे हुए आहार शुद्धि का विषय समझाया। कंदमूल में इतने जीव होते हैं, यह जानकर तो सुशीला की आत्मा काँप उठी। मोक्षा ने सुशीला को इस भव एवं अगले भव में कंदमूल खाने के दुष्परिणामों के बारे में बताया।तथा उससे संबंधित दृष्टांत भी सुशीला को सुनाये। कंदमूल खाने के बाद होने वाले भयंकर परिणामों को जानकर सुशीला ने उस दिन से आजीवन कंदमूल नहीं खाने का निश्चय कर लिया। उस दिन सुशीला को सामायिक में इतना आनंद आया कि उसने अनुकूलता अनुसार नित्य एक सामायिक करने का निर्णय कर लिया और जब यह बात मोक्षा को बताई। तब ...)

मोक्षा : मम्मीजी! यह तो बहुत अच्छी बात है। मैं भी कई दिनों से कहने का सोच ही रही थी कि आपने इतने सालों तक इस घर की सेवा की, इस घर को सम्भाला। अब आप घर की सारी चिंताओं से मुक्त होकर धर्म आराधना करें।

सुशीला : पर मोक्षा! मुझे तो कुछ आता ही नहीं है।

मोक्षा : कोई बात नहीं मम्मी! मैं हूँ ना आपके साथ। मैं रोज आपके साथ सामायिक, प्रतिक्रमणादि करुँगी। बाकी समय में मैं आपको अच्छी-अच्छी पुस्तकें दूँगी। वे पढ़कर आपको काफी ज्ञान मिल जायेगा और आगे भी धर्म करने की रुचि पैदा होगी।

सुशीला : ठीक है बेटा!(दूसरे दिन)

मोक्षा : मम्मी! डॉ. ने वैसे भी अब आपको थोड़ी वॉकिंग करने को कहा है तो आप एक काम कीजिए। मेरे साथ मंदिर आ जाइए तो वॉकिंग की वॉकिंग भी हो जायेगी और प्रभु के दर्शन और पूजा भी हो जायेगी।

सुशीला : अच्छी बात है।

(दोनों साथ में मंदिर गये, मंदिर में मोक्षा ने सुशीला को प्रभु पूजा की विधि बताई तथा उसके फल के बारे में बताया। चैत्यवंदन में मोक्षा ने एक सुंदर स्तवन गाया। जिसे सुनकर सुशीला भाव-विभोर हो गई और घर आते समय रास्ते में....) .

सुशीला : मोक्षा तुमने ये सब कहाँ से सीखा?

मोक्षा : मम्मीजी! प.पू. विदुषी सा.श्री मणिप्रभाश्रीजी के द्वारा रचित जैनिज़म कोर्स से मुझे इतना ज्ञान प्राप्त हुआ है।

सुशीला : मोक्षा! क्या ये कोर्स, मैं भी कर सकती हूँ?

मोक्षा : हाँ मम्मीजी! इसमें हर उम्र के स्त्री-पुरुष भाग ले सकते हैं।

सुशीला : तो मोक्षा! तुम आज ही मेरा फार्म भर देना।

मोक्षा : हाँ मम्मीजी! बहुत अच्छा रहेगा। इससे आपका टाईम भी पास हो जाएगा और इतना ज्ञान भी मिलेगा।

सुशीला : और हाँ मोक्षा! आज से मैं प्रतिदिन तुम्हारे साथ पूजा करने आऊँगी।

(इस प्रकार मोक्षा अपनी मम्मी के द्वारा प्राप्त हितशिक्षा को धीरे-धीरे अपने जीवन में अमल करने में सफल बन गई। थोड़े ही दिनों में सुशीला ठीक हो गई। एक दिन दोपहर में सुशीला अपने कमरे में रो रही थी तब -)

प्रशांत : क्या बात है? आज सबको रुलाने वाली स्वयं रो रही है?

सुशीला : आप तो चुप ही रहिए, मैं रो रही हूँ और आपको मज़ाक सूझ रही है।

प्रशांत : अच्छा बाबा! बताओ क्या सोचकर रो रही हो?

सुशीला : वो ... मैं मोक्षा के बारे में सोच रही थी।

प्रशांत : क्यों! उसे और कोई दु:ख देना बाकी है क्या?

सुशीला : आप फिर बोले।

प्रशांत : मैं तो मज़ाक कर रहा था। बताओ, तुम मोक्षा के बारे में क्या सोच रही हो?

सुशीला : मुझे सचमुच अपने किए पर पश्चाताप हो रहा है। मैंने उसे कितने दु:ख दिये और वह आज मेरी इतनी सेवा कर रही है। बस, अब मैं उससे माफी मांगना चाहती हूँ।

प्रशांत : अरे भाग्यवान! नेकी और पूछ-पूछ। शुभ काम में देरी नहीं करनी चाहिए। चलो, अभी हम मोक्षा के कमरे में चलते हैं।

(दोनों मोक्षा के कमरे में पहुँचे। मोक्षा उस समय सो रही थी। सुशीला ने उसके पास जाकर देखा कि मोक्षा शांति से सो रही थी। लेकिन उसके गालों पर सूके हुए अश्रुधारा के निशान देखकर सुशीला ने सोचा कि मेरी बहू की इस घर में ऐसी हालत? और उसने अपना हाथ मोक्षा के सिर पर फेरा। इससे मोक्षा जाग गई।)

सुशीला : अरे बेटा! तुम रो रही थी क्या हुआ?

(मोक्षा और जोर से रोती हुई सुशीला के गले लग गई। सुशीला ने भी वात्सल्य भरा हाथ उसके सिर पर फेरते हुए कहा -)

सुशीला : क्या हुआ बेटा! बताओ तो सही? किसी ने तुम्हें कुछ कहा?

मोक्षा : नहीं माँ! आपके मुँह से ये 'बेटा' शब्द सुनने के लिए ही मैं रो रही थी। मैं सोच रही थी कि जरुर मेरी सेवा में, मेरे प्रेम में ही कोई कमी आ रही है। जिसके कारण आपको मुझ पर बेटी जैसा प्रेम नहीं आ रहा है। पर आज आपने मुझे बेटी बुलाया.... ।

सुशीला : बेटा! मुझे माफ कर दो। मैंने तुम्हें बहुत दु:ख दिए, कठोर शब्दों को बोलकर मैंने तुम्हारे दिल के टुकड़े-टुकड़े कर दिये। मुझे तुम्हें प्रेम देना था, लेकिन मैंने तुम्हारा तिरस्कार किया। मुझे तुमसे तुम्हारा पियर भूला देना था, लेकिन तुम्हारे साथ कर्कश व्यवहार कर सतत तुम्हें पियर की याद आने पर मजबूर किया। मुझे तुम्हारी मम्मी बनना था, लेकिन मैं तुम्हारे लिए एक चुड़ैल बन गई....

(सुशीला आगे कुछ बोले उसके पहले मोक्षा ने अपना हाथ सुशीला के मुँह पर रख दिया।)

मोक्षा : नही माँ! मुझे माफ कर दो। आपकी गुन्हेगार तो मैं हूँ। मुझे आपको खुश रखना था। उसके बदले मैंने आपको सतत चिंतित रखा। मुझे आपको सतत धर्म में जोड़ना था, लेकिन मैंने मात्र अपने ही धर्म की चिंता की। मम्मी! आप तो सच में महान हो।

(इस प्रकार मोक्षा को ससुराल में अपनी माँ मिल गई और सुशीला को अपनी बेटी। इसके बाद तो घर का माहौल ही बदल गया। बदले हुए वातावरण में एक दिन सुशीला को ज्यूस देने के लिए मोक्षा तरबूज सुधारने लगी। सुशीला पास में बैठकर पुस्तक पढ़ रही थी। मोक्षा को सामायिक लेने में लेट हो रहा था, इसलिए वह जल्दी-जल्दी तरबूज को सुधारने लगी। इस जल्दबाजी के कारण चाकू से मोक्षा का हाथ कट गया। खून की धारा बहने लगी।)

मोक्षा :- आऽऽऽऽ.इ...

सुशीला : क्या हुआ बेटा? क्या हुआ? अरे खून! विधि, जल्दी से मल्हम-पट्टी लेकर आओ। बेटा, देखकर सुधारा करो। इतनी जल्दी क्या थी। देखो, कितना खून बह गया। मैं ज्यूस लेट पी लेती। (सुशीला ने मोक्षा के हाथों पर पट्टी बांधी।)

सुशीला : बेटा, तुम सामायिक ले लो, ज्यूस मैं बना लूँगी। तुम बनाने जाओगी तो फिर सामायिक आते-आते तुम्हारे चउविहार का टाईम हो जाएगा।

(मोक्षा सामायिक लेने चली गई, और इधर सुशीला ने मोक्षा के लिए गरम-गरम खाना बनाया। जैसे ही मोक्षा की सामायिक आयी। खाखरा और सुबह का बचा हुआ खाना खाने के लिए उसने रसोई घर में प्रवेश किया।)

सुशीला : मोक्षा! आओ खाना खा लो।

मोक्षा : अरे मम्मी! आप खाना बना रही हो, मैं तो सुबह का ही खा लेती।

सुशीला : कोई जरुरत नहीं है अब से सुबह का खाना खाने की। आज से रोज मैं तुम्हारे लिए खाना बनाऊँगी। (सुशीला ने मोक्षा को खाना परोसा। मोक्षा के दायें हाथ में चीरा आने के कारण व पट्टी बंधी हुई होने के कारण वह उल्टे हाथ से रोटी तोड़ने लगी। लेकिन वह रोटी तोड़ नहीं पाई।)

सुशीला : क्या हुआ बेटा! खाना क्यों नहीं खा रही हो ?

मोक्षा : मम्मी! रोटी टूट नहीं रही है। आप मुझे रोटी का चूरा करके दे दो।

सुशीला : अरे बेटा! चूरे की क्या जरुरत है। मैं ही तुम्हें अपने हाथ से खिला देती हूँ।

मोक्षा : मम्मी! आपके हाथ से तो मैं तब ही खाऊँगी जब आप भी मेरे साथ खाना शुरू करेंगे।

(सुशीला कुछ नहीं कहती)

मोक्षा : मम्मी! इसमें इतना सोचने की क्या बात है ? अब तो आपको इतना ज्ञान मिल गया है। रात्रिभोजन के दुष्परिणामों के बारे में भी आप जानते हो। यदि आप रात्रिभोजन त्याग करेंगे तो मुझे भी कंपनी मिल जाएगी।

सुशीला : ठीक है बेटा! तुम्हारी खुशी के लिए मैं रात्रिभोजन छोड़ती हूँ।

(इस प्रकार मोक्षा ने अपने प्रेमपूर्ण व्यवहार से पूरे घर को सुधारकर परिवार के सारे सदस्यों को धर्म में जोड़ दिया। अब उनके घर में रात्रिभोजन और कंदमूल बंद हो गया और नित्य जिन पूजा शुरू हो गई।)

मोक्षा ने अपनी माँ की हितशिक्षा और अपने विनय-विवेक से सारे घर को प्रेममय वातावरण के एक सूत्र में बाँध दिया। उसके हँसते-खेलते परिवार में और एक हँसी-खुशी का माहौल बना, जब मोक्षा ने गर्भधारण किया। इस हालत में सास-ससुर, विवेक, देवर, ननंद सब मोक्षा का बहुत ध्यान रखते। उसकी हर एक इच्छा पूरी करते। मोक्षा भी अपनी माँ की हितशिक्षा अनुसार गर्भ का अच्छी प्रकार पालन करती।

अपनी माँ से प्राप्त हितशिक्षा को जीवन में उतारने के कारण मोक्षा के जीवन में खुशियाँ ही खुशियाँ थी। इस तरफ जयणा के बेटे मोहित की शादी सुसंस्कारित एवं अच्छे खानदान की लड़की दिव्या के साथ हो गई। समय व्यतीत होने पर दिव्या ने गर्भ धारण किया। गर्भ से लेकर आज तक संस्कारों की छाया में पली-बड़ी मोक्षा के सुखी जीवन से दिव्या परिचित ही थी, अत: वह भी अपनी संतान को ऐसे ही संस्कार देना चाहती थी, परंतु इन संस्कारों की जड़ के रूप में गर्भ संस्करण के ज्ञान से वह अपरिचित थी। क्या वह अपने मन में रहे प्रश्नों का समाधान अपनी सासुमाँ जयणा से कर पाती है ? जयणा क्या समाधान देती है ? देखते है जैनिज़म के अगले खंड ''संस्कारों की नींव'' में ...

सूत्र (मुझे याद करने पर तुम्हें शिव सुख मिलेगा।)

अर्थ (मेरा बराबर उपयोग करें।)

काव्य विभाग (मुझे याद कर भूल न जाना)

बाते छोटी मगर बड़े काम की ...

अतीसार (दस्त)

1.दस ग्राम (दो चम्मच) ईसबगोल की भुसी छः घंटे पानी में भिगोकर अथवा गरम दूध में भिगोकर जब फूलकर गाढ़ी हो जाये तब उसमें मिश्री मिलाकर भोजन के पश्चात लेने से दस्त साफ आता है। इसे केवल पानी के साथ वैसे ही , बिना भिगोये भी लिया जा सकता है।

2. एरण्ड का तेल अवस्थानुसार एक से पांच चम्मच की मात्रा से एक कप गरम पानी या दूध में मिलाकर भोजन के पश्चात पीने से कब्ज दूर होकर दस्त साफ आता है।

3. दो संतरों का रस खाली पेट प्रातः आठ से दस दिन पीने से पुराना से पुराना अथवा बिगड़ा हुआ कैसा भी कब्ज हो ठीक हो जाता है। संतरों के रस में नमक, मसाला या बर्फ न लें। रस लेने के बाद एक-दो घण्टे तक कुछ न ले।

4. ईसबगोल की भूसी 10 ग्राम (दो चम्मच) 125 ग्राम दही में घोलकर सुबह शाम खिलाने से दस्त बंद होते है।

5. खाने के बाद 200 ग्राम छाछ में सेका हुआ जीरा 1 ग्राम और काला नमक आधा ग्राम मिलाकर पिने से दस्त बंद होते है।

6. आम की गुटली की गिरी को पानी अथवा दही के पानी में खूब पीसकर नाभि पर गाढ़ा-गाढ़ा लेप करने से सब प्रकार के दस्त बंद हो जाते है।

7. सूखा आंवला दस ग्राम और काली हरड़ पांच ग्राम दोनों को लेकर खूब बारीक पीस लें। फिर एक-एक ग्राम की मात्रा से प्रातः सायं पानी के साथ फांकने से दस्त बंद होते है।

पेशाब बार-बार और अधिक आता हो

1. दो पके केलों का सेवन दोपहर के भोजन के बाद करने से या अंगूर खाने से भी इस बीमारी से छुटकारा मिलता है।

2. बार-बार पेशाब आने पर 60 ग्राम सेके (भुने) चने खाकर ऊपर थोड़ा सा गुड़ खाये या सुबह शाम गुड़ से बना तिल का एक-एक लड्डु खाने से बार-बार पेशाब आना बंद होता है।

पेशाब कम आता हो

1. दो छोटी इलायची को पीसकर फांककर दूध पीने से पेशाब खुलकर आता है और मूत्रदाह भी बंद हो जाती है।

रुका हुआ पेशाब

1. दो ग्राम जीरा और दो ग्राम मिश्री दोनों को पीसकर फांकी लेने से रुका हुआ पेशाब खुल जाता है। इसे दिन में तीन बार लें।

2. ऐरण्ड का तेल पच्चीस से पचास ग्राम तक गरम पानी में मिलाकर पीने से पंद्रह-बीस मिनिट में ही पेशाब खुल जाता है।

मुझे पढ़कर ही आगे बढ़े

(सूत्रोच्चार में खास ध्यान रखने योग्य बातें?)

सूत्र बोलते वक्त ध्यान में रखने योग्य बातें :-

* पुक्खरवरदीवड्ढे सूत्र में 'पुक्खरवरदी वड्ढे' इस प्रकार न बोलकर "**पुक्खरवर दीवड्ढे**" इस प्रकार बोले।

* वंदित्तु सूत्र में '**जेण न निध्दंधसं**' बोलना चाहिए '**जेणंन**' इस प्रकार साथ में न बोले।

* अड्ढाईजेसु में **दिवस मुद्देसु** न बोलकर **दीव समुद्देसु** बोलना चाहिए अन्यथा द्वीप समुद्र का अर्थ बदलकर दिवस अर्थ हो जाता है।

* वांदणा सूत्र में **मेमि ... उग्गहं** न बोलकर **मे ..... मिउग्गहं** बोलना चाहिए। इसी प्रकार **बहुसु ... भेणभे** न बोलकर **बहुसुभेण .. भे** बोलें अन्यथा अर्थ बदल जाता है।

* **दिवसो वइक्कंतो?** तथा **ज... ता... भे? ज... व... णिज् .... जं. ....च... भे?** यह वाक्य प्रश्नात्मक होने से प्रश्न पूछ रहे हो इस प्रकार बोलें।

* सव्वसवि, सातलाख तथा पहले प्राणातिपात सूत्र में तस्स मिच्छामि दुक्कड़म् नहीं है परंतु मात्र **मिच्छामि दुक्कड़म्** है।

अशुद्ध	शुद्ध
तमधम्मचक्कवहीणं	तं धम्मचक्कवट्टिं
भगवान आचार्य...	भगवानहं, आचार्यहं

* प्राय: तो सूत्र के सामने शब्द के अनुसार अर्थ देने की कोशिश की है। लेकिन कहीं-कहीं अन्वय के अनुसार अर्थ दिया है। सूत्र पर जो नम्बर दिये गये है तदनुसार अर्थ के नम्बर देखने पर शब्दार्थ प्राप्त होंगे। तथा संलग्न अर्थ पढ़ेंगे तो आपको सहज गाथार्थ समझ में आ जाएगा।

अपने अंदर क्रोध न आए इसलिए क्या चिंतन करना?

तुम्हारे पीछे कोई तुम्हारी निंदा करे, तुम्हें बदनाम करने का प्रयत्न करे तो उस समय यह सोचना कि कोई भी व्यक्ति मेरे स्वयं के पापोदय के बिना मेरी निंदा करेगा ही नहीं। ये तो निमित्त है, मेरे पापों का उदय है, इसलिए ही उसे मेरी निंदा करने का विचार आया। नहीं तो इसे इतने सारे लोगों में से मेरी ही निंदा करने का विचार क्यों आता? मूल में मेरा ही पापोदय है। ऐसा विचार करने से हम क्रोध-ध्यान से बच सकते हैं।

भावार्थ : इस सूत्र में ढ़ाई द्वीप में विचरने वाले तथा श्रुतज्ञान रुपी चक्षु के प्रदाता तीनों काल के तीर्थंकर भगवंतों को नमस्कार करके श्रुतज्ञान की स्तुति करने में आई है।

[1]**पुक्खर-वर-दीवड्ढे ;**	[1]पुष्करवर द्वीप के अर्ध भाग में,
[2]**धायइ-[3]संडे अ [4]जंबु-दीवे अ।**	[2]धातकी [3]खण्ड में व [4]जम्बूद्वीप में (स्थित),
[5]**भरहेरवय[6]-[7]विदेहे,**	[5]भरत [6]ऐरावत [7]महाविदेह (क्षेत्र) में,
[8]**धम्माइ-गरे [9]नमंसामि ।।1 ।।**	[8]धर्म प्रारंभ करने वाले को [9]मैं नमस्कार करता हूँ। ।।1।।
[1]**तम-[2]तिमिर-[3]पडल-[4]विद्धं-**	[1]अज्ञान रुपी [2]अंधकार के [3]समूह को [4]नष्ट करने वाले,
सणस्स-[5]सुरगण-[6]नरिंद-[7]महिअस्स ;	[5]चार निकाय के देव समूह व [6]राजाओं से [7]पूजित
[10]**सीमाधरस्स-[11]वंदे,**	[8]मोहजाल को [9]अत्यन्त तोड़नेवाले
[9]**पप्फोडिअ-[8]मोहजालस्स ।।2 ।।**	[10]मर्यादा युक्त श्रुतधर्म को [11]मैं वंदन करता हूँ ।।2 ।।
[1]**जाइ[2]जरा[3]मरण [4]सोग[5]पणासणस्स,**	[1]जन्म [2]वृद्धावस्था [3]मृत्यु व [4]शोक का [5]नाश करने वाला,
[7]**कल्लाण[6]पुक्खल[8]विसाल[9]सुहावहस्स ।**	[6]पूर्ण [7]कल्याण और [8]बड़े [9]सुख को देने वाला,
[16]**को [10]देव[11]दाणव[12]नरिंद[13]गणच्चिअस्स,**	[10]देवेन्द्रों, [11]दानवेन्द्रों और [12]नरेन्द्रों के [13]समूह से पूजित (ऐसे)
[14]**धम्मस्स [15]सारमुवलब्भ [18]करे [17]पमायं ।।3 ।।**	[14]श्रुत धर्म का [15]सार प्राप्त करके [16]कौन [17]प्रमाद [18]करेगा? ।।3 ।।
[2]**सिद्धे [1]भो ! [4]पयओ [5]णमो [3]जिणमए,**	[1]हे सुज्ञ जनों! [2]सिद्ध ऐसे [3]जैन दर्शन को मैं [4]आदर पूर्वक [5]नमस्कार करता हूँ।
[8]**नंदी [7]सया [6]संजमे,**	जो [6]संयम मार्ग की [7]सदा [8]वृद्धि करने वाला है,
[9]**देव [10]नाग-[11]सुवन्न-[12]किन्नर-[13]गण ;**	जो [9]देव [10]नागकुमार, [11]सुपर्णकुमार, [12]किन्नर आदि के [13]समूह से
[14]**स्सब्भूअ-[15]भावऽच्चिए ;**	[14]सच्चे [15]भाव से पूजित है।
[17]**लोगो [16]जत्थ [21]पइट्ठिओ [20]जगमिणं ;**	[16]जिसमें [17]लोक(सकल पदार्थ) तथा [18]तीनों लोक के
[18]**तेलुक्क-[19]मच्चासुरं ;**	[19]मनुष्य एवं (सुर) असुरादिक का आधार रुप [20]यह जगत

पुक्खरवर-दीवड्ढे
सीमाधर (आगम)

गाथा-३ जाइ-जरा
जन्म
जरा
रोग
शोक
मरण
सुख
कल्याण
देव दानव पूजित
श्रुत-धर्म
गाथा-४ सिद्धे भो
जिनमत
संयम
मति ज्ञान
श्रुत ज्ञान
अवधि ज्ञान
मनःपर्यव ज्ञान
केवल ज्ञान

जो देवाण वि देवो
तं देवदेव-महियं
जं देवा पंजली नमंसंति
सिरसा वंदे महावीरं।

इक्को वि नमुक्कारो
जिणवरवसहस्स वद्धमाणस्स

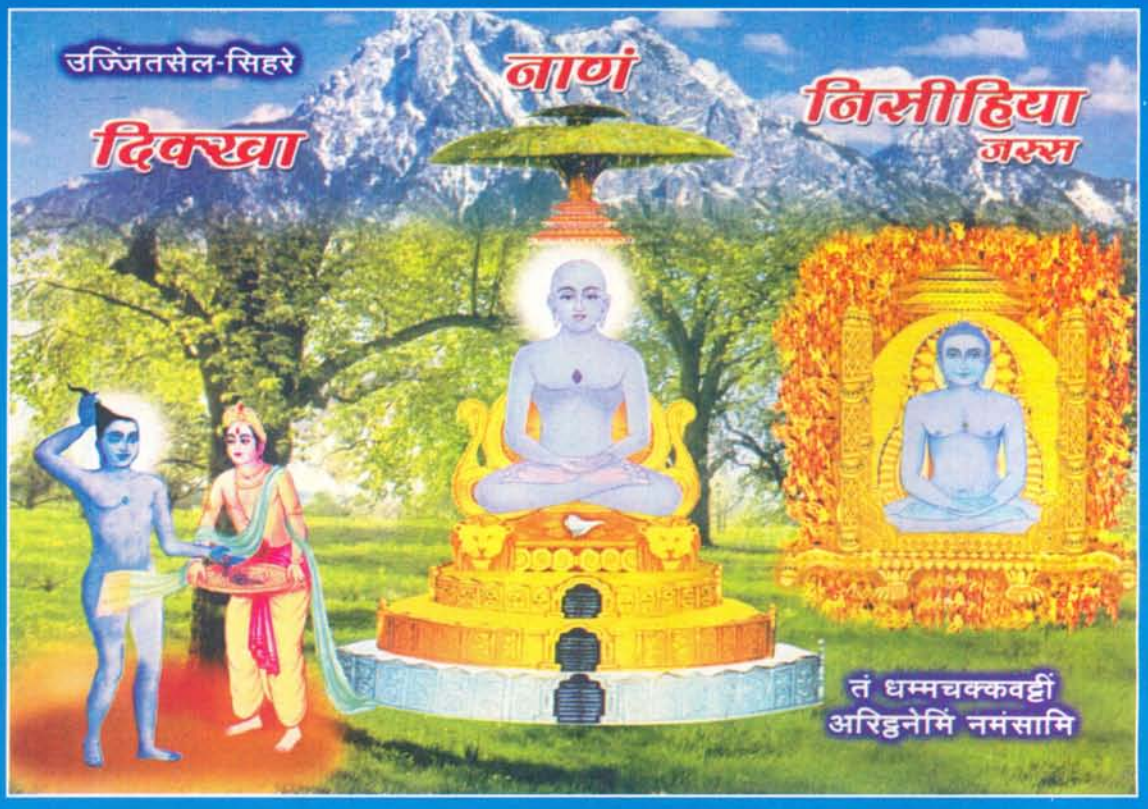

उज्जिंतसेल-सिहरे
दिक्खा
नाणं
निसीहिया
जस्स
तं धम्मचक्कवट्टीं
अरिट्ठनेमिं नमंसामि

परमट्ठनिट्ठियट्ठा
सिद्धा सिद्धिं मम दिसंतु
श्री अष्टापदजी महातीर्थ
जगचिंतामणि जगनाह
अट्ठावय-संठवियरूव

	[21]वर्णित है [22]ऐसा शाश्वत [23]जैन धर्म
[23]धम्मो [24]वड्ढउ [22]सासओ	[24]वृद्धि को प्राप्त हो (और) [25]विजय की परंपरा से
[25]विजयओ [26]धम्मुत्तरं [27]वड्ढउ ।।4 ।।	[26]चारित्र धर्म भी नित्य [27]वृद्धि को प्राप्त हो ।।4 ।।

2. सिद्धाणं बुद्धाणं सूत्र

भावार्थ : इस सूत्र में सर्व सिद्धों की , श्री महावीर स्वामीजी की, श्री नेमिनाथ प्रभु की तथा अष्टापद पर्वत पर बिराजमान चौबीस तीर्थंकरों की स्तुति की है ।

[1]सिद्धाणं [2]बुद्धाणं ;	[1]सिद्ध पद को प्राप्त किए हुए, [2]सर्वज्ञ (केवलज्ञान पाये हुए),
[3]पार-[4]गयाणं, [5]परंपरगयाणं ;	[3]संसार से पार [4]गये हुए, [5]पूर्व सिद्धों की परंपरा से सिद्ध बने हुए,
[6]लोअग्गमुवगयाणं,	[6]चौदह राजलोक के अग्र भाग को प्राप्त किए हुए ऐसे,
[10]नमो [9]सया [7]सव्व-[8]सिद्धाणं ।।1 ।।	[7]सर्व [8]सिद्ध भगवंतों को मेरा [9]हमेशा [10]नमस्कार है ।।1 ।।
[1]जो [2]देवाण वि [3]देवो,	[1]जो [2]देवताओं के भी [3]देव हैं,
[4]जं [5]देवा [6]पंजली [7]नमंसंति ।	[4]जिनको [5]देव [6]अंजलि-पूर्वक [7]नमन करते हैं,
[10]तं [8]देव-देव-[9]महियं	जो [8]इन्द्रों से [9]पूजित है, [10]उन
[12]सिरसा [13]वंदे [11]महावीरं ।।2 ।।	[11]महावीर स्वामी को [12]सिर झुकाकर [13]मैं वन्दन करता हूँ ।।2 ।।
[4]इक्को वि [5]नमुक्कारो,	[1]केवली भगवंतो में [2]उत्तम ऐसे [3]श्री महावीर प्रभु को
[1]जिणवर-[2]वसहस्स [3]वद्धमाणस्स ;	[4]किया हुआ एक भी [5]नमस्कार
[6]संसार-[7]सागराओ	[6]संसार रुपी [7]समुद्र से
[10]तारेइ [8]नरं व [9]नारिं वा ।।3 ।।	[8]पुरुष अथवा [9]स्त्री को [10]तिरा देता है ।।3 ।।
[1]उज्जिंत-[2]सेल-[3]सिहरे,	[1]गिरनार [2]पर्वत के [3]शिखर पर
[5]दिक्खा [6]नाणं [7]निसीहिआ [4]जस्स ;	[4]जिनकी [5]दीक्षा, [6]केवलज्ञान और [7]निर्वाण हुआ है ;
[8]तं [9]धम्मचक्कवट्टिं,	[8]उन [9]धर्म-चक्रवर्ती
[10]अरिट्ठनेमिं [11]नमंसामि ।।4 ।।	[10]श्री नेमिनाथ भगवान को [11]मैं नमस्कार करता हूँ ।।4 ।।
[1]चत्तारि-[2]अट्ठ-[3]दस-[4]दोय,	(अष्टापद पर) [1]चार, [2]आठ, [3]दस, [4]दो (ऐसे क्रम से)

[5]वंदिया [7]जिणवरा [6]चउव्वीसं ; [5]वंदन किए गए [6]चौबीस [7]जिनेश्वर भगवंत

[8]परमट्ठ-[9]निट्ठिअट्ठा, (तथा) [8]जो मोक्ष-सुख को [9]प्राप्त हुए है, ऐसे (कृतकृत्य)

[10]सिद्धा [12]सिद्धिं [11]मम [13]दिसंतु ।।5 ।। [10]सिद्ध भगवंत [11]मुझे [12]सिद्धि (मोक्ष) [13]प्रदान करें ।।5 ।।

भावार्थ : यह सूत्र वैयावृत्य करने वाले देवों का कायोत्सर्ग करने के लिए बोला जाता है। इस सूत्र को चारथुई वाले प्रतिक्रमण में बोलते है।

[1]वेयावच्चगराणं [1]वैयावृत्त्य करने वालों के निमित्त से,

[2]संति-गराणं [2]उपसर्गों की शांति करने वालों के निमित्त से,

[3]सम्म-दिट्ठि-[4]समाहि-गराणं [3]सम्यग्-दृष्टियों के लिए [4]समाधि उत्पन्न करने वालों के निमित्त से,

[6]करेमि [5]काउस्सग्गं (अन्नत्थ.) मैं [5]कायोत्सर्ग [6]करता हूँ।

भावार्थ : इस सूत्र से भगवान आदि को थोभ वंदन किया जाता है।

[1]भगवानहं, [2]आचार्यहं, [1]भगवन्तों को, [2]आचार्यों को

[3]उपाध्यायहं, [4]सर्वसाधुहं । [3]उपाध्यायों को, [4]सर्व साधुओं को (मैं वंदन करता हूँ।)

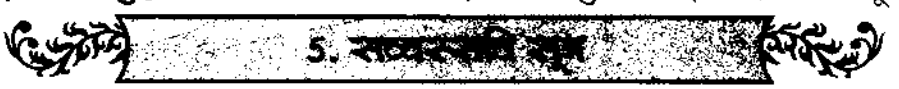

भावार्थ : इस सूत्र से प्रतिक्रमण ठाया जाता है .. यह सूत्र प्रतिक्रमण का बीज़ होने से इसमें संक्षिप्त में पापों की आलोचना की गई है।

[2]इच्छाकारेण [6]संदिसह [1]भगवन्! हे [1]भगवन् ! आप [2]स्वेच्छा से

[3]देवसिअ [4]पडिक्कमणे [5]ठाउं ? [3]दैवसिक [4]प्रतिक्रमण में [5]स्थिर होने की [6]आज्ञा प्रदान करे।
(यहाँ गुरु कहे-ठावेह अर्थात् स्थिर बनो।)

[7]इच्छं, [7]आपकी आज्ञा स्वीकार करता हूँ।

[12]सव्वस्स वि [8]देवसिअ, [8]दिन के मध्य में

[9]दुच्चिंतिअ, [10]दुब्भासिअ, [9]दुष्ट चिंतन किया हो, [10]दुष्ट भाषण किया हो

[11]दुच्चिट्ठिअ, [14]मिच्छामि [13]दुक्कडं ।।1।। [11]दुष्ट चेष्टा की हो तो वे [12]मेरे सारे [13]दुष्कृत [14]मिथ्या हो।

6. देवसिअं आलोउं सूत्र

भावार्थ : इस सूत्र में अलग-अलग आचारों को आचरते हुए जो अतिचार लगा हो, उसका संक्षेप से प्रतिक्रमण करने में आता है।

[2]इच्छाकारेण [5]संदिसह [1]भगवन्!	हे [1]भगवन्! [2]इच्छापूर्वक
[3]देवसिअं (राइयं) [4]आलोउं ?	[3]दिवस (रात्रि) संबंधी [4]आलोचना करने की [5]आज्ञा प्रदान करो। (गुरु कहे-आलोए)
[6]इच्छं [7]आलोएमि –	[6]आपकी आज्ञा स्वीकार कर [7]मैं आलोचना करता हूँ।
[10]जो [9]मे [8]देवसिओ (राइओ)	[8]दिवस (रात्री) संबंधी [9]मुझसे [10]जो
[11]अइयारो [12]कओ,	[11]अतिचार [12]लगा हो,
[13]काइओ [14]वाइओ [15]माणसिओ,	[13]काया के द्वारा, [14]वचन के द्वारा या [15]मन के द्वारा,
[16]उस्सुत्तो [17]उम्मग्गो,	[16]सूत्र के विरुद्ध, [17]मार्ग के विरुद्ध,
[18]अकप्पो [19]अकरणिज्जो,	[18]आचार के विरुद्ध या [19]कर्तव्य के विरुद्ध,
[20]दुज्झाओ – [21]दुव्विचिंतिओ,	[20]दुष्ट ध्यान के द्वारा या [21]दुष्ट चिंतन के द्वारा,
[22]अणायारो [23]अणिच्छिअव्वो,	[22]अनाचार के द्वारा, [23]नहीं चाहने योग्य वर्तन के द्वारा,
[24]असावग [25]पाउग्गो,	[24]श्रावक के लिए सर्वथा अनुचित ऐसे [25]व्यवहार से, (जो अतिचार लगा हो)
[26]नाणे – [27]दंसणे – [28]चरित्ताचरित्ते	[26]ज्ञानाराधना, [27]दर्शनाराधना, [28]देशविरति चारित्राराधना के विषय में
[29]सुए – [30]सामाइए ।।	[29]श्रुतज्ञान ग्रहण या [30]सामायिक के विषय में (जो अतिचार लगा हो)
[1]तिण्हं [2]गुत्तीणं, [11]चउण्हं [12]कसायाणं,	[1]तीन [2]गुप्तियों का,
[3]पंचण्ह – [4]मणुव्वयाणं, [5]तिण्हं [6]गुणव्वयाणं,	[3]पाँच [4]अणुव्रतों का, [5]तीन [6]गुणव्रतों का,
[7]चउण्हं [8]सिक्खावयाणं	[7]चार [8]शिक्षाव्रतों का,
[9]बारसविहस्स [10]सावगधम्मस्स	[9]बारह प्रकार के [10]श्रावक धर्म का [11]चार [12]कषायों से

[13]जं [14]खंडियं, जं [15]विराहियं [13]जो [14]खंडित हुआ हो, [15]विराधित हुआ हो,

[16]तस्स [18]मिच्छामि [17]दुक्कड़ं [16]उन सबका मेरा [17]दुष्कृत [18]मिथ्या हो।

7. नाणंमि सूत्र

भावार्थ : इन आठ गाथाओं में ज्ञानादि पाँच महान आचारों के भेदों का वर्णन हैं।

(नोट: इस सूत्र में जहाँ पर A, B, C .... आदि लिखे गये हैं। वह उन-उन आचारों के प्रकार हैं।)

[1]नाणंमि [2]दंसणंमि अ, [1]ज्ञान के विषय में, [2]दर्शन के विषय में,

[3]चरणंमि [4]तवंमि तह य [5]वीरियंमि; [3]चारित्र, [4]तप तथा [5]वीर्य के विषय में,

[6]आयरणं [7]आयारो, [6]जो आचरने योग्य है वह [7]आचार कहलाता है

[8]इअ एसो [9]पंचहा [10]भणिओ ।।1।। [8]ऐसे आचार [9]पाँच [10]प्रकार के है ।।1 ।।

[A]काले [B]विणए [C]बहुमाणे, [A]काल (उचित समय में पढ़ना), [B]विनय और [C]बहुमान पूर्वक पढ़ना

[D]उवहाणे तह [E]अनिन्हवणे, [D]उपधान पूर्वक पढ़ना, तथा [E]अनिह्नवता (ज्ञान पढ़ाने वाले के विषय में अपलाप नहीं करना।)

[F]वंजण-[G]अत्थ-[H]तदुभए, [F]सूत्र, [G]अर्थ और [H]दोनों (सूत्र+अर्थ) शुद्ध एवं उपयोग पूर्वक पढ़ना

[2]अट्ठविहो [1]नाणमायारो ।।2।। इस प्रकार [1]ज्ञानाचार के [2]आठ प्रकार है ।।2 ।।

[A]निस्संकिय-[B]निक्कंखिय, [A]जिन धर्म में शंका नहीं करना, [B]अन्य धर्म की इच्छा नहीं करना,

[C]निव्वितिगिच्छा [D]अमूढदिट्ठी अ; [C]धर्म के फल के विषय में शंका नहीं करना (श्रद्धा रखना)
[D]अन्य धर्म से प्रभावित होकर स्वधर्म से विचलित नहीं होना।

[E]उववूह-[F]थिरीकरणे, [E]स्वधर्म की महानता समझकर बार-बार धर्म की तथा धर्म करने वालों की प्रशंसा करना, [F]धर्म से विचलित होने वाले को धर्म में स्थिर करना,

[G]वच्छल्ल-[H]पभावणे [1]अट्ठ ।।3।। [G]साधर्मिक से प्रेम करना, [H]ऐसा कार्य करे जिससे दूसरों को भी धर्म की प्रेरणा मिलें। इस प्रकार [1]दर्शनाचार के आठ प्रकार है। ।।3 ।।

[2]पणिहाण-[1]जोग-[3]जुत्तो [1]चित्त की [2]समाधि [3]पूर्वक

[A-E]पंचहिं समिईहिं [F-H]तिहिं गुत्तीहिं; [A-E]पांच समिति और [F-H]तीन गुप्तियों का पालन करना,

[4]एस [5]चरित्तायारो, [4]इस प्रकार [5]चारित्राचार

[6]**अट्ठविहो** [8]**होइ** [7]**नायव्वो ।।4 ।।**	[6]आठ प्रकार का [7]जानने योग्य [8]है। ।।4 ।।
[5]**बारसविहंमि वि** [4]**तवे,**	[1]जिनेश्वरों द्वारा कथित [2]बाह्य और [3]अभ्यंतर [4]तप
[3]**सब्भिन्तरे-** [2]**बाहिरे** [1]**कुसल-दिट्ठे,**	[5]बारह प्रकार का है।
[6]**अगिलाइ-** [7]**अणाजीवी,**	[6]ग्लानि रहित और [7]आजीविका के हेतु बिना जो तप किया जाता है
[10]**नायव्वो** [8]**सो** [9]**तवायारो ।।5 ।।**	[8]वह [9]तपाचार [10]जानने योग्य है। ।।5 ।।
[A]**अणसण-** [B]**मूणोअरिआ,**	[A]अनशन और [B]ऊणोदरि,
[C]**वित्ति-संखेवणं** [D]**रस-च्चाओ ;**	[C]वृत्ति-संक्षेप, [D]रस-त्याग
[E]**काय किलेसो** [F]**संलीणया** [1]**य,**	[E]कष्ट सहन करना और [F]शरीरादि का संकुचन करना,
[2]**बज्झो** [3]**तवो** [4]**होइ ।।6 ।।**	[1]ये [2]बाह्य [3]तप [4]है। ।।6 ।।
[A]**पायच्छित्तं** [B]**विणओ,**	[A]प्रायश्चित, [B]विनय
[C]**वेयावच्चं तहेव** [D]**सज्झाओ ;**	[C]वैयावच्च (शुश्रूषा), [D]स्वाध्याय,
[E]**झाणं** [F]**उस्सग्गो वि अ,**	[E]ध्यान और [F]त्याग (कायोत्सर्ग)
[1]**अब्भिंतरओ** [2]**तवो** [3]**होइ ।।7 ।।**	[1]ये अभ्यन्तर [2]तप [3]है। ।।7 ।।
[3]**अणिगूहिअ-** [1]**बल-** [2]**वीरिओ**	[1]बल [2]वीर्य को [3]न छिपाते हुए,
[7]**परक्कमइ** [4]**जो** [5]**जहुत्त** [6]**माउत्तो ।**	[4]जो [5]उपर्युक्त छत्तीस आचारों के [6]पालन में [7]पराक्रम करता है।
[9]**जुंजइ अ** [8]**जहा-थामं,**	और [8]यथाशक्ति अपनी आत्मा को (तप में) [9]जोड़ता है,
[11]**नायव्वो** [10]**वीरियायारो ।।8 ।।**	वह [10]वीर्याचार [11]कहलाता है।। ।।8 ।।

8. वांदणा (सुगुरु गुरुवन्दन) सूत्र

भावार्थ : इस सूत्र में सद्‌गुरु को वंदन करके उनकी सेवा-वैयावृत्त्य में उनके प्रति लगे हुए दोषों की क्षमा माँगने में आती है । प्रतिक्रमण गुरुवंदनादि में दूसरी बार वन्दन करते समय ''आवस्सिआए'' यह पद नहीं बोलना चाहिए। ''दिवसो वइक्कंतो'' के स्थान पर राई प्रतिक्रमण में ''राई वइक्कंता'' पक्खी प्रतिक्रमण में ''पक्खो वइक्कंतो'' चउ-मासी प्रतिक्रमण में ''चउ-मासी वइक्कंता'', और संवच्छरी प्रतिक्रमण में ''संवच्छरो वइक्कंतो'', इस प्रकार से पाठ बोलना चाहिए।

[5]इच्छामि [1]खमासमणो! [4]वंदिउं	हे [1]क्षमाश्रमण ! [2]आपको सुखशाता पूछते हुए,
[2]जावणिज्जाए, [3]निसीहिआए,	[3]अविनय आशातना की क्षमा मांगते हुए, [4]मैं वंदन करना [5]चाहता हूँ।
[8]अणुजाणह [6]मे [7]मिउग्गहं,	[6]मुझे [7]अवग्रह में आने की [8]आज्ञा प्रदान करों।
[9]निसीहि	[9]अशुभ व्यापारों के त्याग-पूर्वक
[10]अ...हो, का...यं, [11]का...य- [12]संफासं	[10]आपके चरणों को [11]अपनी काया द्वारा [12]स्पर्श करने से जो
[15]खमणिज्जो [13]भे! [14]किलामो,	[13]आपको [14]खेद - कष्ट हुआ हो, उसकी मुझे [15]क्षमा प्रदान करे।
[16]अप्प [17]किलंताणं	[16]अल्प [17]ग्लानिवाले
[20]बहु-सुभेण [18]भे! [19]दिवसो [21]वइक्कंतो?	हे [18]भगवन्! [19]आपका दिवस [20]अत्यन्त सुखपूर्वक [21]व्यतीत हुआ?
[23]ज...त्ता... [22]भे ?	[22]आपकी [23]संयम यात्रा सुख - पूर्वक चल रही है?
[25]ज...व...णिज...जं...च [24]भे ?	[24]आपकी [25]इन्द्रियाँ और कषाय उपघात रहित है ?
[4]खामेमि [1]खमासमणो !	हे [1]क्षमाश्रमण! [2]दिन में किए हुए
[2]देवसिअं [3]वइक्कमं,	[3]अपराधों की [4]मैं क्षमा माँगता हूँ,
[5]आवस्सिआए [6]पडिक्कमामि।	[5]आवश्यक क्रिया के लिए [6]अवग्रह से बाहर जाता हूँ।
[7]खमासमणाणं [8]देवसिआए	आप [7]क्षमाश्रमण की [8]दिवस संबंधी,
[10]आसायणाए, [9]तित्तीसन्नयराए,	[9]तैंतीस [10]आशातना में से,
[1]जं [2]किंचि [3]मिच्छाए,	[1]जो [2]कोई आशातना [3]मिथ्या भाव से हुई हो,
[4]मण-दुक्कडाए, [5]वय-दुक्कडाए,	[4]मन, [5]वचन और [6]काया की
[6]काय- [7]दुक्कडाए,	[7]दुष्ट प्रवृत्ति से हुई हो,
[8]कोहाए [9]माणाए [10]मायाए [11]लोभाए,	[8]क्रोध, [9]मान, [10]माया और [11]लोभ की वृत्ति से हुई हो,
[12]सव्व- [13]कालियाए	[12]सर्व [13]काल - संबंधी,
[14]सव्व [15]मिच्छोवयाराए,	[14]सर्व प्रकार के [15]मिथ्या उपचारों से हुई हो,
[16]सव्व- [17]धम्माइक्कमणाए,	[16]सर्व प्रकार के [17]धर्म के अतिक्रमण से हुई हो,
[18]आसायणाए,	उन [18]आशातनाओं में

[19]जो [20]मे [21]अइयारो [22]कओ, [19]जो [20]मुझसे [21]अतिचार [22]लगा हो

[23]तस्स [24]खमासमणो ! [23]उन सबका, [24]हे क्षमाश्रमण !

[25]पडिक्कमामि [26]निंदामि, [27]गरिहामि [25]मैं प्रतिक्रमण करता हूँ, [26]निंदा करता हूँ, गुरु के समक्ष [27]गर्हा करता हूँ

[28]अप्पाणं [29]वोसिरामि ।। अशुभ योग में प्रवृत्त [28]अपनी आत्मा का [29]त्याग करता हूँ ।

वांदणा में शिष्य के प्रश्नात्मक छ: स्थान है एवं उनके उत्तर रुप गुरु के छ: वचन है। वे इस प्रकार है

क्र.	स्थान	शिष्यवचन	स्थान का अर्थ	गुरुवचन
1.	इच्छा	इच्छामि खमासमणो वंदिउं जावणिज्जाए निसीहिआए	वंदन की इच्छा बताई है ।	छंदेणं (वंदन करने की आज्ञा है)
2.	अनुज्ञा	अणुजाणह मे मिउग्गहं	वंदन की आज्ञा मांगी है ।	अणुजाणामि (अनुज्ञा है)
3.	अव्याबाध	निसीहि अहो कायं .. से दिवसो वइक्कंतो तक	सुखाशाता पूछना	तहत्ति (शाता है)
4.	यात्रा	जत्ता भे ?	संयम यात्रा (संबंधी पृच्छा)	तुब्भं पि वट्टए? (प्रति पृच्छा)
5.	यापना	जवणिज्जं च भे ?	देह संबंधी पृच्छा	एवं (हाँ शाता है)
6.	अपराध खामणा	खामेमि खमासमणो देवसिअ वइक्कमं..से वोसिरामि तक	दिवस संबंधी अपराध की क्षमा याचना	अहमवि खामेमि तुमं (मैं भी तुम्हें खमाता हूँ ।)

9. सात लाख सूत्र

भावार्थ : इस सूत्र में पृथ्वीकाय आदि जीवों की कुल 84 लाख योनि (उत्पत्ति स्थान)बताकर, उनमें से किसी भी जीव की विराधना हुई हो, तो उसका मिच्छामि दुक्कडम् मांगा गया है ।

[2]सात [3]लाख [1]पृथ्वीकाय, [1]सचित्त मिट्टी, पाषाण आदि पृथ्वी के जीवों की योनि [2]सात [3]लाख है।

[5]सात [6]लाख [4]अप्काय, [4]सचित्त पानी, आकाश का पानी आदि अप्कायिक जीवों की योनि [5]सात [6]लाख है।

[8]सात [9]लाख [7]तेउकाय, [7]अङ्गारा, अग्नि, बिजली आदि अग्निकायिक जीवों की योनि [8]सात [9]लाख है ,

[11]**सात** [12]**लाख** [10]**वाउकाय,**	[10]उद्भ्रामक, आदि वायुकायिक जीवों की योनि [11]सात [12]लाख हैं,
[15]**दश** [16]**लाख** [13]**प्रत्येक**	[13]वृक्ष, फल, फूल, पत्र आदि प्रत्येक
[14]**वनस्पतिकाय,**	[14]वनस्पतिकायिक जीवों की योनि [15]दस [16]लाख है।
[19]**चौदह** [20]**लाख**	[17]जमीनकन्द, कोमलफल, पत्र, नीलफूल
[17]**साधारण** [18]**वनस्पतिकाय,**	आदि [18]साधारण वनस्पतिकायिक जीवों की योनि [19]चौदह [20]लाख है।
[2]**बे** [3]**लाख** [1]**बेइन्द्रिय;**	[1]शंख, छीप, आदि द्विन्द्रिय जीवों की योनि [2]दो [3]लाख है।
[5]**बे** [6]**लाख** [4]**तेइन्द्रिय;**	[4]कानखजूरा, जूं, कीड़ी आदि तेइन्द्रिय जीवों की योनि [5]दो [6]लाख है।
[8]**बे** [9]**लाख** [7]**चउरिन्द्रिय;**	[7]बिच्छु, भँवरा, मक्खी आदि चार इन्द्रियवाले जीवों की योनि [8]दो [9]लाख है।
[11]**चार** [12]**लाख** [10]**देवता,**	[10]देवों की योनि [11]चार [12]लाख है।
[14]**चार** [15]**लाख** [13]**नारकी,**	[13]नरक के जीवों की योनि [14]चार [15]लाख है,
[18]**चार** [19]**लाख** [17]**तिर्यंच** [16]**पंचेन्द्रिय,**	[16]पशु, पक्षी, मछली आदि पंचेन्द्रिय [17]तिर्यंच जीवों की योनि [18]चार [19]लाख हैं,
[21]**चौद** [22]**लाख** [20]**मनुष्य,**	[20]मनुष्य जीवों की योनि [21]चौदह [22]लाख हैं,
[1]**एवंकारे** [2]**चौराशी** [3]**लाख**	[1]इस प्रकार कुल [2]चौराशी [3]लाख
[4]**जीवयोनिमांहि;**	[4]जीवयोनियों के (जीवों में से)
[5]**मारे** [6]**जीवे** [7]**जे** [8]**कोई** [9]**जीव**	[5]मेरे [6]जीव ने [7]जो [8]किसी [9]जीव को
[10]**हण्यो होय,** [11]**हणाव्यो होय**	[10]मारा हो, [11]मरवाया हो,
[12]**हणतां प्रत्ये** [13]**अनुमोद्यो होय**	और [12]मारने वाले की [13]प्रशंसा की हो तो
[14]**ते** [15]**सवि** [16]**हुं** [17]**मन,** [18]**वचन**	[14]उन सभी [15]पाप का [16]मैं [17]मन, [18]वचन, [19]काया से
[19]**कायाए करी** [20]**मिच्छामि** [21]**दुक्कडं।**	[20]मिच्छामि [21]दुक्कड़म् देता हूँ, उसको बुरा समझता हूँ।

१०. पहले प्राणातिपात (१८ पापस्थानक) सूत्र

भावार्थ: इस सूत्र में अठारह प्रकार से जो पाप बंध होते हैं। उनके नाम और उस प्रकार से किए हुए पापों की क्षमा मांगने में आयी है । (मिथ्यादुष्कृत देने में आता है)

[1]**पहले प्राणातिपात,**	1. किसी भी जीव को मारना या मारने की इच्छा और विचार करना ।

[2]**बीजे मृषावाद,**	2. झूठ बोलना, अप्रिय और अहितकर भाषण करना।
[3]**त्रीजे अदत्तादान,**	3. किसी की वस्तु बिना पूछे ले लेना।
[4]**चौथे मैथुन,**	4. काम-भोग करना और उसकी वांछा करना।
[5]**पांचमें परिग्रह,**	5. प्रमाण उपरान्त द्रव्यादि पर मूर्च्छा रखना।
[6]**छट्ठे क्रोध,**	6. गुस्सा होना, अपना परिणाम तीव्र क्रोधी रखना।
[7]**सातमें मान,**	7. प्राप्त या अप्राप्त वस्तु का घमण्ड रखना।
[8]**आठमें माया,**	8. स्वार्थिक बुद्धि से कपट-प्रपंच करना।
[9]**नवमें लोभ,**	9. धनादि समृद्धि का लालच रखना
[10]**दसमें राग,**	10. पौद्गलिक वस्तु पर प्रेम रखना।
[11]**अग्यारमें द्वेष,**	11.अनिष्ट पदार्थों पर अरुचि रखना या ईर्ष्या करना।
[12]**बारमें कलह,**	12. झगड़ा-टंटा-फसाद करना, कराना।
[13]**तेरहमें अभ्याख्यान,**	13. किसी पर झूठा कलंक चढ़ाना।
[14]**चौदमें पैशुन्य,**	14. किसी की चुगली खाना, नारदविद्या का धंधा करना।
[15]**पन्नरमें रति अरति,**	15. सुख मिलने पर आनन्द मानना और दुःख मिलने पर शोक-संताप करना।
[16]**सोलमें परपरिवाद,**	16. दूसरों की निंदा करना।(झूठी कथनी करना)
[17]**सत्तरमें मायामृषावाद,**	17. कपट सहित झूठ बोलना।
[18]**अढारमें मिथ्यात्वशल्य,**	18. कुदेवादि तत्त्वों का आग्रह (हठाग्रह) रखना।
ए अढार पापस्थानकमांहि,	इन अठारह पाप स्थानों को या इनमें से मेरे जीव ने
म्हारे जीवे जे कोई पाप	जो कोई भी पाप-
सेव्युं होय सेवराव्युं होय	आचरण किया हो, दूसरों से आचरण करवाया हो
सेवतां प्रत्ये अनुमोद्युं होय	आचरण करने वाले को अच्छा माना हो तो
ते सवि हुं मन, वचन, कायाए करी	उन सब पापस्थान का मन, वचन और काया से
मिच्छामि दुक्कड़ं।	मिच्छामि दुक्कड़म् देता हूँ।

चित्र 1 इसमें दोनों हाथ-दोनों घुटने एवं मस्तक ये पाँच अंग ज़मीन को स्पर्श होने चाहिए। एवं 17 प्रमार्जना निम्न प्रकार से करें। वांदणा में भी इस 17 प्रमार्जना का उपयोग रखें।

खड़े - खड़े पीछे दोनों पैरों के घुटने एवं बीच के भाग में	3 प्रमार्जना
आगे दोनों पैरों के घुटने एवं बीच के भाग में	3 प्रमार्जना
खमासमणा में जहाँ पैर, मस्तक एवं हाथ रखना है उस के आगे की भूमि पर	3 प्रमार्जना
बैठने के बाद दोनों हाथों पर मुँहपत्ति से	2 प्रमार्जना
चरवले के ऊपर जहाँ मस्तक रखना हो वहाँ मुँहपत्ति से	3 प्रमार्जना
खड़े होते समय पैर रखने के स्थान पर पीछे	3 प्रमार्जना
कुल	**17 प्रमार्जना**

चित्र 2 इरियावहियं आदि खड़े-खड़े जो सूत्र बोले जाते हैं, वे खड़े-खड़े योग मुद्रा में बोलें। सूत्र बोलते समय मुँहपत्ति का खुला भाग दायीं तरफ रखें एवं उसमें किनारी नीचे होनी चाहिए।

चित्र 3 दोनों हाथ को कोहनी तक मिलाकर पेट से स्पर्श करें एवं दोनों हाथ की अंगुलियाँ एक-दूसरे हाथ में डालें (बैठे-बैठे योग मुद्रा)।

चित्र 4 **मुक्तासुक्ति मुद्रा :** इस मुद्रा में दोनों हथेली को छीप आकार की बनाएँ।

चित्र 5 **काउस्सग्ग मुद्रा :** काउस्सग्ग इस मुद्रा में किया जाता है तथा काउस्सग्ग के समय 19 दोष का त्याग करना चाहिए, जैसे की अंगुली, होठ, जीभ, शरीर, आँखे, मस्तक आदि नहीं हिलाना एवं पैर तथा हाथ को बराबर मुद्रा के अनुसार रखना। दो पैर के बीच आगे चार अंगुल और पीछे चार अंगुल से कुछ कम जगह छोड़े। काउस्सग्ग के समय चरवला बायें हाथ में एवं मुँहपत्ति दायें हाथ की दो अंगुलियों में रखें। चरवले की डंडी आगे एवं दशी पीछे रहनी चाहिए। मुँहपत्ति का खुला भाग पीछे की तरफ रखें।

चित्र 6 से 11 तक चित्र के अनुसार समझें।

चित्र 12 **वांदणा की मुद्रा :** निम्न आवर्तों के उच्चारण हेतु चित्र में वर्णित अ इ उ ऊ मुद्रा का उपयोग करें। अहो, कायं, काय, जत्ता भे, जवणि ज्जं च भे।

A-अ B-हो

A-का B-यं

मुद्राओं का ज्ञान
खमासमण की मुद्रा
चित्र
A
शुरुआत - अर्धावनत
B
पंचाग प्रणिपात
चित्र 2
इरियावहियं आदि खड़ें-खड़े जो सूत्र बोले जाते हैं वे इस मुद्रा में बोले जाते है।
बैठे-बैठे योग मुद्रा चैत्यवंदन नमुत्थुणं, उवस्सग्गहरं आदि सूत्र इस मुद्रा में बोले जाते है
चित्र 3
चित्र 4
A
B
जावंति चेइआईं, जावंत केवि. एवं जयवीयराय की दो गाथा इस मुद्रा में बोले
मुक्तासुक्ति मुद्रा (भाईयों की)
मुक्तासुक्ति मुद्रा (बहनों की)
चित्र 5
काउस्सग मुद्रा
काउस्सग इस मुद्रा में किया जाता है

अब्भुट्ठिओ की मुद्रा

चित्र 6

अब्भुट्ठिओ एवं अड्ढाइज्जेसु इस मुद्रा में बोले जाते है।

शीर्ष नमनपूर्वक योग मुद्रा

चित्र 8

इस मुद्रा में करेमि भंते. एवं आयरिय उवज्झाय सूत्र बोले

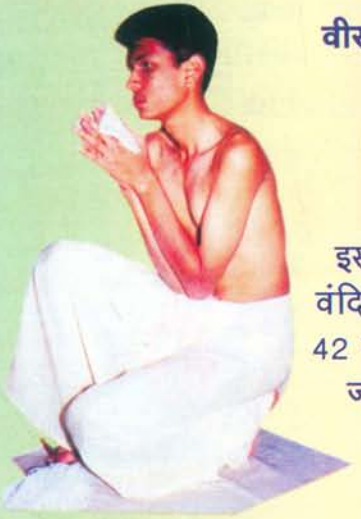

वीरासन मुद्रा

चित्र 9

इस मुद्रा में वंदित्तु सूत्र की 42 गाथा बोली जाती है।

चित्र 7

प्रतिक्रमण स्थापना सूत्र एवं सामाइअ वय जुत्तो सूत्र इस मुद्रा में बोले जाते है।

चित्र 10

स्थापना मुद्रा

इस मुद्रा से क्रिया शुरु करने से पूर्व स्थापनाजी की स्थापना करें।

चित्र 11

उत्थापना मुद्रा

इस मुद्रा से क्रिया के बाद स्थापनाजी की उत्थापना करें।

A-का	B-य	D-संफासं	
A-ज	C- त्ता	B-भे	
A-ज	C-व	B- णिज्	
A-जं	C-च	B-भे	D-खामेमि

इन मुद्राओं के साथ इस सूत्र को बोलते समय खमासमण में बताई गई 17 प्रमार्जना का यथासमय उपयोग करें एवं निम्न 25 आवश्यक का भी ध्यान रखें।

25 ***आवश्यक*** –

2 अर्धावनत : इच्छामि खमासमणो (वांदणा की शुरुआत) दोनों हाथ जोड़कर, आधा शीर्ष झुकाकर बोलें।

12 आवर्त्त : दोनों वांदणा में अहो, कायं, काय एवं जत्ता भे, जवणि, ज्जं च भे बोलते समय हाथ को मुँहपत्ति पर एवं मस्तक पर लगाया जाता है। इसे आवर्त्त कहते हैं। दो वांदणा में कुल 12 आवर्त्त हुए।

4 शीर्षनमन: दोनों वांदणा में संफासं एवं खामेमि बोलते समय मस्तक गुरु चरण को स्पर्श करना चाहिए। दो वांदणे में कुल 4 शीर्ष नमन हुए।

तीन गुप्ति : मन, वचन, काया की गुप्ति रखना।

दो प्रवेश : दोनों वांदणा में निसीहि बोलते एक कदम आगे आना। इस प्रकार दो वांदणे के 2 प्रवेश हुए

एक निष्क्रमण : पहले वांदणे में आवस्सहि बोलते समय बाहर निकलना ।

एक यथाजात मुद्रा : जन्म के समय बालक की जो मुद्रा होती है, वैसी मुद्रा करना।

इस प्रकार कुल 25 आवश्यक हैं।

मुँहपत्ति पडिलेहण करने की मुद्रा

मुँहपत्ति के 50 बोल एवं उसकी पडिलेहण के अनुसार चित्र सूचन–

1.	सूत्र	A	प्रथम पाशा देखते हुए
	अर्थ		घुमाकर दूसरा पाशा देखते हुए
	तत्त्व करी सद्दहुं		पुनः घुमाकर प्रथम पाशा देखते
2.	समकित मोहनीय	B	बायें हाथ से तीन बार
3.	मिश्र मोहनीय		बायाँ पाशा खंखेरना।
4.	मिथ्यात्व मोहनीय परिहरुँ		

5.	काम राग	B	दायें हाथ से तीन बार दायाँ
6.	स्नेह राग		पाशा खंखेरना
7.	दृष्टि राग परिहरुँ		
8.	सुदेव	C	बायें हाथ पर ऊपर लेते हुए
9.	सुगुरु		(हाथ को मुँहपत्ति स्पर्श न करें।)
10.	सुधर्म आदरुँ		
11.	कुदेव	C	बायें हाथ पर ऊपर से नीचे लेते हुए
12.	कुगुरु		हाथ को स्पर्श करते हुए
13.	कुधर्म परिहरुँ		
14.	ज्ञान	C	बायें हाथ पर ऊपर लेते हुए
15.	दर्शन		(हाथ को मुँहपत्ति स्पर्श न करें।)
16.	चारित्र आदरुँ		
17.	ज्ञान विराधना	C	बायें हाथ पर ऊपर से नीचे
18.	दर्शन विराधना		हाथ को स्पर्श करते हुए
19.	चारित्र विराधना परिहरुँ		
20.	मन गुप्ति	C	बायें हाथ पर ऊपर लेते हुए
21.	वचन गुप्ति		(हाथ को मुँहपत्ति नहीं अडावे)
22.	काय गुप्ति आदरुँ		
23.	मन दण्ड	C	बायें हाथ पर ऊपर से नीचे
24.	वचन दण्ड		हाथ को स्पर्श करते हुए
25.	काय दण्ड परिहरुँ		
26.	हास्य	C	बायें हाथ उलटकर ऊपर से
27.	रति		नीचे उतारते हुए
28.	अरति परिहरुँ		
29.	भय	C	वधुटक बायें हाथ में लेकर दायें हाथ
30.	शोक		को उल्टाकर ऊपर से नीचे उतारते हुए
31.	जुगुप्सा परिहरुँ		

वांदणा की मुद्रा

A

B

चित्र
12

C

D

मुंहपत्ति पडिलेहण की मुद्रा

चित्र 13

A

B

दायाँ
Right

C

बायाँ
Left

D

E

32.	कृष्ण लेश्या	D	मात्र पुरुषों के लिये मस्तक पर तीन प्रमार्जना (बीच में, बायें-दायें)
33.	नील लेश्या		
34.	कापोत लेश्या परिहरुँ		
35.	रस गारव	D	मुख एवं उसके दोनों बाजू मुँहपत्ति को ले जाना
36.	ऋद्धि गारव		
37.	शाता गारव परिहरुँ		
38.	माय शल्य	D	मात्र पुरुषों के लिये हृदय एवं उसके दोनों तरफ प्रमार्जना
39.	नियाण शल्य		
40.	मिथ्यात्व शल्य परिहरुँ		
41.	क्रोध	D	मात्र पुरुषों के लिये बांयें खंधे (कंधे) पर प्रमार्जना
42.	मान परिहरुँ		
43.	माया	D	मात्र पुरुषों के लिए दायें खंधे (कंधे) पर प्रमार्जना
44.	लोभ परिहरुँ		
45.	पृथ्वीकाय	E	दायें पैर पर तीन बार चरवला से प्रमार्जना
46.	अप्काय		
47.	तेउकाय की रक्षा करुं		
48.	वाउकाय	E	बायें पैर पर तीन बार चरवला से प्रमार्जना
49.	वनस्पतिकाय		
50.	त्रसकाय की जयणा करुं		

जरा विचारे ???

आपके घर की छत पर दाने डाले जाये तो गौर करना कि सूर्योदय होने के पहले कोई पक्षी दाना नहीं चुगेगा। मण भर दाने पड़े होंगे तो भी सूर्यास्त के बाद कोई भी पक्षी एक दाना मुँह में नहीं डालेगा। इन पक्षियों को किसी धर्म-गुरु ने रात्री-भोजन त्याग का नियम नहीं दिया है। समझदारी का ठेका लेकर फिरने वाले मनुष्य के पास पक्षियों जैसी सीधी सादी समझ भी नहीं है। यह बड़े ही अफसोस की बात है।

नरक के नेशनल हाईवे कहे जाने वाले इस पाप को समझदार मनुष्य जल्दी छोड़ दे अन्यथा गाड़ी गैरेज से निकलने के साथ ही नेशनल हाईवे नं. 1 पर चली जाएगी।

कम से कम मीनी श्रावक तो बनें।

(1) रोज त्रिकाल जिन-दर्शन पूजा।
(2) नवकारसी, चउविहार का पच्चक्खाण।
(3) 1 पक्की नवकारवाली।
(4) एक सामायिक की आराधना
(5) उभय काल प्रतिक्रमण।
(6) गुरुवंदन, प्रवचन श्रवण।
(7) चौदह नियम धारण करना।
(8) पर्वतिथियों में एकासणा-आयंबिल।
(9) रोज 12 द्रव्यों से अधिक न खाना।
(10) सचित चीजों व कच्चे पानी का त्याग।
(11) तंबाकू, पान-पराग, बीड़ी, सिगरेट, शराब आदि का त्याग।
(12) सात व्यसन का त्याग।
(13) कंदमूल व अभक्ष्य चीजों का त्याग।
(14) बाहर के पदार्थों का त्याग
(15) चतुर्दशी को पौषध की आराधना।
(16) उपधान तप वहन करना।
(17) शक्ति अनुसार सात क्षेत्रों में तथा अनुकंपा में धन खर्च करना।
(18) प्रति वर्ष तीर्थ यात्रा करना।
(19) दो शाश्वती ओली की आराधना।
(20) साधर्मिक की भक्ति।
(21) संयम प्राप्ति के लिए प्रिय चीज का त्याग।
(22) प्रति वर्ष आलोचना लेना।
(23) माता-पिता की सेवा करना।
(24) धर्म स्थानों की व्यवस्था संभालना।

स्थूलिभद्र चरित्र

जैन इतिहास

(मुझे पढ़कर तुम भी मेरे पथ पर चलना)

रुपसेन सुनंदा

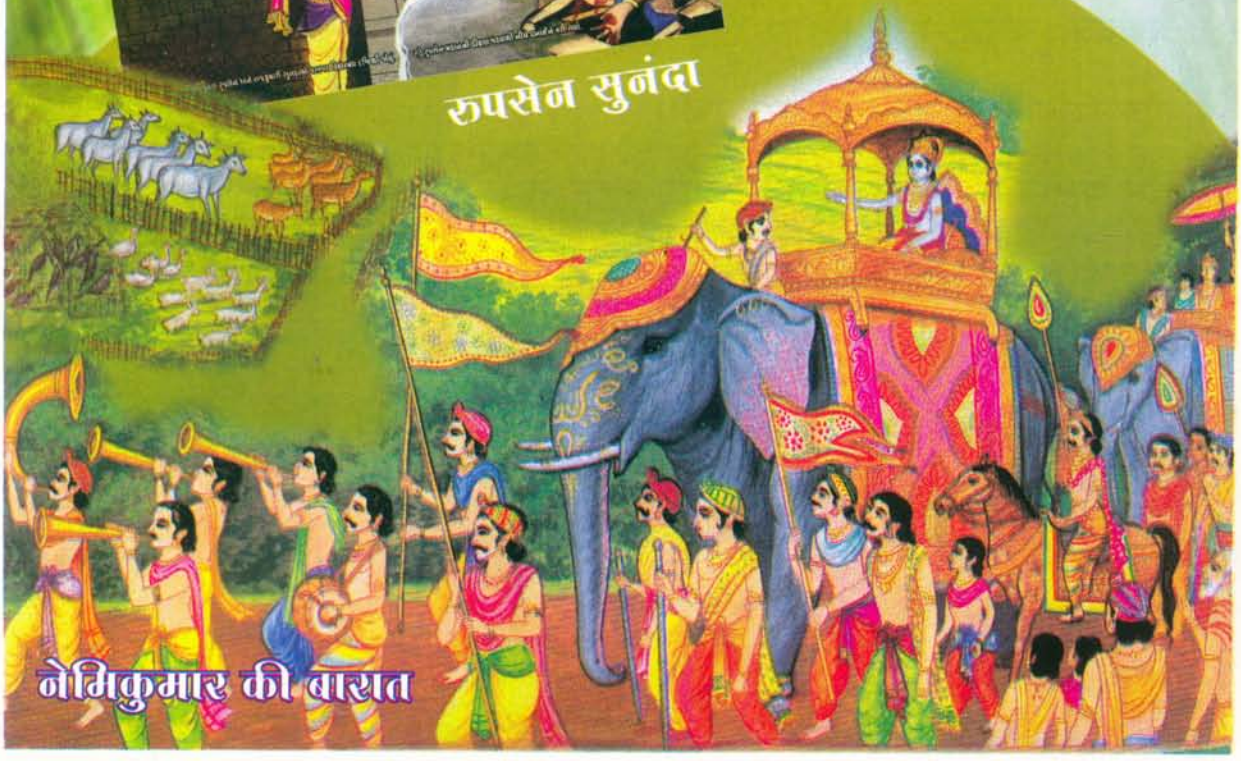

नेमिकुमार की बारात

तीन चीज़े याद रखें

तीन चीज़े किसी की प्रतिक्षा नहीं करती।

समय, मृत्यु, ग्राहक

तीन चीज़े भाई-भाई को दुश्मन बनाती है।

जर, जोरु, जमीन

तीन चीज़े याद रखना जरुरी है।

सच्चाई, कर्तव्य, मौत

तीन चीज़े कोई दूसरा चुरा नहीं सकता।

अक्कल, चरित्र, हुनर

तीन चीज़े निकल कर वापस नहीं आती।

तीर कमान से, बात जबान से, प्राण शरीर से

तीन चीज़े जीवन में एक बार ही मिलती है।

माँ, बाप, जवानी

तीन चीज़े पर्दे योग्य है।

धन, स्त्री, भोजन

इन तीनों का सम्मान करों

माता, पिता, गुरु

नेमिनाथ प्रभु का चरित्र

श्री नेमिनाथ प्रभु इस अवसर्पिणी काल के चौथे आरे में बाईसवें तीर्थंकर हुए। जम्बूद्वीप के भरतक्षेत्र में शौरीपुर नगर में समुद्रविजय राजा राज्य करते थे। उनकी पटरानी शिवादेवी की कुक्षि में कार्तिक वद बारस के दिन अपराजित नामक विमान से देव आयुष्य पूर्ण कर नेमिनाथ प्रभु का च्यवन हुआ। परमात्मा के अतिशय से माता ने चौदह महास्वप्न देखे। श्रावणसुद पंचमी के दिन नौ महिनें तथा साढ़े सात दिन का गर्भकाल पूर्ण कर चित्रा नक्षत्र में चन्द्रमा का योग होने पर उन्होंने पुत्र रत्न को जन्म दिया। देवकृत जन्माभिषेक के पश्चात् माता-पिता ने महोत्सव पूर्वक पुत्र का जन्मोत्सव तथा नामकरण किया। शिवामाता ने पंद्रहवें स्वप्न में अरिष्ट रत्न से बना चक्र देखा था। इससे पुत्र का नाम 'अरिष्टनेमि' रखा गया।

आयुधशाला में गमन तथा कृष्ण के साथ बल परीक्षा-

अरिष्टनेमि श्री कृष्ण के चचेरे भाई थे। कालानुक्रम से बाल्यावस्था पूर्ण कर अरिष्टनेमि युवावस्था को प्राप्त हुए। एक दिन दंडनेमि, दृढ़नेमि, रथनेमि और अन्य राजकुमारों के साथ अरिष्टनेमि क्रीड़ा करने बाहर गए। घूमते-घूमते वे श्री कृष्ण की आयुधशाला में पहुँचे। वहाँ पहुँचकर उन्होंने श्री कृष्ण के चक्र, शंख आदि आयुधों को देखा। वे उनका स्पर्श करने के लिए आगे बढ़ ही रहे थे, इतने में आयुधशाला के रक्षक ने उन्हें प्रणाम करके कहा, '' राजकुमार! यद्यपि आप श्री कृष्ण के भाई है। प्रबल पराक्रमी है तथापि आप अभी तक बहुत छोटे है। यह शस्त्र आदि उठाना आपके लिए असंभव है। उठाना तो दूर इनका स्पर्श भी अत्यंत मुश्किल है। इन सब आयुधों को मात्र श्री कृष्ण ही उठा सकते है एवं वे ही इन सबका उपयोग कर सकते है।''

यह सुनकर अरिष्टनेमि कुमार ने सहजतापूर्वक श्री कृष्ण के चक्र को उठाकर उसे कुंभार के चक्र की तरह घुमाया। सारंग धनुष को कमल की नाल की भाँति झुका दिया। उनके गदे को एक सामान्य लकड़ी की तरह कंधे पर रखा। इतना ही नहीं अंत में जब उन्होंने श्री कृष्ण का पँचजन्य शंख फूँका। तब उसके गुंजन से पूरी पृथ्वी काँपने लगी। नगर के सारे लोग बहरे जैसे हो गए। यहाँ तक कि श्री कृष्ण तथा बलभद्र भी घबरा गए। वे व्याकुल बनकर सोचने लगे कि, ''यह कौन बलवान है, जिसने संपूर्ण पृथ्वी को कँपा दिया?'' तब सैनिकों द्वारा सारी परिस्थिति जानकर वे भी आश्चर्य चकित बन आयुधशाला में पहुँचे। वहाँ पहुँचकर उन्होंने अरिष्टनेमि के साथ बल परीक्षा करने का निर्णय लिया। क्षत्रिय के योग्य खेल के रुप में दोनों ने एक दूसरे की भुजा झुकाने का निर्णय किया। सर्वप्रथम श्री कृष्ण ने अपनी भुजा लंबाई, तब अरिष्टनेमि ने मात्र एक अंगुली से उनकी भुजा को झुका दिया। जब अरिष्टनेमि ने अपनी भुजा लंबाई, तब श्री कृष्ण उसे

पकड़कर बंदर की तरह झुलने लगे। परंतु अथाग परिश्रम के बाद भी उनकी भुजा को झुका न सके।

यह देख कृष्ण तथा बलभद्रजी चिंतातुर हो गए। उन्होंने सोचा कि यह हमसे अधिक बलवान है अत: यह हमारा सर्व राज्य ले लेगा। इतने में तो आकाश से देववाणी हुई कि, "हे कृष्ण! तुम चिंता मत करो। अतुलबली होते हुए भी यह नेमिप्रभु बाल ब्रह्मचारी है, तथा बाईसवें तीर्थंकर है। इन्हें तुम्हारे राज्य की कोई आवश्यकता नहीं है। यह तो विवाह किए बिना ही संसार-त्याग कर दीक्षा ग्रहण करेंगे।" यह वचन सुनकर आश्वस्त बने श्री कृष्ण अपने भाईयों के साथ अपने महल में लौट आए।

प्रभु का विवाह :

एक दिन योग्य अवसर देख अरिष्टनेमि के माता-पिता ने पुत्र के समक्ष विवाह का प्रस्ताव रखा। तब नेमिकुमार ने विनय पूर्वक उनकी बात टाल दी। उनके प्रत्युत्तर तथा उनके विरक्त जीवन को देखकर समुद्रविजय तथा शिवादेवी चिन्तातुर हो गए। उन्होंने श्री कृष्ण से इस विषय में बात की। उन्हें आश्वस्त कर श्री कृष्ण ने यह काम अपनी रानियों को सौंपा। श्री कृष्ण की रानियाँ एक दिन अरिष्टनेमि को जल क्रीड़ा करने ले गई। वहाँ बातों ही बातों में उन्होंने कुमार के समक्ष विवाह करने का प्रस्ताव रखा परंतु कुमार का प्रतिभाव शून्य रहा। यह देख रानियों ने नेमिकुमार को बहुत समझाया, इतना ही नहीं उन्हें कई उपालंभ भी दिए। सारी बातें सुनकर कुमार तो विरक्त ही थे। लेकिन उन्हें रानियों की बातों पर हँसना आ गया। उनकी हँसी को उनकी हामी समझकर सारी रानियाँ खुश हो गई। यह समाचार उन्होंने श्री कृष्ण, समुद्रविजय तथा शिवादेवी को भी भिजवाए। सभी के हर्ष का पार नहीं रहा।

राजा उग्रसेन की पुत्री राजीमती को नेमिकुमार के लिए सर्वथा योग्य जानकर नेमिकुमार का विवाह उनके साथ तय कर दिया। अपने स्वजनों का हर्ष भंग न हो इसलिए नेमिकुमार वैरागी होते हुए भी मौन रहे। दोनों ओर विवाह की तैयारियाँ शुरु हो गई। विवाह के शुभ दिन छप्पन क्रोड़ यादव तथा और भी करोड़ों मनुष्यों के साथ नेमिकुमार की बारात निकली। इस तरफ राजीमती भी अपने भाग्य को सराहने लगी। सहसा उसकी दाहिनी आँख और भुजा फड़कने लगी। कुछ अनिष्ट होने की आशंका से उसका हृदय धड़कने लगा। बारात महल के निकट पहुँचने ही वाली थी। इतने में नेमिकुमार की दृष्टि वाडे में बंधे, भय से व्याकुल तथा करुण रुदन करने वाले पशुओं पर पड़ी। उन्होंने सारथी से पूछा " हे सारथी! इन पशुओं को यहाँ इस तरह क्यों बांध कर रखा है?" प्रत्युत्तर में सारथी ने कहा-"स्वामी! आपके विवाह प्रसंग पर आए अनेक राजा-महाराजाओं के भोजनार्थ इन्हें यहाँ बांधा गया है।"

यह सुनते ही नेमिकुमार का हृदय द्रवित हो उठा। करुणार्द्र प्रभु ने सोचा, "इतने जीवों की हिंसा

कराने वाले इस विवाह को धिक्कार हो। नरक के द्वार रुप यह विवाह मुझे नहीं करना। जगत के सारे जीव इसी तरह बंधन में बंधे है और अंत में कर्मराजा के शिकार बनेंगे। परंतु मुझे अब इन बंधनों में नहीं फँसना।'' तत्क्षण सारे पशुओं को मुक्त करवाकर उन्होंने रथ को वापस मोड़ने का आदेश दिया। उनकी यह चेष्टा देख सभी को अत्यंत आश्चर्य हुआ। शिवादेवी, समुद्रविजय, श्रीकृष्ण, उग्रसेन सहित सभी स्वजनों ने उन्हें समझाने की बहुत कोशिश की। परंतु नेमिकुमार अपने निर्णय पर अडिग रहें। बारात को पुन: लौटते देख राजीमती उसी समय बेहोश हो गई। परम सुंदरी राजीमती जैसी युवती को शादी किये बिना ही त्याग देना यह नेमिकुमार का प्रबल आत्मबल था। इस प्रकार एक छोटे से निमित्त से एक पल का विलंब किए बिना सारे भोग विलासों का त्याग कर वे विरक्त बन वहाँ से चल पड़े।

नेमिकुमार की दीक्षा तथा केवलज्ञान :

तोरण से पुन: फिरने के पश्चात् नव लोकांतिक देवों ने आकर परमात्मा से तीर्थ स्थापना करने की विनंती की। अवधिज्ञान से अपनी दीक्षा का अवसर जानकर नेमिकुमार ने वर्षीदान देना शुरु किया। सांवत्सरिक दान के पश्चात् श्रावण सुद छट्ठ के दिन 'उत्तरकुरा' नामक पालखी में बैठकर अनेक देवताओं और मनुष्यों के साथ नेमिकुमार रेवत उद्यान में पहुँचे। वहाँ अशोकवृक्ष के नीचे अपने हाथों से सर्व अलंकार उतारकर पंचमुष्टि लोच किया। चौविहार छट्ठ (दो उपवास) पूर्वक चित्रा नक्षत्र के साथ चंद्रमा का योग होने पर मात्र एक देवदुष्य वस्त्र धारण कर नेमिकुमार ने एक हज़ार पुरुषों के साथ दीक्षा ग्रहण की। उसी समय प्रभु को मन: पर्यव ज्ञान उत्पन्न हुआ।

तत्पश्चात् चौपन दिन तक छद्मस्थ अवस्था में विचरण करते हुए गिरनार पर्वत के सहस्राम्र वन में पधारें। वहाँ सर्व घाति कर्मों का क्षय कर आसोज वद अमावस के दिन क्षपक-श्रेणी पर आरुढ होकर नेमिनाथ प्रभु ने केवलज्ञान को प्राप्त किया। देवों ने समवसरण की रचना की। वनपालक ने श्री कृष्ण को वधामणी दी। श्री कृष्ण अपनी प्रजा के साथ प्रभु को वंदन करने आए। वहाँ वरदत्त प्रमुख दो हज़ार राजाओं ने दीक्षा ली। इस तरह प्रभु ने तीर्थ की स्थापना की।

नेमिनाथ प्रभु एवं राजीमती के ४ भव :

इस तरफ राजीमती भी प्रभु के वियोग में दु:खी बनकर, विलाप करते हुए अपना समय व्यतीत करने लगी। एक दिन श्री कृष्ण ने समवसरण में प्रभु से प्रश्न पूछा, ''स्वामी! राजीमती को आप पर इतना मोह क्यों है?'' तब परमात्मा ने कहा, ''हे कृष्ण! राजीमती का मेरे साथ पिछले आठ भवों का सम्बन्ध है। (1) पहले भव में मैं धन नामक राजा हुआ तब वह मेरी धनवती नाम की रानी थी। (2) दूसरे भव में हम दोनों पहले

देवलोक में उत्पन्न हुए। (3) तीसरे भव में मैं देवलोक से च्यवकर चित्रगति विद्याधर हुआ तब वह रत्नवती नामक मेरी स्त्री हुई। (4) चौथे भव में हम दोनों पुन: चौथे देवलोक में उत्पन्न हुए। (5) वहाँ से च्यवकर पाँचवे भव में मैं अपराजित राजा हुआ तब वह मेरी प्रियमती रानी हुई। (6) छट्ठे भव में हम दोनों ग्यारहवें देवलोक में गए। (7) वहाँ से मैं शंख राजा तथा वह मेरी सोमवती रानी बनी। (8) आठवे भव में हम दोनों अनुत्तर विमान में उत्पन्न हुए। (9) वहाँ से च्यवकर मैं नेमि बना तथा वह राजीमती बनी। इतने भवों की प्रीति के कारण उसे मुझ पर इतना मोह है।'' इस तरह प्रभु से नव भवों का वर्णन सुनकर श्री कृष्ण की शंका का समाधान हुआ।

राजीमती की दीक्षा तथा रथनेमि को प्रतिबोध :

नेमिकुमार के तोरण से लौट जाने के बाद राजीमती दिन-रात उन्हीं के चिन्तन में डूबी रहने लगी। अंत में उन्होंने भी अपने प्राणनाथ के मार्ग का अनुसरण करना ही श्रेयस्कर समझा। नेमिनाथ प्रभु का जब गिरनार में पदार्पण हुआ। तब राजीमती सहित कई राजकुमारियों ने भी संयम ग्रहण किया। साथ ही नेमिप्रभु के सांसारिक भाई रथनेमि ने भी संयम जीवन स्वीकार किया।

एक बार साध्वी राजीमती गिरनार पर्वत पर भगवान को वंदन करने जा रही थी , उस समय मार्ग में बारिश होने लगी। इससे राजीमती के सारे वस्त्र भीग गए। उन्हें सूकाने के लिए वह एक गुफा में गई। जहाँ पहले से ही रथनेमि मुनि काउसग्ग ध्यान में खड़े थे। राजीमती इस बात से अनभिज्ञ थी। गुफा में जाकर उसने अपने सारे वस्त्रों को सुकाया। राजीमती को निर्वस्त्र देख रथनेमि का मन चलायमान हो गया। उसने कहा, ''राजीमती! तुम इस युवावस्था में इतना तप-त्याग कर व्यर्थ ही अपनी सुंदरता को नष्ट कर रही हो। तुम मेरे साथ शादी कर लो। हम दोनों सुख पूर्वक भोग-विलास करेंगे।'' यह सुनते ही राजीमती वस्त्रों से अंगोपांग को ढँककर धीरज पूर्वक दृढ़ता से बोली, ''अरे रथनेमि! तुम्हें धिक्कार है। जो तुम वमन की हुई वस्तु को वापस खाने की इच्छा रखते हो। मैं नेमिप्रभु द्वारा तजी हुई हूँ और मेरे साथ भोग करने की इच्छा से तुम वमित पदार्थ को पुन: खाने की इच्छा वाले हो। अगंधन कुल के सर्प तिर्यंच होते हुए भी एक बार छोड़े हुए विष को पुन: ग्रहण नहीं करते। अत: तुम तो तिर्यंच से भी नीच बन गए हो। श्री नेमिनाथ के भाई ऐसे आपके लिए यह कुकार्य शोभनीय नहीं है। आप अपने पाप की आलोचना कर पुन: संयम में स्थिर बनें। अन्यथा दुर्गति में जाने के बाद वहाँ आपको बचाने वाला कोई नहीं होगा''। इस प्रकार वचन रुपी अंकुश से रथनेमि मुनि के मन रुपी हाथी को राजीमती ने स्थिर किया। वहाँ से रथनेमि ने प्रभु के पास जाकर शुद्ध आलोचना की। अंत में शुद्ध चारित्र-जीवन का पालन कर उन्हें केवलज्ञान प्राप्त हुआ। राजीमती ने भी संयम जीवन में

रहकर अपने सर्व घाति एवं अघाति कर्मों को क्षयकर प्रभु से पहले ही मोक्ष पद को प्राप्त किया।

प्रभु का निर्वाण :

कई जीवों को प्रतिबोध करते हुए परमात्मा ने सातसों वर्ष केवली पर्याय में व्यतीत किए। आषाढ़ सुद अष्टमी की मध्यरात्री में चित्रा नक्षत्र के साथ चंद्रयोग होने पर एक मास का अनशन कर अपने अघाति कर्मों को क्षय कर 556 साधुओं के साथ सिद्धपद को प्राप्त किया।

काम-विजेता स्थूलिभद्र

पाटलीपुत्र के अधिपति महाराजा नंद के शकडाल नामक मंत्री थे। राजा की वफादारी तथा राज्य सुरक्षा के भाव उनके रोम-रोम में बसे थे। उनके स्थूलिभद्र और श्रीयक नामक दो पुत्र तथा यक्षा आदि सात पुत्रियाँ थी। सातों बहनों का क्षयोपशम इतना तीव्र था कि यक्षा एक बार जो सूत्रादि श्रवण करती वह उसे कंठस्थ हो जाते थे। इसी प्रकार यक्षदिन्ना दो बार, भूता-तीन बार, भूतदिन्ना चार बार, सेणा पाँच बार, वेणा छः बार एवं रेणा किसी भी सूत्र को सात बार सुनने पर याद कर लेती थी। शकडाल मंत्री का पूरा परिवार जैनधर्म तथा जिनेश्वर देव के प्रति समर्पित था। धर्ममय वातावरण के साथ-साथ व्यवहारिक शिक्षण ग्रहण करते हुए सभी भाई-बहन बड़े हुए।

बड़ा पुत्र स्थूलिभद्र परम वैरागी था। उसका जीवन देख उसके माता-पिता को यह चिंता होने लगी कि यदि इसका वैराग्य ऐसा ही रहा तो इसका संसार कैसे चलेगा? अतः उन्होंने उसके मन को परिवर्तित करने का कार्य उसके मित्रों को सौंपा। परंतु उन्हें निराशा ही हाथ लगी। शुरुवात में सारे मित्र उसे संसार के रंग-राग से आकर्षित करने का प्रयास करते परंतु स्थूलिभद्र का प्रतिभाव तथा मित्रों की दलिलों के समक्ष उनके तर्क इतने सचोट और सुंदर होते कि उनके सारे मित्र भी वैरागी बन जाते। यह देख उनके माता-पिता हताश बन गए। जब घी सीधी ऊँगली से न निकले तो ऊँगली टेढ़ी कर लेनी चाहिए ऐसा सोचकर उन्होंने स्थूलिभद्र को विचलित करने का कार्य बुद्धिनिधान चाणक्य को सौंपा। चाणक्य ने विचार किया कि भले ही स्थूलिभद्र बहुत चतुर तथा परम वैरागी है परंतु साथ-साथ वह कला प्रिय भी है। समान रुचि रखने वाले लोगों का तालमेल जल्दी होता है। अतः इन्हें विचलित करने के लिए एक ऐसा व्यक्ति चाहिए जिसमें अद्‌भुत कला कौशल हो। उसी समय पाटलीपुत्र में आम्रपालीका नृत्य में पारंगत कोशा वेश्या अपनी नृत्यकला तथा सौन्दर्य के कारण सर्वत्र प्रसिद्ध थी। चाणक्य ने उसे योग्य जाना तथा एक बार अति आग्रह कर स्थूलिभद्र को कोशा वेश्या के वहाँ ले गए। प्रथम बार ही कोशा के अपूर्व सौन्दर्य को देख स्थूलिभद्र उस पर मोहित हो गए। नृत्य शुरु हुआ। स्थूलिभद्र के हाव-भाव देखकर मौका अच्छा है ऐसा जानकर

चाणक्य ने उसके हाथ में वीणा पकड़ाई। दोनो कलाओं का अद्‌भुत मिलन हुआ। इसी के साथ-साथ दोनों कलाकार भी परस्पर एक-दूसरे की कलाओं के प्रति आकर्षित हो गए। देखते ही देखते उनका यह आकर्षण राग में कब परिवर्तित हो गया उन्हें पता ही नहीं चला। धीरे-धीरे कोशा के घर जाना स्थूलिभद्र का नित्यक्रम बन गया था एवं कोशा भी उन पर आसक्त बन गई थी। एक दिन ऐसा आया जब राग के अति गाढ़ संबंधों में वश बने स्थूलिभद्र अपने माता-पिता, घर-बार को छोड़कर कोशा के यहाँ ही रहने लगे। उनके छोटे भाई श्रीयक ने उन्हें समझाने की बहुत कोशिश की। परंतु प्रेम-पाश में जकड़े स्थूलिभद्र को यह सीख काम नहीं आई।

इस तरफ एक बार राजसभा में वररुचि नामक ब्राह्मण ने नये श्लोक बनाकर राजा की स्तुति की। राजा की काव्यमय स्तुति सुनकर पूरी सभा वररुचि की प्रशंसा करने लगी। परंतु महामंत्री शकडाल मौन रहे। यह देख राजा ने ब्राह्मण को ईनाम नहीं दिया। यह क्रम नित्य ही चलता रहा। अपनी मेहनत पर पानी फिरता देख वररुचि मंत्रीश्वर की पत्नी लाछलदेवी से मिले। उन्हें मीठे वचनों से खुश कर मंत्रीश्वर द्वारा राज्यसभा में उसकी प्रशंसा करवाने का आग्रह किया। दूसरे दिन अपनी पत्नी के अत्याग्रह से मंत्री ने वररुचि की प्रशंसा की। राजा ने उसे ईनाम देकर सम्मानित किया। अब वह प्रतिदिन ही राजा से ईनाम प्राप्त करने लगा। मिथ्यात्व की अभिवृद्धि के साथ राजभंडार खाली हो जाने की आशंका से मंत्री इस अनुचित प्रथा के अंत का उपाय ढूँढने लगे। ऐसे में उन्हें अपनी पुत्रियों की स्मरण शक्ति उपयोगी लगी। दूसरे दिन अपनी पुत्रियों को समझा-बुझाकर शकडाल मंत्री राजसभा में ले आए। जैसे ही वररुचि ने आकर श्लोक सुनाए। तब शकडाल ने उन सभी श्लोकों को पुराना घोषित किया। जब वररुचि ने इसका प्रमाण माँगा। तब शकडाल ने सभा के बाहर खड़ी अपनी सातों पुत्रियों को क्रमशः बुलाकर उनके मुख से वही श्लोक बुलवाए। इससे वररुचि का सम्मान मिट्टी में मिल गया। पूरी सभा में अपमानित होकर वह वहाँ से चला गया। परंतु तब से वह सतत शकडाल मंत्री से बदला लेने की ताक में रहने लगा।

कुछ दिनों बाद श्रीयक के विवाह का प्रसंग आया। श्रीयक महाराजा नंद का अंगरक्षक होने के नाते महामंत्री ने इस प्रसंग पर महाराजा को हथियारादि भेंट करने का विचार किया। इसलिए उन्होंने अपने घर पर ही गुप्त रुप से शस्त्र बनवाने प्रारंभ किये। इस तरफ मंत्रीश्वर की किसी दासी द्वारा वररुचि को यह समाचार मिले। अतः उन्होंने मौके का फायदा उठाते हुए कुछ बालकों को एक श्लोक सिखाया और उन्हें राजमहल के आस-पास यह श्लोक गुनगुनाने की शिक्षा दी।

ए हु लेड नवि जाणइ जं शकडाल करेई,

राय नंदु मारविउ सिरियउ रज्जि ठवेसह।
राजा नन्दो न जानाति, शकडालस्य दुर्मतिम्,
हत्वैनं निजपुत्राय राज्यमेतत्प्रदित्सति।।

अर्थात् शकडाल की दुर्बुद्धि, नंदराजा नहीं जानता। शकडाल मंत्री राजा को मारकर श्रीयक को राज्य दे देगा।

राजा नंद के कानों तक यह बात पहुँचते ही उन्होंने इसकी जाँच करवाई। तब शकडाल के घर पर बन रहे शस्त्रों के बारे में उन्हें पता चला। इससे राजा मंत्री पर कुपित हो गए। उन्होंने शकडाल मंत्री के संपूर्ण परिवार को मार डालने का निर्णय लिया। दूसरे दिन शकडाल मंत्री ने राजसभा में राजा को प्रणाम किया। तब राजा ने मंत्री से मुँह फेर लिया। अचानक राजा के बदले व्यवहार से शकडाल मंत्री सारी परिस्थिति भांप गये। उन्होंने घर जाकर सारी स्थिति से श्रीयक को अवगत कराते हुए कहा - ''पूरे परिवार को नाश होने से बचाने के लिए कल जब मैं राजा को प्रणाम करुँ तब तुम तलवार से मेरा सिर काट देना।'' यह सुनते ही श्रीयक चौंक गया। उसने इस बात को अस्वीकार कर दिया। काफी समय तक चर्चा-विचारणा कर शकडाल मंत्री ने श्रीयक को समझाते हुए कहा -''आत्मबलिदान के बिना राजा के कोप से बचना मुश्किल है। और वैसे भी तुम मुझ पर तलवार चलाओ उसके पूर्व ही मैं मुँह में विष डाल दूँगा। अत: तुम्हें पितृ हत्या का पाप भी नहीं लगेगा।'' इस प्रकार समझा-बुझाकर शकडाल मंत्री ने श्रीयक को यह कार्य करने हेतु तैयार कर दिया। दूसरे दिन राजसभा में शकडाल मंत्री ने जैसे ही राजा को प्रणाम करने के लिए अपना मस्तक झुकाया वैसे ही श्रीयक ने उन पर तलवार चला दी। मंत्रीश्वर का मस्तक धड़ से अलग हो गया। यह देखते ही पूरी राजसभा में हाहाकार मच गया। राजा ने श्रीयक से ऐसा कार्य करने का कारण पूछा। तब श्रीयक द्वारा सत्य घटना जानकर राजा के पश्चाताप का पार नहीं रहा। राजा ने श्रीयक को आश्वस्त कर अन्त्येष्टि की क्रिया करवाई।

कुछ दिनों बाद जब पिता की मृत्यु का शोक थोड़ा कम हुआ। तब राजा नंद ने श्रीयक के समक्ष मंत्री मुद्रा ग्रहण करने का प्रस्ताव रखा। श्रीयक ने विनय पूर्वक अपने ज्येष्ठ भ्राता को यह पद देने का आग्रह किया। राजा ने तुरंत ही कोशा वेश्या के यहाँ से स्थूलिभद्र को बुलवाया। बारह-बारह वर्ष तक घर की ओर मुड़कर भी नहीं देखने वाले तथा पिता की मृत्यु से अनभिज्ञ स्थूलिभद्र को जब सारी सच्चाई बताई गई तब उनका मन खिन्न हो गया।

मंत्री मुद्रा ग्रहण करने के विषय में उन्होंने विचार करके जवाब देने की आज्ञा मांगी। समीप के बगीचे में जाकर उन्होंने सोचा '' मैं व्यर्थ में क्यों इस राज्य कार्यभार के बंधनों में पड़ूँ? यदि मैंने मंत्री मुद्रा

स्वीकार करली तो मैं अपनी प्रिया कोशा को समय नहीं दे पाऊँगा।'' इस प्रकार कोशा का विचार करते-करते उनके विचार चिंतन में परिवर्तन होने लगे। उनकी आत्मा से आवाज़ आई ''परंतु कोशा भी तो एक बंधन है। एक ऐसा बंधन जिसने मुझे अपने कुल, जाति, परिवार से दूर रखा। यह कैसा मोह जिसने मुझे अपने पिता की मृत्यु से अनभिज्ञ रखा। इस बंधन में फँसने के बाद मैं न तो अपने पिता का चेहरा देख पाया और ना हीं अपने पिता के काम आया। न दुनिया मुझे पहचान पाई और ना ही मैं अपना अनमोल मनुष्य भव सार्थक कर सका। मैंने उच्च कुल में जन्म लिया पर बारह वर्षों तक वेश्या के घर रहकर अपने कुल को कलंकित किया। रही बात मंत्री पद स्वीकार करने की, तो जिससे पिता की अकाल मृत्यु हुई ऐसी मंत्री मुद्रा से क्या लाभ''? इस प्रकार चिंतन की धारा बढ़ती गई और उनके मन तथा आत्मा के बीच संघर्ष छिड़ गया। उनकी सुषुप्त आत्मा जागृत हुई।

उन्होंने निर्णय किया कि राज्यपद तथा कोशा दोनों ही बंधन है। अब मुझे इन बंधनों में नहीं बंधना है। एक झटके में सारे मोहपाश को तोड़कर तत्क्षण लोच कर लिया। देवप्रदत्त साधु वेश पहनकर राजसभा में आए। उनके बदले रुप को देखकर राजा, श्रीयक सहित सभी सभासद आश्चर्यचकित हो गए। सभी के मन में उठी शंकाओं का समाधान करते हुए मुनि स्थूलिभद्रजी ने कहा- ''राजन्! राग और वैराग्य के मानसिक युद्ध में वैराग्य की जीत हुई। मुझे दोनों में से यही मार्ग उचित लगा''। इतना कहकर उन्होंने राजा को अपना चिंतन बताया। राजा ने अपनी जिज्ञासा प्रगट करते हुए उनसे पूछा ''माना कि राज्यपद तथा नारी यह बंधन है। परंतु क्या साधु जीवन में बंधन कम है? साधुत्व स्वीकारने के बाद तो कई मर्यादाओं का पालन करना पड़ता है। तो आप उन बंधनों को स्वीकारने के लिए कैसे तैयार हो गये?

मुनि स्थूलिभद्र ने कहा – माना कि साधुजीवन भी एक बंधन है। साधु बनकर शरीर, इन्द्रिय और मन की प्रवृत्तियों पर ताला लग जाता है। परंतु भविष्य में इन्हीं बंधनों से अपने कर्मों को तोड़कर आत्मा सादि अनंत काल के लिए स्वतन्त्र बन जाती है। शाश्वत सुख को प्राप्त कर लेती है। इसके विपरीत नारी और राज्यपद रुपी बंधन से तो यह आत्मा भविष्य में नरक के और भी दुखदायी बंधनों में बंध जाती है। बंधन दोनों में ही है परंतु साधुत्व के बंधनों से आत्मा भवांतर में सुखी होती है और सांसारिक बंधनों से आत्मा दुर्गति का शिकार बनती है। तो अब आप ही बताइये कौन-सा बंधन स्वीकारने में चतुराई है?'' यह सुन राजा निरुत्तर हो गये। 'धर्मलाभ' के आशिष देकर मुनि स्थूलिभद्र वहाँ से निकलकर तत्र बिराजित चतुर्दश पूर्वधारी मुनि संभूतिविजयजी के पास गए। राजा सहित सभी लोगों को लगा कि कोशा के चंगुल में फँसने के बाद निकल पाना बहुत मुश्किल है। इसलिए इस स्थूलिभद्र का वैराग्य कच्चा है या पक्का यह जानने के

लिए राजा ने उनके पीछे एक गुप्तचर भेजा। गुप्तचर द्वारा स्थूलिभद्रजी के आचार्यश्री के पास जाने के समाचार जानकर श्रीयक को मंत्रीपद प्रदान किया। यक्षा, यक्षदिन्ना आदि सातों बहनों ने भी दीक्षा अंगीकार की।

इस प्रकार संसार के सुख भोग में कंठ तक डूबे हुए स्थूलिभद्रजी का हृदय एक झटके में संसार से उदासीन और विरक्त होकर साधना के पथ पर बढ़ने के लिए उतावला हो गया। उन्होंने मुनि संभूतिविजय के पास पुन: विधि से दीक्षा ग्रहण की। राग और मोह के संस्कारों को छिन्न-भिन्न करने हेतु उन्होंने ज्ञानार्जन का मार्ग अपनाया। अल्प समय में गुरु-चरणों में रहकर एकादश अंगसूत्र का अध्ययन किया। इसके साथ- साथ वे ध्यान की उच्च साधना में भी संलग्न रहने लगे। इस प्रकार अपने लक्ष्य को प्राप्त करने हेतु सतत प्रयास करते हुए उनके दीक्षा पर्याय के बारह वर्ष बीत गए। इस दरम्यान उन्होंने ऐसी प्रचण्ड साधना साध ली थी कि तीन भुवन में किसी की ताकत नहीं थी कि कोई उनके शीलव्रत को खण्डित कर सके। एक दिन वर्षा ऋतु में तीन मुनिभगवंतों ने गुरुदेवश्री संभूतिविजयजी के पास क्रमश: सिंह की गुफा के पास, सर्प के बिल के पास तथा कुएँ की पाल पर चातुर्मास करने की आज्ञा मांगी। मुनि स्थूलिभद्र ने भी अपनी दीर्घकालीन साधना की परीक्षा करने हेतु कोशा वेश्या के घर पर चातुर्मास करने की आज्ञा माँगी। गुरुदेव ने आशीर्वाद पूर्वक सभी को आज्ञा प्रदान की। चारों अपने गंतव्य स्थान पर पहुँचे। प्रथम दोनों मुनिवर के तप-जप के प्रभाव से सिंह और सर्प भी शान्त हो गए। कुएँ पर चातुर्मास करने वाले मुनि की अप्रमत्तता से वहाँ पानी भरने वाली पनिहारनें भी प्रभावित हो गई।

इधर मुनि स्थूलिभद्र को अपने आँगन में आते देख कोशा प्रमुदित हो उठी तथा मुनिवर के पास आई। स्थूलिभद्रजी ने उसकी चित्रशाला में चातुर्मास करने हेतु आज्ञा मांगी। इस पर कोशा ने कहा "अपने ही घर में आज्ञा कैसी स्वामी?" मुनि ने साधु मर्यादा बताते हुए कहा "कोशा, मैं जैन मुनि हूँ। हमारा कोई घर नहीं होता। आज्ञा बिना हम कहीं ठहर नहीं सकते।" यह सुन कोशा ने मुनि को आज्ञा दी। चातुर्मास प्रारंभ हुआ। कोशा को लगा स्थूलिभद्र स्वयं ही पिघल जायेंगे। लेकिन जब कोशा को लगा कि मुनि तो वैराग्य में स्थिर है तब से कोशा नित्य नये श्रृंगार द्वारा सज-धजकर आने लगी। मुनि को कामोत्तेजक गुटिका से निर्मित षड्रस आहार वहोराने लगी। हाव-भाव, नृत्यादि होने लगा। कोशा हमेशा मुनि को पुरानी बाते याद दिलाने लगी परन्तु मुनि सदैव मौन में रहे। कोशा को जो करना था वह करने दिया। कोशा भी मुनि को चलित करने हेतु रात-दिन मेहनत करने लगी। परंतु अपूर्व सुंदरी होते हुए भी वह कामविजेता मुनि को चलायमान न कर सकी। कुछ ही दिनों में उसकी आशा निराशा में बदलने लगी। परंतु साथ ही वह मुनि की निर्विकारिता से भी प्रभावित हो गयी। तत्पश्चात् एक दिन कोशा मर्यादित एवं सादे वस्त्र धारण कर एक

सामान्य स्त्री की तरह कुछ धर्म पाने की भावना से मुनि स्थूलिभद्र के सामने आकर बैठ गई।

लोहा गर्म हो गया है अब घात मारने में देरी नहीं करनी चाहिए ऐसा जानकर मुनि स्थूलिभद्र ने कहा ''कोशा मैं बारह वर्षों तक तुम्हारे पास रहा। तुमने और मैंने क्या पाया? इस पर चिंतन करो। अनमोल ऐसा मानव जन्म मिला लेकिन काया के सुखों में, नीच कार्यों में आयुष्य के वर्षों-वर्ष व्यतीत कर दिये। खोया कितना? पाया कितना? क्या यह काया अमर है? क्या सुखोपभोग से तृप्ति होती है? तुमने 12 वर्षों तक मेरे साथ सुखोपभोग किया? क्या तुम्हें तृप्ति हुई? क्या यहाँ से नरकादि दुर्गतियों में भ्रमण करने जाना है? नीचे गिरना है या ऊपर उठना है? सुख दु:ख की वास्तविक व्याख्या को समझो।''

कोशा विचाराधीन हो गई। उसे मुनि के एक-एक वाक्य में सत्यता का अनुभव होने लगा। उसकी आत्मा पर से आसक्ति के पड़ल धीरे-धीरे हटने लगे। कुछ समय बाद उसने कहा - ''हे महायोगी! मेरे अपराधों को क्षमा करो। आपके पवित्र परमाणुओं ने मेरे विकारों को भी शांत कर दिया है। आपकी निर्विकारिता के सामने मैं हार गई।'' मुनिवर ने उसे आश्वस्त करते हुए कहा ''कोशा तुम हारी नहीं जीत गई हो। तुम ही नहीं अपितु हम दोनों ही जीत गए हैं। काम विजय की अग्नि परीक्षा में मैं भी निश्चल रहा और साथ ही तुम्हारा चित्त भी अब निर्मल और विकार मुक्त होने लगा है यही तो मैं चाहता था''। तब कोशा ने कहा, ''कृपानाथ! अब तो मुझे आपके चरणों में लेकर धर्म का ज्ञान प्रदान करें।'' मुनि स्थूलिभद्रजी ने कहा - ''हे कल्याणी! सभी के शरणदाता अरिहंत वीतराग प्रभु है। उन्हीं की चरण-शरण से तुम्हारा कल्याण होगा''। मुनि स्थूलिभद्र ने कोशा को श्रावक धर्म का तत्त्व समझाया। कुछ ही दिनों में वह श्रमणोपासिका बन गई तथा शेष चातुर्मास तत्त्वज्ञान को प्राप्त करने में पूर्ण किया।

चातुर्मास पूर्ण होते ही सिंह गुफावासी आदि तीनों मुनि अपने गुरुदेव के पास आए। मुनि संभूतिविजय ने तीनों को दुष्कर कहकर स्वागत किया। परंतु जैसे ही मुनि स्थूलिभद्र आए तब गुरुदेवश्री ने ''दुष्कर महादुष्कर'' इस प्रकार कहते हुए सात कदम आगे आकर उनका स्वागत किया। यह देख स्थूलिभद्र मंत्री पुत्र है इसलिए गुरुदेव के हृदय में पक्षपात है। ऐसा सोच अन्य मुनि उनसे ईर्ष्या करने लगे। आठ महिनों बाद सिंहगुफा वासी मुनि, स्थूलिभद्र मुनि की होड़ करने के लिए कोशा की चित्रशाला में चातुर्मास हेतु अपने गुरुदेव के पास आज्ञा माँगने आए। गुरुदेव श्री समझ गए कि ईर्ष्यावश होकर यह आज्ञा माँग रहे है। उन्होंने मुनि को बहुत समझाया। परंतु गुरु आज्ञा की अवहेलना कर वह कोशा वेश्या के यहाँ चातुर्मास करने चले गए।

वह गए तो थे स्थूलिभद्र मुनि की होड़ करने परंतु कोशा के अपूर्व सौन्दर्य को देखते ही उनकी

मनोवृत्ति चंचल हो गयी। पथभ्रष्ट बने मुनि ने कोशा से भोग की याचना की। कोशा ने पथभ्रष्ट मुनि को सही मार्ग पर लाने के लिए उससे देह के बदले द्रव्य माँगा। जब मुनि ने द्रव्य प्राप्ति का उपाय पूछा तब कोशा ने नेपाल के महाराजा के पास से रत्नकंबल ले आने का मार्ग बताया। वासना की गुलामी ने चातुर्मास में भी मुनि को नेपाल जाने के लिए मजबूर कर दिया। बड़ी कठिनाई से रत्नकंबल लाकर उन्होंने खुशी से कोशा को सौंपा।

कोशा ने कंबल के टुकड़े कर उससे पाँव पोंछ कर नाली में फेंक दिया। अपने श्रम का ऐसा फल देखकर मुनि क्रोधित हो उठे। तथा उन्होंने कहा '' हे सुंदरी! इतने कष्ट से मैं यह कंबल लाया था। तुमने इसे इस प्रकार नाली में क्यों फेंक दिया?'' तब उचित मौका देख कोशा ने पहले ही दासिओं द्वारा मंगवाए गए कई रत्न कंबल मुनि के सामने फेंकते हुए कहा - '' देखो मुनिवर! ऐसे तो कई रत्नकंबल मेरे पास है। परंतु तुम्हारे पास जो चारित्र रुपी श्रेष्ठ रत्न है, वह तो देवों को भी दुर्लभ है। यह रत्नकंबल तो धोने से स्वच्छ हो जायेगा। परंतु चारित्र रुपी रत्न प्राप्त करने के बाद यदि आप अपनी आत्मा को वासना की गंदी नाली में फेंक दोंगे तो आपकी आत्मा को इस भव में तो क्या भवांतर में भी साफ करना मुश्किल होगा। आप व्यर्थ ही इस नश्वर काया के चंगुल में फँसकर दुर्गति की परंपरा से बंध रहे है। मुनिवर अब भी वक्त है संभल जाईए''।

कोशा के सदुपदेश भरे वचन को सुनकर मुनिवर की आत्मा जागृत हो गई। पश्चाताप की आग में जलते मुनि ने कोशा के पास माफी मांगी। वहाँ से गुरुदेव के पास जाकर आलोचना ली एवं स्थूलिभद्र मुनि से क्षमायाचना की। सर्व साधुओं के समक्ष उन्होंने कहा - ''सर्व साधुओं में एक स्थूलिभद्र ही अति दुष्कर कार्य करने वाले है ऐसा जो गुरुदेव ने कहा था वह योग्य ही था। स्त्री विलास के रस को जानकर जो उनसे विरक्त बने वह वास्तव में महान है। ऐसे कामविजेता मुनि को मैं वंदन करता हूँ।'' धन्य है ऐसे निर्विकारी महापुरुष को।

अन्य सारे सहवर्ती साधु भी वहाँ आ गए। तब सिंहगुफावासी मुनिवर ने स्थूलिभद्र मुनि से कहा- ''सचमुच आपकी मनोभूमिका को, आपकी दृढ़ता को धन्यवाद है। क्योंकि पूर्व में जिस स्त्री के साथ आपके संबंध इतने गाढ़ थे कि जिसके यहाँ आप बारह वर्षों तक रहे। उसके विचार मात्र को भी एक झटके में हटा देना, यह बहुत बड़ी आध्यात्मिक सिद्धि है। परंतु मुझे यह समझ में नहीं आया कि आपने कोशा के यहाँ चातुर्मास करने की आज्ञा क्यों मांगी? क्या उस वक्त आपको उसकी याद आ रही थी?

स्थूलिभद्र मुनि – कोशा की याद से प्रेरित होकर मैंने ऐसा नहीं किया। कोशा के यहाँ चातुर्मास की अनुज्ञा मांगने में कई कारण थे।

सिंह गुफावासी मुनि - वे कारण कौन-से थे ? क्या आप हमें बताने की कृपा करेंगे ?

स्थूलिभद्र मुनि – आप सभी अपनी-अपनी कड़ी साधना की सिद्धि हेतु अपनी परीक्षा करना चाहते थे। आपने अहिंसा की साधना को सिद्ध करने के लिए सिंह की गुफा के पास चातुर्मास बिताने की अनुज्ञा मांगी। इन महात्मा ने क्रोधविजय, क्षमा भाव की सिद्धि हेतु भयानक जहरीले साँप के बिल के पास खड़े रहकर चार मास आराधना करने की अनुमति चाही और इन्होंने अपने अप्रमत्तभाव की पराकाष्ठा को पाने के लिए कुएँ की दीवार पर खड़े-खड़े कायोत्सर्ग करके चातुर्मास पूरा करने की आज्ञा मांगी। तब मुझे लगा कि क्यों न मैं भी अपने ब्रह्मचर्य की साधना को उत्कृष्टतम बनाने हेतु अपनी परीक्षा करुँ और आप ही बताइयें इस हेतु मैंने जो स्थान चुना उससे उत्तम स्थान दूसरा कौन-सा हो सकता था ?

अन्य सहवर्ती मुनि – आपने एकदम सही फर्माया, स्थान के विषय में आपका चुनाव सही था। पर हम यह जानना चाहते है कि कोशा के यहाँ चातुर्मास करने का क्या यह एक ही कारण था या अन्य भी कोई कारण थे ? यदि अन्य कारण थे तो क्या आप वह हमें बताएँगे ?

स्थूलिभद्र मुनि – हाँ अन्य भी कई कारण थे जिनके लिए मैंने यह कदम उठाया। दूसरा कारण यह था कि इतने वर्षों तक हम दोनों वासना की नाली में डुबे हुए थे। साधु बनकर मैं तो बाहर आ गया। परंतु मुझे अब कोशा को भी बाहर निकालना उचित लग रहा था। अन्यथा मैं उसका विश्वासघाती कहलाता। इसके अलावा जब मैंने उसका महल छोड़ा था तब मैंने उससे वादा किया था कि मैं वापस आऊँगा। मुझे वह वादा भी निभाना था। कई लोगों की धारणा थी कि राजा और मंत्रीपद से बचने के लिए मैंने दीक्षा ली है। जब कोशा नज़र के सामने आयेगी तब मेरा सारा वैराग्य चौपट हो जाएगा और मैं वापस कोशा के साथ रंग-राग में डूब जाऊँगा। इस गलत मान्यता को दूर करना भी आवश्यक था। मुझे सभी को प्रेरणा देनी थी कि आदमी चाहे तो अपने कैसे भी दोष और वासना से मुक्त हो सकता है। जिस निमित्त को पाकर एक व्यक्ति औरों की नज़रों के सामने नीचा गिर जाता है। वह व्यक्ति यदि पुरुषार्थ करे तो उसी निमित्त पर नियंत्रण पाकर ऊँचा भी उठ सकता है। मुझे सकल विश्व के सामने इस बात की सिद्धि करनी थी। इसलिए मैंने कोशा के यहाँ चातुर्मास करने की आज्ञा मांगी।

सर्प बिल वासी मुनि – कोशा के यहाँ चातुर्मास करने के पीछे आपने जो कारण, जो हेतु बताए। आप सचमुच उसमें खरे उतरे। परंतु अब मैं आपसे एक व्यक्तिगत प्रश्न करना चाहता हूँ। बाह्य दृष्टि से देखा जाए तो आप भले ही जीत गए परंतु अंतर मन से भी क्या आप उतने ही दृढ़ रहे ? क्या पूरे चातुर्मास के दौरान आपके मन में एक बार भी वासना के या ऐसे कोई भी दूसरे विचार नहीं आए ?

स्थूलिभद्र मुनि – अहंकार बिना पूरी वास्तविकता कहूँ तो मेरे मन में एक बार भी ऐसा कोई विचार नहीं आया। इसे देवगुरु की कृपा का चमत्कार ही कह सकते है वर्ना मुझ में ऐसी ताकत कहाँ कि मैं अपने मन को नियंत्रित कर सकूँ।

सिंह गुफा वासी मुनि – धन्य है आपको! मेरा मन तो कोशा को पहली नज़र में देखते ही चंचल हो गया था। ना तो उसके हाथ का बना भोजन मैंने खाया था और ना ही उसे नृत्यादि करते देखा था। परंतु मात्र एक दृष्टिपात से ही मेरे मन में विकारी भावनाओं का आगमन हो गया था। साज श्रृंगार से सजी, नृत्य आदि कलाओं को करती ऐसी रुप सुंदरी कोशा को सतत अपनी आँखों के समक्ष देख आप दृढ़ रहे यह अति दुर्लभ है। मैं यह जानना चाहता हूँ कि षड्रस भोजनकर तथा नृत्यादि देखकर भी आप निर्लेप कैसे रह सके? जब कोशा आती थी तब निर्विकारी रहने के लिए आप क्या अपनी आँखें बंद करके बैठते थे? आप ऐसा क्या चिंतन करते थे, जो आपको अपने लक्ष्य पर मजबूत रहने की शक्ति देता था?

स्थूलिभद्र मुनि – आगमगत जिनवाणी के अध्ययन से और पूज्य गुरु भगवंत की शुश्रूषा इन दोनों के प्रभाव से मैंने ऐसे अनेक विचारों (चिन्तन) का सहारा लिया। जिसके बल पर मैं कोयले की खान में जाकर भी बिना काले धब्बे बाहर निकल पाया। वे चिन्तन इस प्रकार है -

1. एक बार अब्रह्म के सेवन से दो से नौ लाख पंचेन्द्रिय जीवों की हिंसा होती है। अन्य कृमि आदि की गिनती तो अलग रही। ऐसी जिनवाणी है। अत: मुझे सावधान रहना है।

2. मुझे गुरु महाराज नज़र के सामने दिख रहे थे। उन्होंने मुझ पर दृढ़ विश्वास रखकर साधु के लिए बिल्कुल अनुचित स्थान पर चातुर्मास करने की अनुज्ञा दी। अब मुझे उनके विश्वास को अविचलित रखना है।

3. मेरी माँ का चेहरा मेरे सामने आ जाता मानो वे मुझे कहती थी कि मेरी यह कुक्षि रत्नकुक्षि के रुप में प्रसिद्ध बनें या कोयला कुक्षि के रुप में निंदनीय बनें, यह तुझ पर निर्भर करता है।

4. अत: कोशा के चेहरे में मुझे कोशा नहीं मेरी माँ दिखाई देती थी, और जहाँ माँ का चेहरा हो, माँ का नाम हो, वहाँ काम कैंसे हो सकता है ?

5. मानो मुझे मेरे स्वर्गस्थ पिताजी कान में कह रहे है कि "मैं एक सामान्य राजा की सेवा स्वीकारने के बाद सदा उनका वफादार रहा हूँ और मेरी वफादारी पर जब शंका के बादल मंडराने लगे। तब पूरे परिवार की रक्षा एवं अपनी वफादारी सिद्ध करने हेतु मैंने आत्महत्या कर ली, किंतु कलंक नहीं लगने दिया। तू मेरा पुत्र है, मेरे उज्जवल कुल-वंश को और ज्यादा उज्जवल करना तेरा काम है। दीक्षा लेने के बाद तुम तीन

लोक के महाराज जिनेश्वरदेव की सेवा में हो। अत: उनके वेष के प्रति वफादार रहना । मर जाना किन्तु भ्रष्ट मत होना। जैनशासन-संघ ही तेरा परिवार है, तेरी गलती से उसकी निंदा न हो इसका ख्याल रखना।

6. वैराग्य के विचार में मस्त मुझे कोशा के रुप में वैतरणी नदी दिखाई देती थी। उसका नृत्य श्मशान में डायन का नृत्य हो रहा हो ऐसा मुझे महसूस होता था। उसके गहने फाँसी के फंदे लग रहे थे। उसके हास्य में रोने की आवाज़ सुनाई देती थी। मुझे लग रहा था यदि मैं इस चक्कर में फँस गया तो कहीं का नहीं रहूँगा।

7. मुझे दशवैकालिक सूत्र में बताए गए अगन्धन कुल के साँप का ख्याल आता जो अग्नि में जल जाने के लिए तैयार हो जाते, किन्तु वमन किये हुए ज़हर को वापस नहीं पीते थें।

8. मल्लिनाथ भगवान ने उन राजाओं को जिस प्रकार स्त्री की अशुचि काया का ख्याल कराया था, राजीमती ने रथनेमि को जो उपदेश दिया था, जम्बू स्वामी ने अपनी आठ पत्नियों को जो दृष्टांत दिये थे, वे सब मेरे दिमाग में चित्र -परंपरा के रुप में उमड़ पड़ते थे।

9. एक बार के वासना के विचार मात्र से वीर्यनाश और शारीरिक-मानसिक तनाव से जो शरीर इन्द्रिय, मन और आत्मा को नुकसान होता है वह मुझे ज्ञात था। इसलिए प्रतिदिन ऐसी अनेक विचारधाराओं से मैं अपनी आत्मा को सुरक्षित बना देता था, जिससे कोशा के सभी प्रयत्न निष्फल जाते।

सिंह गुफा वासी मुनि – सचमुच धन्य है आपको! आपके भावों को। आप जीत गए और मैं हार गया।

इस प्रकार सभी स्थूलिभद्र मुनि की प्रशंसा करने लगे। समय अपनी गति से बहने लगा। भवितव्यता के योग से जगत में परिस्थितियाँ बदलती रहती हैं। उस समय 12 वर्ष का भयंकर अकाल पड़ा। इस अकाल के कारण साधुओं को भिक्षा भी दुर्लभ बनती गई। परिणामस्वरुप भूख से पीड़ित अनेक मुनि स्वाध्याय करने में असमर्थ बनते गए। श्रुत व सिद्धांत का विस्मरण होने लगा। अत: पाटलीपुत्र नगर में समस्त श्रमण संघ इकट्ठा हुआ। जिस मुनि को जिस सूत्र का जो अध्ययन याद था, उसे इकट्ठा किया गया। इस प्रकार श्रीसंघ ने मिलकर ग्यारह अंगों का संयोजन किया।

उस समय 12वें दृष्टिवाद को जानने वाले एक मात्र भद्रबाहु स्वामी ही थे, जो नेपाल देश में 'महाप्राण' ध्यान कर रहे थे। अन्य साधुओं को दृष्टिवाद का अभ्यास करवाने के लिए श्रीसंघ ने दो मुनियों को तैयार कर भद्रबाहुस्वामी के पास भेजा। उन दोनों मुनियों ने भद्रबाहु स्वामी को प्रणाम करके कहा- ''गुरुदेव ने आपको पाटलीपुत्र नगर में पधारने का आदेश दिया हैं''।

भद्रबाहु स्वामी ने कहा – ''अभी मैं महाप्राण ध्यान कर रहा हूँ अत: अभी मैं वहाँ नहीं आ सकूँगा।'' उन

दोनों मुनियों ने आकर श्रीसंघ व गुरुदेव को सारी बात बताई। भद्रबाहु स्वामी के इस प्रत्युत्तर को जानकर श्रीसंघ व गुरुदेव ने पुन: दो शिष्यों को तैयार कर भद्रबाहु स्वामी के पास भेजा। वहाँ जाकर उन्होंने भद्रबाहु स्वामी को पूछा 'यदि कोई संघ की आज्ञा नहीं मानता हो तो उसे क्या करना चाहिये?' भद्रबाहु स्वामी जी ने कहा 'उसे संघ से बहिष्कृत कर देना चाहिये' उन शिष्यों ने कहा - 'इस वचन से आप भी संघ के बाहर हो जाते है।'

भद्रबाहु स्वामीजी ने कहा – ''मैं संघ की आज्ञा शिरोधार्य करता हूँ, परन्तु अभी मेरा महाप्राण ध्यान चालू होने से मुझे अधिक अवकाश नहीं मिल पा रहा है। फिर भी यदि दृष्टिवाद के अभ्यास के लिए जो मुनि यहाँ पधारेंगे, उन्हें मैं प्रतिदिन सात वाचना प्रदान करुंगा और ध्यान समाप्ति के बाद विशेष वाचनाएँ भी दे सकूँगा। इस प्रकार करने से मेरा कार्य भी सिद्ध होगा और संघ की आज्ञा का पालन भी हो सकेगा।'' भद्रबाहु स्वामी के वचनों को सुनकर वे दोनों मुनिवर अत्यन्त संतुष्ट हुए। उन्होंने जाकर संघ व गुरुदेव को बात बताई। भद्रबाहु स्वामी के प्रत्युत्तर को जानकर संघ भी प्रसन्न हुआ और श्रीसंघ ने स्थूलिभद्र आदि 500 मुनियों को दृष्टिवाद सिखने के लिए भद्रबाहु स्वामी के पास भेजा।

भद्रबाहु स्वामी अपनी अनुकूलतानुसार प्रतिदिन 7-7 वाचनाएँ देने लगे। परंतु स्थूलिभद्र मुनि को छोड़कर अन्य साधु अध्ययन करते-करते उद्विग्न बन अन्यत्र चले गए। एक मात्र स्थूलिभद्र मुनि ही निष्ठापूर्वक अध्ययनरत रहे। एक बार स्थूलिभद्र के मनोभंग को देखकर भद्रबाहु स्वामी ने पूछा ''तुम खेद क्यों पा रहे हो?''

स्थूलिभद्र ने कहा – ''अल्प वाचना के कारण''।

भद्रबाहु स्वामी ने कहा – ''तूम चिंता मत करो, मेरा ध्यान लगभग पूर्ण होने आया है। ध्यान समाप्ति के बाद मैं तुम्हें पूर्ण संतुष्ट करने की कोशिश करुँगा''। कुछ समय बाद भद्रबाहु स्वामी का महाप्राण ध्यान पूर्ण हो गया। उसके बाद वे स्थूलिभद्र को खूब वाचनाएँ देने लगे परिणाम स्वरुप वे अल्पकाल में ही दशपूर्व के ज्ञाता बन गए।

एक समय की बात है। यक्षा आदि सातों साध्वियाँ अपने भाई स्थूलिभद्र को वंदन करने के लिए गुरुदेव के पास आई और पूछा 'हमारे भाई मुनि कहाँ है?' आचार्य भगवंत ने कहा- ''तुम आगे जाओ, वे अशोक वृक्ष के नीचे स्वाध्याय कर रहे है''। वे सातों साध्वियाँ अशोकवृक्ष की ओर आगे बढ़ी। परन्तु वहाँ उन्होंने स्थूलिभद्र के बजाय एक सिंह को बैठे देखा। वे एकदम भयभीत हो गई और तत्काल गुरुदेव के पास आकर बोली 'भगवंत वहाँ तो एक सिंह बैठा हुआ है। उस सिंह ने भाई मुनि का भक्षण तो नहीं किया है न?'

आचार्य भगवंत ने अपने ज्ञान का उपयोग लगाकर कहा 'खेद न करो। तुम्हारा भाई विद्यमान है। तुम वापस जाओ, वहीं पर तुम्हें अपने भाई मुनि मिलेंगे।' गुरुदेव की आज्ञा प्राप्त कर वे साध्वियाँ पुन: उस अशोक वृक्ष के निकट पहुँची। वहाँ पर उन्होंने अपने भाई मुनि को देखा। वंदन करने के बाद जब साध्वीजी भगवंत ने सिंह के बारे में पूछा तो उन्होंने कहा 'यह सिंह का रुप तो मैंने ही किया था।'

अब कुछ समय बाद जब स्थूलिभद्र महामुनि आचार्य भगवंत के पास वाचना लेने के लिए आए तब उन्होंने कहा 'मैं तुम्हें वाचना नहीं दूंगा। क्योंकि अब अधिक ज्ञान पाने के लिए तुम योग्य नहीं हो। तुमने भी यदि अहंकार से सिंह का रुप कर लिया तो दूसरों की तो क्या बात की जाये ? अब कालक्रम से विद्या का पाचन कम होता जाएगा। विद्या भी पात्र को ही देने से लाभ का कारण बनती है, अपात्र को दी गई विद्या स्व-पर को नुकसान पहुँचाती है।' स्थूलिभद्र ने गुरुदेव के चरणों में गिरकर क्षमा याचना की। फिर भी गुरुदेव ने वाचना देने से इन्कार कर दिया।

तत्पश्चात् संघ के अति आग्रह से भद्रबाहु स्वामी ने शेष चार पूर्वों का ज्ञान, मात्र सूत्र से प्रदान किया किंतु उनका अर्थ नहीं बतलाया। इस प्रकार मूलसूत्र की अपेक्षा से स्थूलिभद्र महामुनि चौदह पूर्वधर हुए।

आचार्य भद्रबाहु स्वामी ने स्थूलिभद्रजी की योग्यता देखकर उन्हें आचार्य पद प्रदान किया। आचार्य श्री स्थूलिभद्रसूरि ने ग्राम, नगर आदि में विहार कर अनेक भव्यात्माओं को प्रतिबोध दिया। वे 30 वर्ष गृहस्थावस्था में, 24 वर्ष साधु पर्याय में, 45 वर्ष युगप्रधान आचार्यपद पर रहे। वीर निर्वाण संवत् 215 में वे स्वर्गवासी हुए।

ऐसे सर्वश्रेष्ठ ब्रह्मचर्य के स्वामी स्थूलिभद्र को धन्य हो! जिनका नाम लोग चौरासी चौवीसी तक याद करते रहेंगे तथा जिनका नाम शील साधक आत्मा प्रात: काल परमात्मा की तरह स्मरण करेगी।

रूपसेन और सुगंधा

पतंगभृंगमीनेभ सारंगा यान्ति दुर्दशाम्।

एकैकेन्द्रियदोषाच्चेद् दुष्टैस्तैः किं न पञ्चभिः॥

अग्नि के रुप में पागल बना पतंगियाँ उसी अग्नि में जलकर भस्म हो जाता है। कमल की सुगंध में मुग्ध बना भ्रमर कमल बंद होने तक वहीं चिपका रहता है। जिससे कमल के साथ-साथ वह भ्रमर भी किसी अन्य प्राणी का भक्षण बन जाता है। हथिनी के स्पर्श में पागल बना हाथी शिकारी के जाल में फँस जाता है। मांस के स्वाद में आसक्त बनी मछली काँटे में फँस कर अपनी जान गँवा देती है। शिकारी के मधुर संगीत में मोहान्ध बने हिरण स्वयं ही मौत को गले लगा लेते हैं। इस प्रकार ये सारे जीव, मात्र किसी एक इन्द्रिय के

विषय में आसक्त होकर अपने जीवन का अंत कर लेते हैं। तो फिर पाँचों इन्द्रियों के विषय में आसक्त बने मनुष्य की क्या स्थिति होती होगी? इन विषयों में आसक्त बना मनुष्य मात्र अपना यह भव ही नहीं बल्कि अपने कई भव बिगाड़ देता है। इन विषयों में पागल बनकर उसे कहाँ-कहाँ नहीं भटकना पड़ता है? यह हम रुपसेन और सुनंदा की इस कहानी के माध्यम से देखेंगे।

कृषीभूषण नामक नगर में कनकध्वज नामक राजा राज्य करते थे। राजा न्यायी-प्रजापालक एवं शूरवीर थे। राजा की रानी का नाम था यशोमती। रानी यशोमती न सिर्फ रुपवती थी बल्कि गुणवान और शीलवान भी थी। उन्हें गुणचंद्र एवं कीर्तिचन्द्र ये दो पुत्र तथा सुनंदा नामक एक पुत्री थी। सभी का जीवन सुखमय व्यतीत हो रहा था। सुनंदा अभी शैशव के श्रृंगार से सज्ज थी कि एक दिन उसने अपने राजमहल के झरोखे से एक अप्रिय घटना देखी।

सुनंदा ने देखा कि सामने वाली हवेली में एक पुरुष निर्दयता से अपनी पत्नी को मार रहा था उसकी पत्नी हाथ जोड़कर विनंती कर रही थी कि " हे नाथ! मैं निर्दोष हूँ, मुझ पर दया कीजिए। आज तक मैंने कभी भी आपकी आज्ञा का उल्लंघन नहीं किया। फिर भी आप मुझे क्यों मार रहे हो?" परंतु पत्नी की बातों को अनसुना कर वह उसे मारता ही जा रहा था। यह दृश्य देखकर सुनंदा के मन में पुरुष के प्रति द्वेष की भावना जागृत हो गई। उसके मन में यही विचार चलने लगे कि यह पुरुष बना इसका मतलब क्या यह बड़ा हो गया? यह स्त्री बनी इसका मतलब इसकी गुलाम बन गई? पत्नी यानि किसी की दासी? पुरुष तेरी क्रूरता को धिक्कार है। एक अबला स्त्री पर हाथ उठाने वाले कायर पुरुष को धिक्कारती हुई वह पुन: अपने खंड में पहुँच गई। उसके विषाद भरे चेहरे को देखकर उसकी सखी ने उसके दु:ख का कारण पूछा। तब सुनंदा ने पूरी घटना का वर्णन करते हुए अंत में कहा "सखी! पुरुष की निर्दयता तथा स्त्री की विवशता देख मैंने निश्चय किया है कि मैं कभी विवाह नहीं करुँगी"। सुनंदा की बात सुनकर सारी सखियाँ आश्चर्य चकित हो गई। उन्होंने कहा, "यह क्या कह रही हो सुनंदा, जरा सोचकर बोलो । अभी तो तुम नासमझ हो इसलिए तुमने यह निर्णय ले लिया। लेकिन जब यौवन वय को प्राप्त करोगी तब पता चलेगा कि पुरुष के बिना जीवन व्यतीत करना कितना मुश्किल है।" अपने सखियों के बहुत समझाने पर भी सुनंदा अपने निर्णय पर अटल रही। उसने कहा, "कुछ भी हो सखी तुम मेरे माता-पिता को मेरा निर्णय बता देना कि मेरी शादी करने की कोई इच्छा नहीं है। भविष्य में कभी विवाह करने की इच्छा होगी तो मैं कह दूँगी।"

परंतु सुनंदा का संकल्प ज्यादा दिनों तक टिक नहीं पाया। देखते ही देखते बाल्यावस्था का त्याग कर उसने यौवन की दहलीज़ पर कदम रखा। एक दिन सुनंदा ने सामने वाली हवेली में देखा कि एक पुरुष अपनी पत्नी का पुष्पों से श्रृंगार कर रहा है। पत्नी खिल-खिलाकर हँस रही है। पति उसे प्यार कर रहा है। यह सब

सुनंदा देखती ही रह गई। तब सुनंदा के मनोभाव को पहचानते हुए उसकी सखी ने पूछा- ''सखी! यह दृश्य देखकर तुझे क्या विचार आया?'' सुनंदा ने कहा- ''यही की मुझे भी कोई इसी तरह प्यार करें। यह दृश्य देखकर मैं समझ गई हूँ कि सारे पुरुष क्रूर नहीं होते। इसलिए मैंने पुन: शादी करने का फैसला कर दिया है। सखी! तुम माताजी-पिताजी तक यह समाचार पहुँचा देना।''

इस बात को एक सप्ताह बीत गया। सुनंदा नित्य ही झरोखे में बैठकर राजमार्ग से गुजरने वाले युवकों को देखकर अपना मन बहलाती। एक संध्या को उसी नगर के कोटीश्वर सेठ वसुदत्त के चार पुत्र में से सबसे छोटा पुत्र रुपसेन राजमहल के सामने वाली पान की दुकान पर पान खाने आया। सुनंदा की दृष्टि रुपसेन पर पड़ी और योगानुयोग रुपसेन की दृष्टि भी सुनंदा पर पड़ी। उसे पहचानते देर नहीं लगी कि यह रुप की रानी राजकुमारी सुनंदा है। वह मन ही मन सुनंदा को पाने का ख्वाब देखने लगा और इधर रुपसेन के मनमोहक रुप को देखकर सुनंदा भी उस पर आसक्त हो गई। तुरंत ही उसने अपनी सखी से उस नवयुवक का परिचय लाने को कहा। सखी ने पूछताछ कर सुनंदा को बताया कि, ''यह नगर सेठ का छोटा पुत्र रुपसेन है।'' अपने मनोभाव को व्यक्त करने के लिए सुनंदा ने एक पत्र लिखकर अपनी सखी के हाथों रुपसेन तक पहुँचाया। रुपसेन ने एकांत में वह पत्र पढ़ा।

प्रियतम!

पहली बार देखते ही मैं आपको अपना दिल दे बैठी हूँ। शायद आप भी मेरे ही ख्यालों में खोये होंगे ? यदि आप रुप के सागर हो तो मैं सौन्दर्य की सरिता हूँ। जिस दिन सागर सरिता का मिलन होगा उस दिन हमारा अहोभाग्य माना जाएगा। मैं चाहती हूँ प्रतिदिन इसी समय आप मुझे यहीं आकर अवश्य दर्शन दे। मैं चकोर की तरह चन्द्र सम आपकी राह देखूँगी। यदि आपने मुझे दर्शन नहीं दिये तो मैं अन्न-जल त्याग कर दूंगी।

आपकी याद में तड़पती....सुनंदा

पत्र पढ़ते ही रुपसेन आनंदित हो उठा। उसे लगा अनायास ही यह सुन्दर अवसर हाथ आ गया। उसने भी एक प्रेमपत्र लिखकर सुनंदा की अंतरंग सखी को दे दिया। सखी पत्र लेकर सुनंदा के पास आई एवं पत्र सुनंदा को दे दिया। सुनंदा ने पत्र खोलकर पढ़ना प्रारम्भ किया -

प्यारी-प्यारी प्रियतमा...!

आज मैं विधाता को धन्यवाद देना चाहता हूँ कि उसने तुम जैसी सौंदर्य की साम्राज्ञी मेरे लिए बनाई। वास्तव में तुम सौन्दर्य की सरिता हो, प्रेम की प्रतिमा हो, कोमलता की कविता हो, तुम्हें पाकर मैं धन्य बन जाऊँगा। तुम्हारा पत्र पाने के बाद मेरी हालत जल बिन मछली के जैसी हो गई है। मैं तुम्हारा मिलन चाहता हूँ। पता नहीं विधाता हमें कब मिलाएगा ? मैं प्रतिदिन संध्या को अपनी चकोरी से मिलने चंद्र बनकर

पान की दुकान पर जरुर आऊँगा।

तुम्हारे मिलन का इच्छुक.....रुपसेन

इस प्रकार सुनंदा और रुपसेन की प्रेम-कहानी की शुरुवात हो गई। अब रुपसेन नित्य ही पान वाले की दुकान पर आता और सुनंदा भी अपने झरोखे में आकर बैठ जाती। दोनों एक दूसरे को देख कर आनंद मनाते। कुछ दिन यूं ही बीत गये। दोनों प्रेमी अब मात्र दृष्टि मिलन से अतृप्त थे। वे तो नित्य ही एक दूसरे को मिलने की चाह रखते थे। ऐसे में नगर में कौमुदी महोत्सव का दिन निकट आया। राजा की तरफ से नगर में ढिंढ़ोरा पिटवाया गया कि वृद्ध एवं बिमार को छोड़कर सभी को कौमुदी महोत्सव में आना जरुरी है। पूरे नगर में महोत्सव की तैयारियाँ होने लगी। रुपसेन और सुनंदा को मिलन का अवसर मिल गया। पत्र व्यवहार द्वारा दोनों ने महोत्सव के दिन बिमारी का बहाना बनाकर नगर में ठहरने का निश्चय किया। कौमुदी के दिन महारानी यशोमती अपनी पुत्री सुनंदा को लेने आई। तब सुनंदा ने बिमारी का बहाना बनाकर महारानी को कौमुदी महोत्सव में भेज दिया। तथा स्वयं राजमहल में ही रही।

यहाँ रुपसेन भी सिरदर्द का बहाना बनाकर घर पर ही रहा। महोत्सव के दिन जब नगरवासी राज-भोज का आनंद ले रहे थे। तब सज-धज कर रुपसेन भी अपनी प्रियतमा को मिलने चल पड़ा। सुनंदा भी अपने प्रेमी को मिलने के लिए तरस रही थी। एक-एक पल एक-एक वर्ष के समान बीत रहे थे। सुनंदा ने पहले से ही सखियों के द्वारा झरोखे से रस्सी नीचे डलवा दी ताकि रुपसेन आराम से ऊपर आ सके। दोनों मिलन के सुनहरे सपनों में खोये हुए थे। पर होनी को कुछ और ही मंजूर था। कौमुदी महोत्सव में नगर के विराने का फायदा उठाकर महाबल नामक जुआरी भी अपनी निर्धनता दूर करने हेतु चोरी के लिए निकल पड़ा। घूमते-घूमते वह सुनंदा के महल के नीचे पहुँचा। उसने झरोखे से लटकती मोटी रस्सी देखी और कुतूहल वश उस रस्सी को हिलाने लगा। रस्सी के हिलते ही सुनंदा की सखियों ने समझा कि रुपसेन आ गया है। और उन्होंने उसे रस्सी से ऊपर खींच लिया। सखियों ने खण्ड के दीपक पहले से ही बुझा दिये थे। इतने में सुनंदा महाबल को रुपसेन समझकर उसका हाथ पकड़कर उसे अपनी शय्या के पास ले गई। मोहान्ध बना महाबल अन्धकार का फायदा उठाकर सुनंदा के साथ विषय-भोग करने लगा। सुनंदा भी उसके समागम का आनंद लेने लगी।

बिचारा रुपसेन सोचा कुछ और हुआ कुछ। रुपसेन सुनंदा के मिलन के सुनहरे सपनों में चल रहा था और अचानक एक जीर्ण मकान की दीवार उस पर गिर पड़ी। यहाँ उसकी प्रियतमा महाबल के साथ आनंद से विषय सुख भोग रही थी और वहाँ वह स्वयं अपने जीवन के अंतिम पलों को गिन रहा था। अंतिम समय में भी सुनंदा के साथ विषय भोग करने की इच्छा के कारण रुपसेन मरकर महाबल के समागम से

अपनी ही प्रेमिका सुनंदा के गर्भ में उत्पन्न हुआ। सचमुच कर्म के खेल न्यारे होते हैं। एक भव का प्रेमी दूसरे ही भव में पुत्र बन गया। प्रेमिका माता बन गई। विषय भोग के स्मरण मात्र से रुपसेन का अनमोल मनुष्य भव बिगड़ गया। यहाँ अचानक महारानी यशोमती द्वारा सुनंदा के तबीयत की खबर लेने हेतु भेजे हुए दो सैनिक सुनंदा के महल में पहुँचे। उनके आने की खबर सुनते ही सुनंदा घबरा गई। उसने तुरंत ही रुपसेन (महाबल) को जाने का संकेत दिया। महाबल के लिए तो यह रात वरदान के रुप में सिद्ध हो गई। वह सुनंदा के जवाहरात लेकर वहाँ से भाग गया। इधर रुपसेन के परिवारजन ने जब रुपसेन को घर पर नहीं देखा और काफी देर इंतजार करने पर भी जब वह नहीं लौटा। तब उन्होंने राजा से रुपसेन की खोज करवाने की विनंती की। सुनंदा को जब रुपसेन के लापता होने के समाचार मिले तब उसने भी सर्वत्र रुपसेन की खोज करवाई। लेकिन अब वह मिले भी कहाँ से ? वह तो अपार वेदना सहन कर अपनी प्रियतमा की कोख में उत्पन्न हो गया है।

कुछ दिनों बाद वातावरण एकदम शान्त हो गया। सुनंदा भी अब धीरे-धीरे रुपसेन को भूलने लगी। परंतु अब एक नई तकलीफ पैदा हो गई। धीरे-धीरे सुनंदा का गर्भ बढ़ने लगा। इस बात का मात्र सुनंदा तथा उसकी प्रिय सखी कामिनी को ही पता था। सुनंदा तथा उसके माता-पिता की इज्जत को बचाने के लिए कामिनी ने उसे गर्भपात कराने की सलाह दी। पंचेन्द्रिय जीव की हत्या के महापाप को करने के लिए सुनंदा का मन तैयार नहीं हुआ। आवेश में आकर विषय सुख भोगने की गलती का उसे एहसास होने लगा। किन्तु वह निरुपाय थी। गरम औषधि लेकर सुनंदा ने गर्भ में पल रहे अपने रुप के दिवाने रुपसेन की हत्या कर दी।

सुनंदा को पाने के सपने देखने वाला रुपसेन सुनंदा के ही हाथों मारा गया। वहाँ से मरकर वह किसी वन में फणीधर नाग के रुप में उत्पन्न हुआ। कुछ दिन बाद सुनंदा को भी अब विवाह के योग्य जानकर उसके माता-पिता ने क्षितिप्रतिष्ठित नगर के राजा के साथ उसकी शादी करवा दी। पटरानी बनी सुनंदा अब राजा के साथ आनंदमय जीवन गुजारने लगी। एक दिन राजा-रानी दोनों उद्यान में टहलने गए। संयोगवश नाग बना रुपसेन का जीव भी उसी उद्यान में पहुँच गया। सुनंदा को देखते ही पूर्व भव के वासना के संस्कार जागृत हो गए। सुनंदा को देखकर वह उसकी ओर बढ़ने लगा। इतने भयंकर नाग को अपनी ओर आते देख सुनंदा चिल्लाने लगी। उसकी चीख सुनकर राज-सेवक दौड़ कर आए तथा एक पल का भी विलंब किए बिना उस सर्प के टुकड़े-टुकड़े कर दिए। बेचारा रुपसेन पुनः अपनी प्रेमिका द्वारा मारा गया। वहाँ से मरकर रुपसेन का जीव चौथे भव में कौआँ बना।

एक दिन राजा ने अपने उद्यान में संगीत का कार्यक्रम रखा। राजा-रानी सहित दूसरे भी सभासद वहाँ आकर उस मनमोहक वातावरण का आनंद लेने लगे। इतने में संयोगवश कौआ बना रुपसेन का जीव भी

वहाँ आ पहुँचा। सुनंदा को देखते ही पूर्व भव के संस्कार फिर जागृत हो गए। खुशी के मारे वह जोर-जोर से काँव-काँव करने लगा। वाजिंत्रों की मधुर आवाज़ में हो रही कौएँ की कर्कश आवाज ने रंग में भंग डालने का काम किया। क्रोधावेश में राजा ने उस कौएँ को मार गिराने का आदेश दिया और सिपाहियों के एक बाण से ही वह कौआ धराशयी हो गया। बिचारा रुपसेन! अपने मानव जन्म को तो हार गया लेकिन मिलने वाले सारे भव भी प्रेम की वासना में बर्बाद कर दिए।

वहाँ से मरकर उस कौएँ ने फिर तिर्यंच योनि में जन्म लिया। अंत समय में मात्र सुनंदा के ही विचारों में मरने के कारण इस भव में भी वह उसी उद्यान में हंस के रुप में उत्पन्न हुआ। एक दिन राजा और रानी पुन: उसी उद्यान में टहलने गए। वहाँ पेड़ पर बैठे हंस ने सुनंदा को देखा तो वह उसके पीछे पागल हो गया तथा भ्रमर की तरह सुनंदा के चारों तरफ चक्कर लगाने लगा। इतने में किसी कौएँ ने राजा पर चरक(टिट) कर दी। इससे राजा ने क्रोधावेश में कहा''सैनिकों! देख क्या रहे हो ? मेरी पोशाक बिगाड़ने वाले इस कौएँ को मार गिराओ।'' सैनिकों ने तुरंत बाण चढ़ाए और निशाना लगाया। परंतु उस बाण का निशाना कोई और ही बना। कौआँ तो चालाकी से उड़ गया। परंतु वह बाण सुनंदा के पीछे पागल बने हंस को जा लगा। एक भव में जिसे देखने के लिए सुनंदा की आँखें तरसती थी। आज उसी रुपसेन को अपनी आँखों के सामने बेमौत मरते देख भी वह चुपचाप खड़ी रही। निरपराधी हंस ने मरकर किसी जंगल में हिरणी की कोख से हिरण के रुप में जन्म लिया और यहाँ राजा अपनी रानी सुनंदा के साथ एक दिन उसी जंगल में शिकार के लिए गया।

कर्म के खेल अजब-गजब के ही होते हैं। एक बार जीव उसकी चपेट में आ जाए फिर वह जीव को दुर्गति में ढकेलने में कोई कसर बाकि नहीं रखता। रुपसेन के भव में सुनंदा पर आसक्ति कर वह कर्म राजा की चपेट में आ गया। अब यह कर्म राजा हर जन्म में रुपसेन का सुनंदा से मिलन करवाकर उसे दुर्गति में ढकेलने के नये-नये उपाय ढूँढने लगा।

जंगल में संगीत की महफिल का आयोजन हुआ। वाजिंत्रों के सूरों की तान से पूरे वातावरण में मादकता भर गई। जंगली हिरण संगीत के सूरों में पागल होकर वहाँ आ गए। भवितव्यता से रुपसेन का जीव भी वहाँ आ पहुँचा। चंद्र को देखकर जिस प्रकार चकोर आनंदित हो उठता है, मेघ को देखकर जिस प्रकार मयूर उल्लसित हो जाता है, वैसे ही सुनंदा को देखकर वह हिरण भी पागल हो गया। पूर्व के कई भवों का स्नेह, राग पुन: जागृत हो गया। और वह पुन: वासना के भूत का शिकार बन गया। इतने में राजा के आदेश से संगीत बंद हो गया। स्वर रुकते ही सारे हिरण वापस जंगल में भाग गए। एक मात्र रुपसेन का जीव बना हिरण ही अपनी मौत को आमंत्रण देने के लिए वहाँ खड़ा रहा। राजा ने भी मौके का फायदा उठाकर एक पल का भी विलंब किए बिना धनुष से तीर छोड़ा और दूसरे ही पल खून से लथपथ हिरण का शरीर जमीन पर गिर

गया।

एक वक्त ऐसा था जब रुपसेन के दर्शन नहीं होने पर सुनंदा ने अन्न-जल त्याग करने की प्रतिज्ञा ली थी और आज छः-छः भव में वही उसकी मौत का कारण बनती गई। हृष्ट-पुष्ट हिरण का माँस पकाकर लाया गया। राजा और रानी चावपूर्वक उसके माँस का भक्षण करने लगे। अब तक तो सुनंदा मात्र रुपसेन की मृत्यु का कारण ही बनती रही। परंतु कर्म की विडंबना तो देखो, आज वही रुपसेन की प्रेमिका बड़े ही चावपूर्वक उसके शरीर के माँस का स्वाद उठा रही है।

तभी भाग्योदय से, पूर्वकृत प्रबल पुण्योदय से या यूँ कहे तो रुपसेन की प्रगति में निमित्त भूत ऐसे त्रिकालज्ञानी दो मुनि भगवंत का उसी उद्यान में पदार्पण हुआ। राजा-रानी को माँस भक्षण करते देख उन्होंने मस्तक धुनाया। तब राजा ने हाथ जोड़कर मुनि भगवंतों से पूछा, "हे मुनिवर! माँस-भक्षण करना हमारे कुल का आचार है। आपने हमें भोजन करते देख मस्तक धुनाया है। आप जैसे ज्ञानियों की यह चेष्टा असाधारण नहीं होगी जरुर इसके पीछे कोई गंभीर कारण है। हे गुरुभगवंत! मेरी शंका का निवारण कीजिए।"

तब मुनिवर बोले-"राजन्! मात्र मन से किया गया पाप भी कितना भयंकर परिणाम देने वाला होता है। जिसने सुनंदा को प्राप्त करने के लिए अपने छः छः भव बर्बाद कर दिए। आज उसी के माँस का भक्षण आप लोग कर रहे हो। कर्म की विडंबना तथा विषयवासना की भयंकरता का प्रत्यक्ष उदाहरण देखकर मेरा मस्तक धून गया।" आश्चर्य चकित होकर राजा ने पूछा "गुरुदेव! किस जीव ने सुनंदा के पीछे छः छः भव बर्बाद किए? यह माँस तो हिरण का है मुझे कुछ समझ में नहीं आया। जरा खुलकर बताने की कृपा करें।" "राजन्! यह बात सुनंदा रानी के जीवन से जुडी हुई है इसलिए सर्व प्रथम आपको इन्हें अभयदान देना होगा तो ही मैं बता सकता हूँ, अन्यथा नहीं।" राजा ने उसी क्षण कहा, "आप फरमाइए प्रभु! मैं रानी सुनंदा को अभयदान देता हूँ।"

मुनिवर बोले "राजन्! सुनंदा जब राजकुमारी थी तब उसी नगर के सेठ के पुत्र रुपसेन के साथ इन्हें प्रेम हो गया था तथा रुपसेन भी इनके रुप में मुग्ध बन गया था। क्या यह सच है सुनंदा रानी?" तब सुनंदा लज्जित होकर बोली " हाँ प्रभु, इतना ही नहीं मैंने एक बार उससे भोग विलास कर अपने शील का खंडन भी किया था।" तब मुनिवर बोले "नहीं सुनंदा तुम्हें गलतफहमी हुई है। उस रात तुम जिसे रुपसेन समझ रही थी वह वास्तव में रुपसेन नहीं बल्कि महाबल जुआरी था। रुपसेन तो तुम्हें मिलने के लिए आ रहा था और इतने में तो किसी जीर्ण मकान की दीवार उस पर गिर पड़ी और वह वही मृत्यु की शरण में चला गया।"

मुनि की बात सुनते ही सुनंदा के आश्चर्य और खेद का पार नहीं रहा। "हे प्रभु! यह क्या अनर्थ हो गया मुझसे? प्रभु वहाँ से रुपसेन मरकर कहाँ गया?" "सुनंदा आगे की बात सुनकर तो तुम्हें अपार दुःख

होगा। वह रुपसेन मरकर वहाँ से तुम्हारे गर्भ में उत्पन्न हुआ। जिसे तुमने मार डाला। वहाँ से वह नाग, कौआँ, हंस तथा हिरण बना। जो प्रत्येक भव में तुम्हारे पीछे पागल बना तथा हर बार तुम्हारे पीछे उसने अपना जीवन गँवाया। यह तुम जिसका माँस खा रही हो यह भी रुपसेन का ही जीव है। इतना ही नहीं तुम्हारे पीछे 6-6 भव बर्बाद करने वाला रुपसेन यहाँ से मरकर विन्ध्याचल पर्वत पर हाथी के रुप में उत्पन्न हुआ है।''

इतना सुनते ही सुनंदा की आँखों से आँसू की धार बहने लगी। उसने कहा, '' गुरुदेव! मैं घोर पापिनी हूँ। मेरे निमित्त से ही रुपसेन ने अपने इतने भव बर्बाद किए। मैं रुपसेन की अपराधिनी हूँ। प्रभु मेरी क्या गति होगी? रुपसेन ने तो मात्र मन से पाप किया तो उसकी यह स्थिति हो गई। परंतु मैंने तो मन के साथ-साथ काया से भी घोर कुकार्य किया है। हे नाथ! मेरी क्या दशा होगी? हे कृपालु! अब आप मुझे कोई उपाय बताईए ताकि मेरा कल्याण हो। मुझे दुर्गति में भटकना न पड़े।'' मुनिवर बोले '' सुनंदा, पाप करके पश्चाताप करने वाले विरले ही होते हैं। तुम उन्हीं में से हो। तुम्हें अपने पापों का पश्चाताप हो रहा है यही सबसे बड़ा प्रायश्चित है। पश्चाताप तो भयंकर पापी को भी पावन बनाता है। अब तुम प्रायश्चित पूर्वक संयम ग्रहण कर अपने साथ-साथ रुपसेन का भी उद्धार करों।''

सुनंदा तथा रुपसेन की जीवन कहानी सुनकर राजा को भी वैराग्य आ गया। राजा व रानी दोनों ने संयम जीवन अंगीकार कर लिया। साध्वी सुनंदा अब अपनी गुरुणी प्रवर्तिनी साध्वी के साथ ग्रामानुग्राम विचरने लगी। घोर तप, त्याग, साधना, आराधना तथा निर्मल ब्रह्मचर्य के प्रभाव से अल्प काल में ही उन्हें अवधिज्ञान उत्पन्न हुआ। अपने ज्ञान द्वारा उन्होंने रुपसेन के जीव हाथी को सुग्राम के निकट जंगलों में भटकता पाया। उसे प्रतिबोध देने के लिए सुनंदा साध्वीजी अपनी गुरुणी की आज्ञा लेकर अपनी शिष्याओं के साथ सुग्राम नगर में आई।

एक दिन रुपसेन के जीव हाथी ने नगर में खूब आतंक मचा दिया। अपने रास्ते में आनेवाली हर वस्तु को सूँड से उठाकर दूर फेंककर वह पूरे नगर को तहस-नहस कर रहा था। सभी के मना करने के बावजूद सुनंदा साध्वी उस हाथी की ओर बढ़ी। हाथी ने जब दूर से सुनंदा साध्वी को अपनी ओर आते देखा। तब क्रोधावेश में वह उन्हें मारने के लिए लपका। परंतु जैसे ही वह उनके नज़दीक पहुँचा वैसे ही उनके रुप पर मोहित हो गया। भवोभव के संस्कार इस भव में भी जागृत हो गए। वह सुनंदा के आस-पास घूमने लगा। तब योग्य समय जानकर सुनंदा साध्वी ने कहा '' रुपसेन जागो! मेरे पीछे 6-6 भव बर्बाद कर तुमने अपार दु:ख के सिवाय कुछ भी प्राप्त नहीं किया। और आज तुम वहीं भूल दोहरा रहे हो। हर भव में तुम मेरे पीछे पागल बनते रहे और मैं तुम्हारी मौत का निमित्त बनती रही। इतना सब सहन करने के बाद अब और कितने भव बर्बाद करोंगे? रुपसेन अभी भी समय है। इस प्रकार विषयों में आसक्त बनकर अपनी भव-

भ्रमणा मत बढ़ाओं।''

'रुपसेन' शब्द सुनकर हाथी सोच में पड़ गया। सारी बातें सुनकर वह गहरे चिंतन में डूब गया एवं उसे जातिस्मरण ज्ञान उत्पन्न हुआ। अपने पूर्व भवों को तथा सहन किए गए दु:खों को देखकर वह निश्चेष्ट बनकर भूमि पर बैठ गया। उसकी आँखों से आँसू बहने लगे। वह घोर पश्चाताप करने लगा। उसने सोचा, '' ठीक ही कहा है सुनंदा ने। मोहान्ध बन मैंने अपने अमूल्य मानव भव के साथ-साथ अपनी भवोभव की परम्परा को भी बिगाड़ दिया है। सुनंदा तो भाग्यशाली है जिसने कुकर्म करके भी अपनी आत्मा का उद्धार किया। मैं मूढ़ बनकर अपने 6-6 भव बर्बाद कर चुका हूँ और आज जब मुझे सही ज्ञान की प्राप्ति हुई तो मैं कुछ भी करने में असमर्थ हूँ। मेरा क्या होगा?''

हाथी की मन: स्थिति को जानकर सुनंदा ने उसे आश्वासन देते हुए कहा, ''रुपसेन! चिंता मत करो। अभी भी कुछ नहीं बिगड़ा है। बाज़ी अब भी तुम्हारे हाथ में है। इसे हाथ से मत जाने दो। अब तुम अपना शेष जीवन तप, त्याग, ध्यान, साधना में व्यतीत करों। अपने पशु अवतार को गौण कर भावपूर्वक परमात्मा की शरण स्वीकार करों।'' इस प्रकार आश्वस्त होकर हाथी ने अपनी सूंड से सुनंदा साध्वी को वंदन किया। 'धर्मलाभ' कहकर सुनंदा साध्वीजी वहाँ से चली गई। बाद में वह हाथी भी उसी नगर के राजा की हस्तशाला में रहकर दृढ़ता पूर्वक तप और ब्रह्मचर्य का पालन कर अंत समय में समाधि पूर्वक मर कर आठवें देवलोक में उत्पन्न हुआ। मानव भव हार कर भी पशु भव जीत गया।

यहाँ सुनंदा साध्वी भी पुन: आराधनारत हो गई। अपने भावों के बल पर शुक्ल ध्यान पर आरुढ होकर अपने घनघाति कर्मों को जलाकर केवली पद प्राप्त किया। पृथ्वी तल को पावन कर तथा भव्य जीवों को बोध देकर अंत में अघाति कर्मों का भी क्षय कर मोक्ष स्थान को प्राप्त किया।

विष भी मारता है और विषय भी। फर्क इतना ही है कि विष मात्र एक बार मारता है परंतु विषय भवोभव को बर्बाद करता है। इसके ज्वलंत उदाहरण के रुप में रुपसेन की यह कथा पढ़कर वर्तमान में आधुनिकता तथा भोग विलास में रंगे युवक, युवतियाँ सावधान! रुपसेन तो पुण्यशाली था जो उसे उस काल में त्रिकाल ज्ञानी गुरु का योग प्राप्त हुआ। इतने भटकने के बाद रुपसेन का उद्धार हुआ। परंतु अफेर के मादक वातावरण में फँसे युवक-युवतियों के लिए यह समझने जैसा है कि इस पंचम काल में तुम्हारा इतना पुण्य नहीं है कि तुम्हें ऐसे त्रिकालज्ञानी गुरु का योग प्राप्त हो सके। मात्र दृष्टि से किए गए पाप के कारण रुपसेन और सुनंदा की कहानी का अंत 7 वें भव में आया। परंतु तुम्हारी विषय वासनाओं की भयंकरता का अंत 50-500- 5000 न जाने कितने भवों में आएगा यह विचारणीय है। अत: दूर से ही इन विषय वासनाओं का त्याग कर अपने जीवन को दुर्गति में जाने से बचाए।

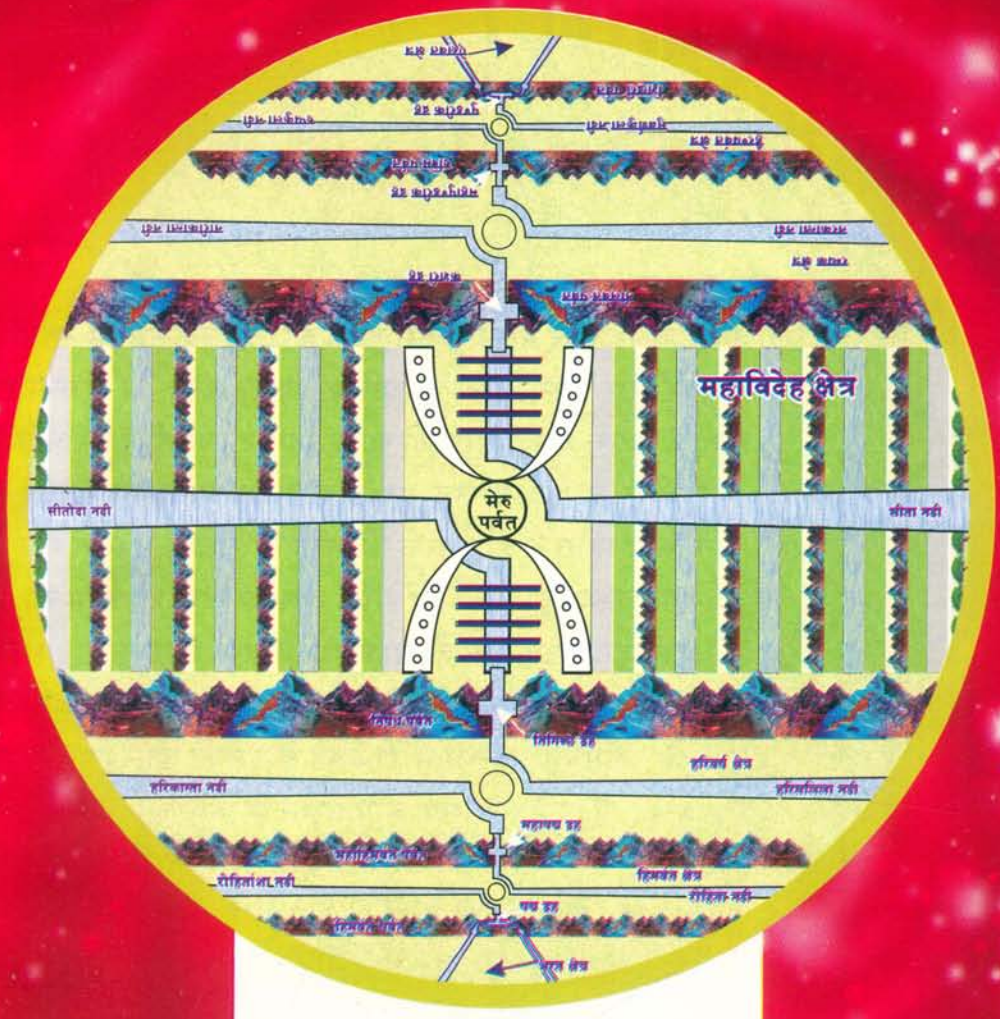
महाविदेह क्षेत्र
मेरु पर्वत
सीतोदा नदी
सीता नदी
हरिवर्ष क्षेत्र
हरिकान्ता नदी
हरिसलिला नदी
महापद्म द्रह
हिमवंत क्षेत्र
रोहितांशा नदी
रोहिता नदी
पद्म द्रह

तत्त्वज्ञान

जहरीला कौन ?

साँप या आप

साँप से प्यार ? ?

यह कैसा प्यार ? साँप की खाल की खातिर असंख्य साँपों को पकड़कर मार डाला जाता है क्योंकि जिन्दा खाल को खेंचना सरल होता है। अत: जिन्दा साँप की खाल उतार ली जाती है। साँप के सिर को कील से पेड़ के तने पर ठोक दिया जाता है। जिन्दा साँप तड़पता रहता है और चाकू की मदद से जीवित अवस्था में उसकी खाल उतार दी जाती है। इसके अलावा कभी तो साँप को जहर विहिन करके उसकी खाल अच्छी तरह निकल जाए इसलिए ब्लेड से पहले उसकी आँख निकाल दी जाती है। फिर जीवित अवस्था में ही ब्लेड से उसकी खाल चिर दी जाती है। यह सब सिर्फ आपके प्रेम के कारण !

सांप की खाल से कोट, पर्स, टोपियाँ, जुते आदि बनाये जाते है।

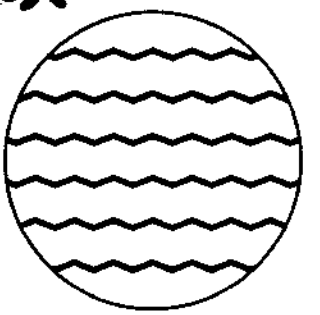

रत्नप्रभा नरक पृथ्वी की सपाटी (छत) पर असंख्य द्वीप-समुद्र हैं। इसके मध्य भाग में जम्बूद्वीप है। जो एक लाख योजन लम्बा-चौड़ा एवं थाली के समान गोल आकार का है। इसके चारों तरफ लवण समुद्र है। जम्बूद्वीप के मध्य में मेरुपर्वत है। यह जम्बूद्वीप 6 कुलधर पर्वतों द्वारा 7 क्षेत्रों में विभक्त है। यानि कि एक क्षेत्र, एक पर्वत, एक क्षेत्र, एक पर्वत इस प्रकार 7 क्षेत्र और 6 पर्वत आए हुए हैं। अब इन सबको हम विस्तार से समझेंगे।

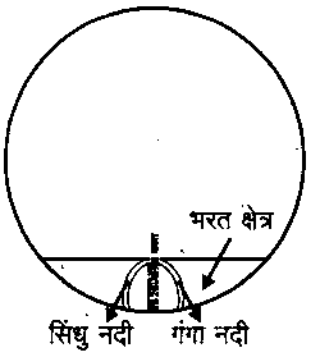

1. भरत क्षेत्र : जम्बूद्वीप के दक्षिण भाग के अंत में सर्व प्रथम भरत क्षेत्र है। इस क्षेत्र की दक्षिण से उत्तर की ओर चौड़ाई 526 योजन एवं 6 कला है, इस क्षेत्र में गंगा-सिंधु ये दो नदियाँ बहती है। ये प्रत्येक नदी 14,000 नदियों के परिवार से युक्त है। इस प्रकार भरत क्षेत्र में कुल 28,000 नदियाँ बहती है। यह कर्मभूमि हैं। यहाँ छः आरे होते हैं।

2. हिमवंत पर्वत : भरत क्षेत्र के बाद हिमवंत पर्वत आया हुआ है। यह पर्वत भरत क्षेत्र से दुगुणा है यानि कि यह पर्वत 1052 योजन एवं 12 कला चौड़ा तथा 100 योजन ऊँचा है। यह सोने का बना हुआ है। इस पर 11 कूट हैं। इसके मध्य में पद्मद्रह है। इस द्रह से तीन नदियाँ निकलती है गंगा, सिंधु और रोहितांशा। गंगा-सिंधु नदी पद्मद्रह से निकलकर भरत क्षेत्र में बहती हैं। और रोहितांशा नदी हिमवंत क्षेत्र के पश्चिम भाग में बहती है। इस द्रह की देवी का नाम 'श्रीदेवी' है।

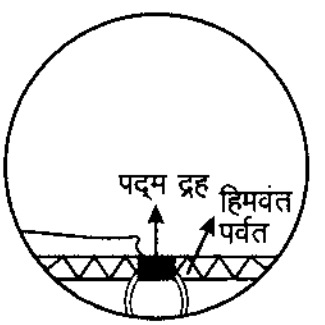

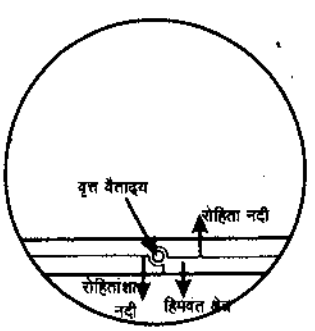

3. हिमवंत क्षेत्र : हिमवंत पर्वत के पास हिमवंत क्षेत्र आया हुआ है। यह क्षेत्र हिमवंत पर्वत से दुगुणा है तथा भरत क्षेत्र से चार गुणा बड़ा है। यानि कि इस क्षेत्र का माप 2105 योजन 5 कला हैं। (19 कला = 1 योजन)। इस क्षेत्र के मध्य भाग में वृत वैताढ्य पर्वत है। इस क्षेत्र में रोहिता एवं रोहितांशा ये दो नदियाँ बहती हैं। रोहिता नदी हिमवंत क्षेत्र के पूर्व भाग को दो भागों में बाँटती हुई पूर्व लवण समुद्र में मिलती है

और रोहितांशा नदी पश्चिम भाग को दो भागों में बाँटती हुई पश्चिम लवण समुद्र में मिलती है। ये प्रत्येक नदियाँ 28,000 नदियों के परिवार से युक्त है। इस प्रकार इस क्षेत्र में कुल 56,000 नदियाँ बहती है। यह अकर्मभूमि है, यहाँ हमेशा तीसरा आरा ही होता है।

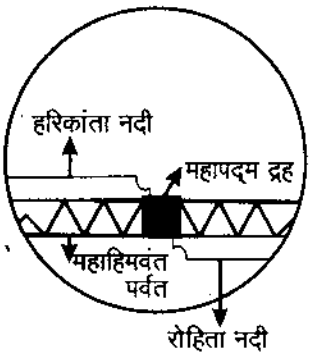

4. महाहिमवंत पर्वत : हिमवंत क्षेत्र के पास महाहिमवंत पर्वत आया हुआ है। यह पर्वत हिमवंत क्षेत्र से दुगुणा है यानि कि यह पर्वत 4210 योजन 10 कला चौड़ा तथा 200 योजन ऊँचा है। यह सोने का बना हुआ है। इस पर 8 कूट हैं। इसके मध्य में महापद्मद्रह हैं। इस द्रह से हरिकान्ता एवं रोहिता ये दो नदियाँ निकलती है। रोहिता नदी हिमवंत क्षेत्र के पूर्व भाग में बहती है और हरिकान्ता नदी हरिवर्ष क्षेत्र के पश्चिम भाग में बहती है। इस द्रह की देवी का नाम 'ह्रीदेवी' है।

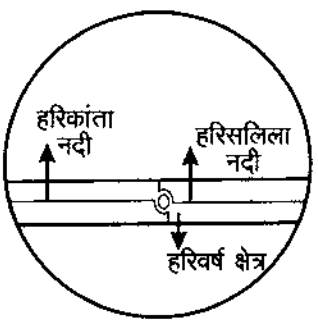

5. हरिवर्ष क्षेत्र : महाहिमवंत पर्वत के पास हरिवर्ष क्षेत्र आया हुआ है। यह क्षेत्र महाहिमवंत पर्वत से दुगुणा है। यानि कि इस क्षेत्र का माप 8421 योजन 1 कला हैं। इस क्षेत्र के मध्य भाग में वृत्त वैताढ्य पर्वत है। इस क्षेत्र में हरिकांता एवं हरिसलिला ये दो नदियाँ बहती हैं। हरिसलिला नदी हरिवर्ष क्षेत्र के पूर्व भाग को दो भागों में बाँटती हुई पूर्व लवण समुद्र में मिलती है और हरिकान्ता नदी पश्चिम भाग को दो भागों में बाँटती हुई पश्चिम लवण समुद्र में मिलती है। ये प्रत्येक नदियाँ 56,000 नदियों के परिवार से युक्त है। इस प्रकार इस क्षेत्र में कुल 1,12,000 नदियाँ बहती है। यह अकर्म भूमि है। यहाँ हमेशा दूसरा आरा होता है।

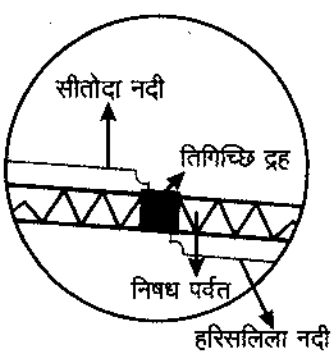

6. निषध पर्वत : हरिवर्ष क्षेत्र के पास निषध पर्वत आया हुआ है। यह पर्वत हरिवर्ष क्षेत्र से दुगुणा है। यानि कि यह 16,842 योजन 2 कला चौड़ा तथा 400 योजन ऊँचा है। यह लाल सोने का बना हुआ है। इस पर 9 कूट है। इसके मध्य में तिगिच्छिद्रह है। इस द्रह से सीतोदा और हरिसलिला ये दो नदियाँ निकलती हैं। हरिसलिला नदी हरिवर्ष क्षेत्र के पूर्व भाग में बहती है और सीतोदा नदी महाविदेह क्षेत्र के पश्चिम भाग में बहती हैं। इस द्रह की देवी का नाम 'धृति देवी' है।

7. महाविदेह क्षेत्र : निषध पर्वत के पास महाविदेह क्षेत्र आया हुआ है। यह क्षेत्र निषध पर्वत से

दुगुणा और भरत क्षेत्र से चौसठ (64) गुणा बड़ा हैं। इस क्षेत्र का माप 33,684 योजन 4 कला है। इसके मध्य में मेरु पर्वत हैं। इस क्षेत्र में सीता एवं सीतोदा ये दो नदियाँ बहती है। सीता नदी महाविदेह क्षेत्र के पूर्व भाग को दो भागों में बाँटती हुई पूर्व लवण समुद्र में मिलती है और सीतोदा नदी पश्चिम भाग को दो भागों में बाँटती हुई पश्चिम लवण समुद्र में मिलती है। महाविदेह क्षेत्र में गजदंत पर्वतों के बीच देवकुरु और उत्तर कुरु आए हुए हैं। इसके अलावा इस क्षेत्र में 32 विजय, 12 अंतर नदियाँ और 16 वक्षस्कार पर्वत भी है। यहाँ बहने वाली सीता-सीतोदा नदी का परिवार इस प्रकार है :-

सीता नदी का परिवार :-

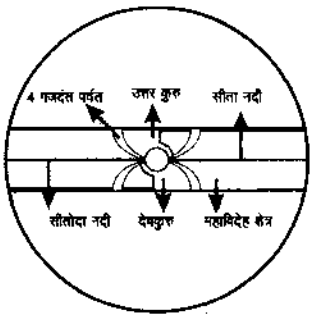

पूर्व की 16 विजय की 32 नदियाँ (गंगा-सिंधु) प्रत्येक नदी

14,000 के परिवार वाली होने से -	32×14,000	= 4,48,000
उसमें कुरुक्षेत्र की 84,000 नदियाँ मिलाने से		= 84,000
कुल नदियाँ		= 5,32,000

इसी प्रकार पश्चिम भाग में बहने वाली सीतोदा नदी का परिवार भी 5,32,000 है। इस प्रकार महाविदेह क्षेत्र में कुल 10,64,000 नदियाँ बहती है। यह कर्मभूमि है। यहाँ हमेशा चौथा आरा होता है। कुरुक्षेत्र अकर्म भूमि है। यहाँ हमेशा पहला आरा होता है।

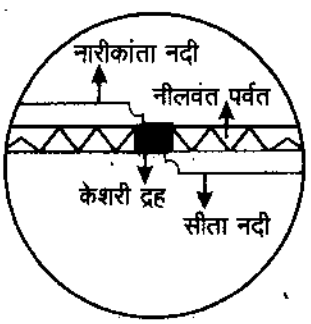

8. नीलवंत पर्वत : महाविदेह क्षेत्र के पास नीलवंत पर्वत आया हुआ है। इस पर्वत का माप महाविदेह क्षेत्र से आधा होने से निषध पर्वत जितना हैं। यानि कि यह पर्वत 16,842 योजन 2 कला चौडा तथा 400 योजन ऊँचा है। यह वैडुर्यरत्न (हरा) से बना हुआ है। इसके मध्य में केशरी द्रह हैं। इस द्रह की देवी का नाम 'कीर्ति देवी' हैं। इस द्रह से सीता और नारीकांता ये दो नदियाँ निकलती है। सीता नदी महाविदेह क्षेत्र के पूर्व भाग में बहती है। और नारीकांता नदी रम्यक् क्षेत्र के पश्चिम भाग में बहती हैं।

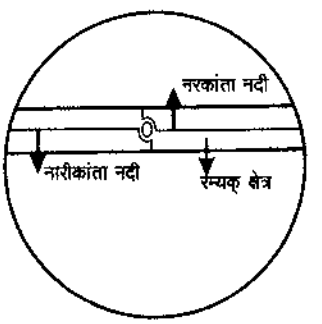

9. रम्यक् क्षेत्र : नीलवंत पर्वत के पास रम्यक् क्षेत्र आया हुआ है। यह क्षेत्र नीलवंत पर्वत से आधा है। यानि कि इस क्षेत्र का माप 8,421 योजन

1 कला हैं। इस क्षेत्र के मध्य में वृत्त वैताढ्य पर्वत है। इस क्षेत्र में नरकांता एवं नारीकांता ये दो नदियाँ बहती हैं। नरकान्ता नदी रम्यक् क्षेत्र के पूर्व भाग को दो भागों में बाँटती हुई पूर्व लवण समुद्र में मिलती है। और नारीकान्ता नदी पश्चिम भाग को दो भागों में बाँटती हुई पश्चिम लवण समुद्र में मिलती है। ये प्रत्येक नदियाँ 56,000 नदियों के परिवार से युक्त हैं। इस प्रकार इस क्षेत्र में कुल 1,12,000 नदियाँ बहती हैं। यह अकर्मभूमि है, यहाँ हमेशा दूसरा आरा होता है।

10. रुक्मि पर्वत : रम्यक् क्षेत्र के पास रुक्मि पर्वत आया हुआ हैं। यह पर्वत रम्यक् क्षेत्र से आधा है। यानि कि यह पर्वत 4,210 योजन 10 कला चौड़ा तथा 200 योजन ऊँचा है। यह पर्वत रुपे का बना हुआ हैं। इसके मध्य में महापुंडरीक द्रह है। इस द्रह से नरकान्ता और रुप्यकुला ये दो नदियाँ निकलती है। नरकान्ता नदी रम्यक् क्षेत्र के पूर्व भाग में बहती है और रुप्यकुला नदी हैरण्यवंत क्षेत्र के पश्चिम भाग में बहती है। इस द्रह की देवी का नाम 'बुद्धि देवी' है।

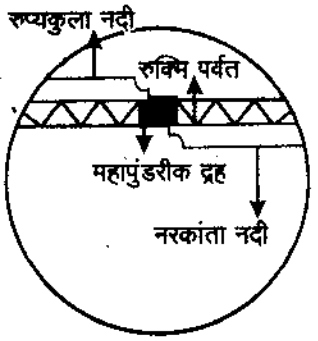

11. हैरण्यवंत क्षेत्र : रुक्मि पर्वत के पास हैरण्यवंत क्षेत्र आया हुआ है। यह क्षेत्र रुक्मि पर्वत से आधा है। यानि कि इस क्षेत्र का माप 2105 योजन 5 कला हैं। इस क्षेत्र के मध्य भाग में वृत्त वैताढ्य पर्वत है। इस क्षेत्र में सुवर्णकुला और रुप्यकुला ये दो नदियाँ बहती हैं। सुवर्णकुला नदी हैरण्यवंत क्षेत्र के पूर्व भाग को दो भागों में बाँटती हुई पूर्व लवण समुद्र में मिलती है और रुप्यकुला नदी पश्चिम भाग को दो भागों में बाँटती हुई पश्चिम लवण समुद्र में मिलती हैं। ये प्रत्येक नदियाँ 28,000 नदियों के परिवार से युक्त हैं। इस प्रकार इस क्षेत्र में कुल 56,000 नदियाँ बहती है। यह अकर्म भूमि है, यहाँ हमेशा तीसरा आरा होता है।

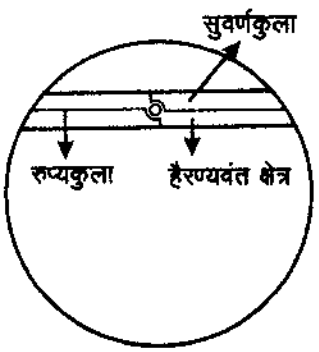

12. शिखरी पर्वत : हैरण्यवंत क्षेत्र के पास शिखरी पर्वत आया हुआ है। यह पर्वत हैरण्यवंत क्षेत्र से आधा है यानि कि इसका माप 1,052 योजन 12 कला चौड़ा तथा 100 योजन ऊँचा है। यह सोने का बना हैं। इसके मध्य में पुण्डरिक द्रह हैं। इस द्रह से तीन नदियाँ निकलती हैं। रक्ता-रक्तवती और सुवर्णकुला नदी। सुवर्णकुला नदी हैरण्यवंत क्षेत्र के पश्चिम भाग में बहती है और रक्ता-रक्तवती नदियाँ

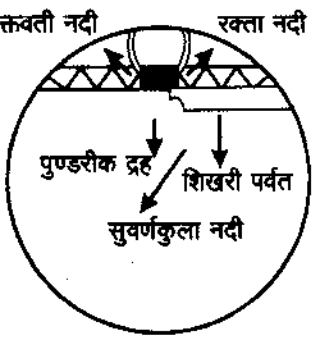

ऐरावत क्षेत्र में बहती हैं। इस द्रह की देवी का नाम 'लक्ष्मी देवी' हैं।

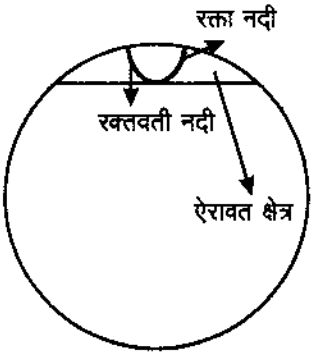

13 ऐरावत क्षेत्र : शिखरी पर्वत के पास और जम्बूद्वीप के उत्तर भाग में सर्वप्रथम ऐरावत क्षेत्र हैं। यह क्षेत्र शिखरी पर्वत से आधा यानि कि इसका माप 526 योजन 6 कला हैं। यह क्षेत्र भरत क्षेत्र के समान हैं। इस क्षेत्र में रक्ता-रक्तवती ये दो नदियाँ बहती हैं। प्रत्येक नदी 14,000 नदियों के परिवार से युक्त हैं। इस प्रकार इस क्षेत्र में कुल 28,000 नदियाँ बहती है। यह कर्मभूमि है। यहाँ छः आरे होते हैं।

इन क्षेत्र एवं पर्वतों को हम निम्न चार्ट द्वारा आसानी से समझ सकते है।

क्षेत्र या पर्वत का नाम	माप योजन-कला	खण्ड	बहने वाली नदी अथवा द्रह के नाम	द्रह की देवी	नदियों का परिवार तथा पर्वत का वर्ण एवं ऊँचाई	कुल
भरत क्षेत्र	526.6	1	गंगा-सिंधु	-	14,000 × 2 =	28,000
हिमवंत पर्वत	1052.12	2	पद्मद्रह	श्रीदेवी	सोने का/100 योजन ऊँचा	
हिमवंत क्षेत्र	2105.5	4	रोहिता-रोहितांशा	-	28,000 × 2 =	56,000
महाहिमवंत प.	4210.1	8	महापद्म द्रह	ह्री देवी	सोने का/200 योजन ऊँचा	
हरिवर्ष क्षेत्र	8421.1	16	हरिसलिला-हरिकांता	-	56,000 × 2 =	1,12,000
निषध पर्वत	16842.2	32	तिगिच्छि द्रह	धृति देवी	लाल सोने का/400 योजन ऊँचा	
महाविदेह क्षेत्र	33684.4	64	सीता-सीतोदा	-	5,32,000 × 2 =	10,64,000
नीलवंत पर्वत	16842.2	32	केशरी द्रह	कीर्ति देवी	वैडुर्यरत्न (हरा)/400 योजन ऊँचा	
रम्यक् क्षेत्र	8421.1	16	नरकांता-नारीकांता	-	56,000 × 2 =	1,12,000
रुक्मि पर्वत	4210.1	8	महापुंडरीक द्रह	बुद्धि देवी	रुपा का/200 योजन ऊँचा	
हैरण्यवंत क्षेत्र	2105.5	4	सुवर्णकुला-रुप्यकुला	-	28,000 × 2 =	56,000
शिखरी पर्वत	1052.12	2	पुण्डरीक द्रह	लक्ष्मी देवी	सोने का/100 योजन ऊँचा	
ऐरावत क्षेत्र	526.6	1	रक्ता-रक्तवती	-	14,000 × 2 =	28,000
कुल	1,00,000यो	190				14,56,000

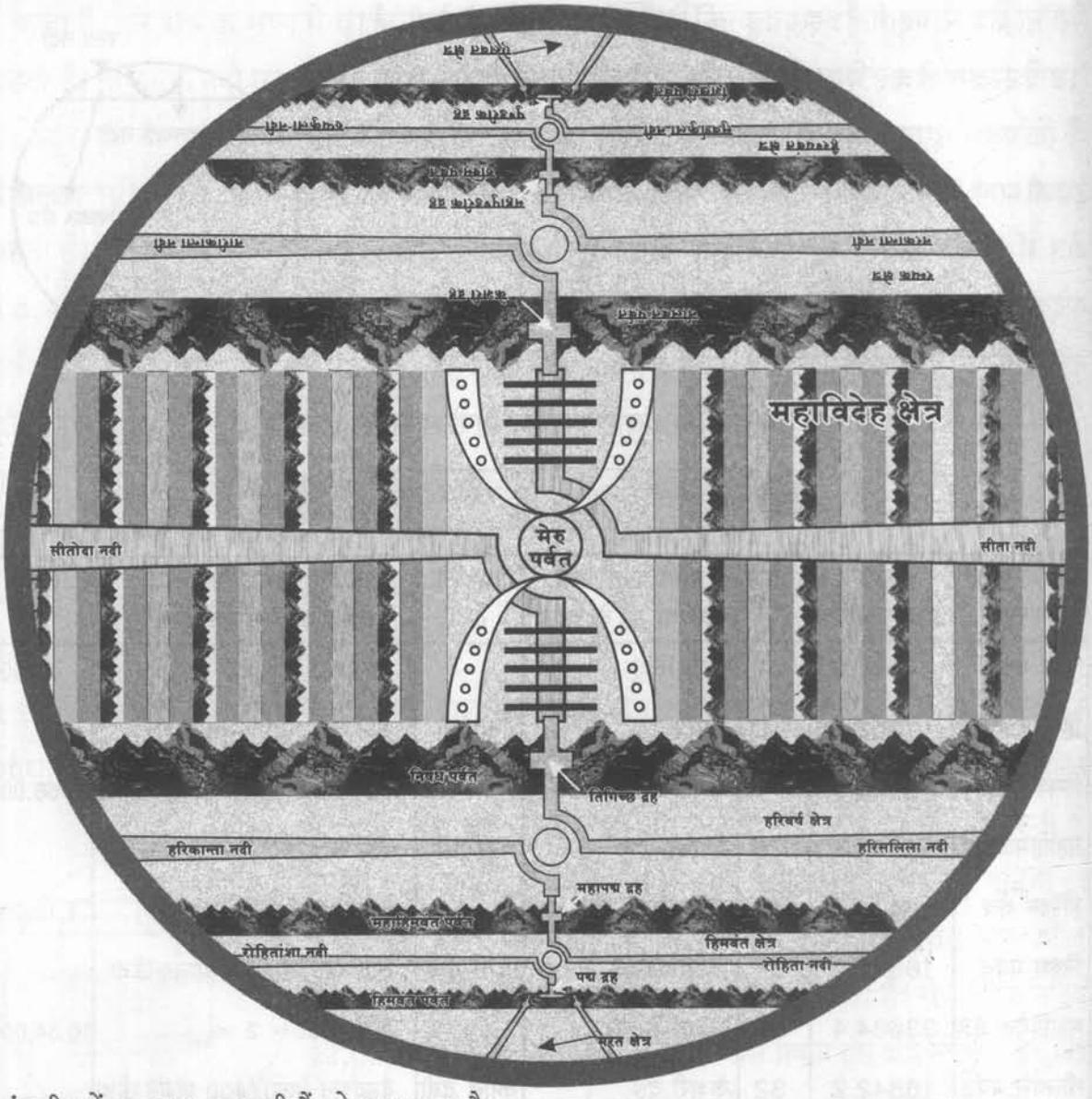

जंबूद्वीप में कुल 90 महानदी हैं। वे इस प्रकार है :-

प्रत्येक क्षेत्र की 2 महानदी है। अत:	7× 2	= 14
महाविदेह की अंतर नदी		= 12
32 विजय की (प्रत्येक विजय की 2) गंगा-सिंधु नदी	32×2	= 64
	कुल	= 90 महानदी कही जाती है।

कर्मभूमि = जहाँ असि (शस्त्र), मसि (व्यापार), कृषि (खेतीबाडी) आदि व्यवहार चलते हो, उसे कर्मभूमि कहते हैं। तीर्थंकर आदि 63 शलाका पुरुषों का जन्म कर्मभूमि में ही होता है। भरत, ऐरावत

एवं महाविदेह ये तीन क्षेत्र कर्मभूमि है।

अकर्मभूमि = यहाँ युगलिक का जन्म होता है। यहाँ असि, मसि, कृषि आदि कुछ नहीं होते। धर्म भी नहीं होता। कल्पवृक्ष यहाँ के लोगों की इच्छा पूरी करते हैं। ये जीव अल्प कषाय वाले एवं मरकर देवलोक में जाने वाले होते हैं। (विशेष वर्णन कालचक्र में बताया जाएगा।)

सात क्षेत्रों में से हिमवंत, हरिवर्ष, रम्यक, हैरण्यवंत ये 4 क्षेत्र तथा देवकुरु और उतरकुरु को मिलाने पर कुल 6 अकर्मभूमियाँ है।

नदियों के उत्पत्ति स्थान एवं निपात कुण्ड-

छः कुलधर पर्वत के मध्यभाग में छः द्रह है। इसमें से नदियाँ निकलकर शिखर के अग्र भाग पर मगरमच्छ के मुख के समान आकार वाली वज्ररत्न की बनी जीभ रुप परनाले में से अपने (नदी के) नाम वाले वज्ररत्नमय निपात कुण्ड में गिरती हैं। उस समय पानी का प्रवाह रत्नों की प्रभा से मिश्रित होने के कारण मोती के हार के समान अतिरमणीय लगता है। कुण्ड में से ये नदियाँ अपने-अपने क्षेत्र में बहकर पूर्व-पश्चिम लवण समुद्र में मिल जाती है। कुल नदियाँ 90 होने से इनके निपात कुण्ड भी 90 है। महाविदेह की विजयों में बहती गंगा-सिंधु एवं रक्ता-रक्तवती नदियाँ एवं 12 अंतर नदियाँ पर्वत से नहीं निकलती हैं। परन्तु पर्वत की तलेटी में उस विजयादि में आये हुए कुंड में से ही निकलती हैं। इसलिए इन नदियों के मगरमच्छ के मुख समान परनाले नहीं होते। ये परनाले 7 क्षेत्रों की 14 महानदियों के ही होते हैं।

भरत क्षेत्र के छः खण्ड

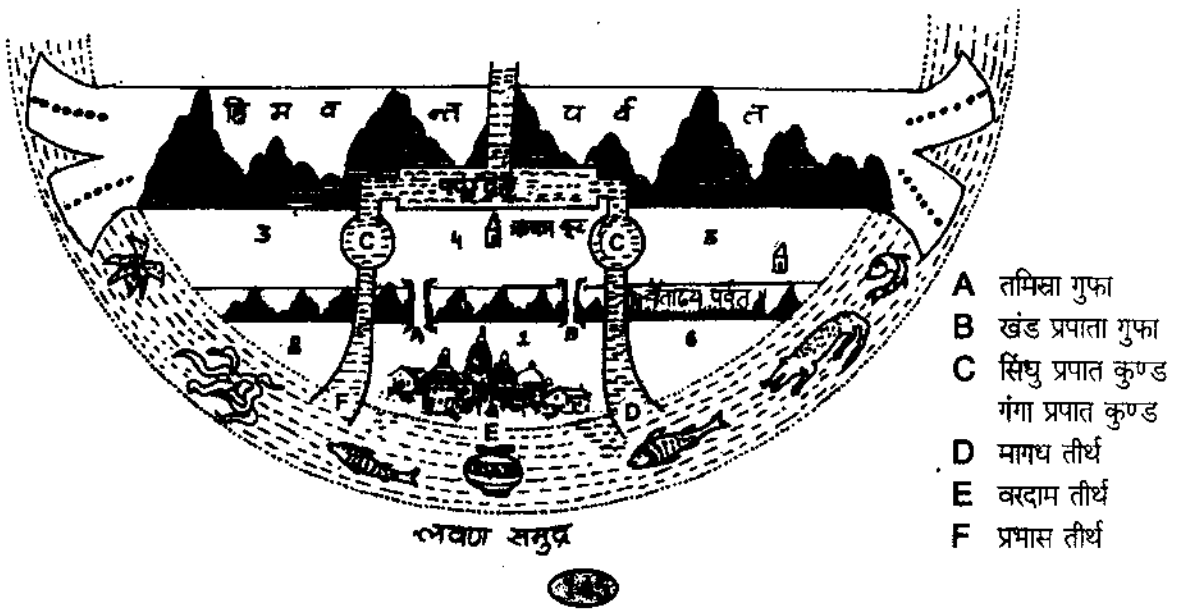

भरत क्षेत्र के बराबर मध्य भाग में पूर्व-पश्चिम लम्बा एवं 50 योजन चौडा वैताढ्य पर्वत है। जिससे भरतक्षेत्र उत्तरार्ध एवं दक्षिणार्ध इन दो भागों में बँट जाता है। हिमवंत पर्वत में से आने वाली गंगा-सिंधु इन दो नदियों के कारण इसके 6 खण्ड बन जाते हैं। दक्षिणार्ध के मध्य खण्ड अर्थात् प्रथम खण्ड में तीर्थंकर, चक्रवर्ती, बलदेव, वासुदेव आदि 63 शलाका पुरुषों का जन्म होता है। भरत क्षेत्र में कुल 32,000 देश है। उसमें 25½ (साढ़ा पच्चीस) देश आर्य अर्थात् धर्म करने योग्य क्षेत्र हैं। शेष सभी देश अनार्य है। अनार्य देश में बिल्कुल धर्म नहीं होता।

चक्रवर्ती के चौदह रत्न एवं उसके कार्य-

चक्रवर्ती के 14 रत्नों में से 7 रत्न पृथ्वीकाय (एकेन्द्रिय) के है एवं 7 रत्न पंचेन्द्रिय है।

(1) **चक्ररत्न** – अन्य गौत्र वाले वैरी का मस्तक छेदता है।

(2) **छत्ररत्न** – चक्रवर्ती के हस्त स्पर्श से 12 योजन विस्तृत बनता है एवं जब म्लेच्छों के देव बारीश बरसाते हैं। तब सारे सैन्य का रक्षण करता है।

(3) **दण्डरत्न** – भूमि का समीकरण करने एवं 1000 योजन तक खोदने में काम आता हैं।

उदाहरण : सगर चक्री के 60 हजार पुत्र अष्टापद तीर्थ की रक्षा के लिए दंडरत्न से खाई खोदकर उसमें पानी भरने के लिए दण्ड रत्न से पानी वहाँ तक ले आते हैं। पानी भरने पर कीचड़ नाग कुमारों के आवास (वास्तविक नहीं लेकिन क्रीडा स्थल हो सकते हैं) में गिरने लगा। उससे कोपायमान हुए नाग कुमारों ने एक साथ सगर चक्री के 60 हजार पुत्रों को मार डाला।

(4) **चर्मरत्न** – चक्रवर्ती के हस्त स्पर्श से 12 योजन विस्तार पाता है। इस पर सुबह बोया हुआ धान्य शाम तक रसोई बनाने योग्य तैयार हो जाता है। तथा यह नदियों एवं समुद्रों का उल्लघंन करने में भी काम आता है।

(5) **खड्गरत्न** – यह तलवार युद्ध में काम आती है।

(6) **काकीणीरत्न** – वैताढ्य पर्वत की गुफा में एक-एक भींत पर 49-49 मांडला करने में काम आता है एवं जब तक चक्री का शासन रहता है तब तक ये मांडले सूर्यसम प्रकाश करते हैं।

(7) **मणिरत्न** – नीचे चर्मरत्न 12 योजन तक बिछाया हो एवं ऊपर छत्ररत्न 12 योजन तक फैलाया हो उस समय छत्र की दण्डी पर इस रत्न को बांधने पर सर्वत्र प्रकाश फैलता है एवं हाथ अथवा मस्तक पर बांधने से शरीर के सर्व रोग नाश होते हैं।

(8) **पुरोहितरत्न** – शांतिकर्म करता है।

(9) **गजरत्न** (10) **अश्वरत्न** – दोनों महापराक्रमी होते हैं।

(11) **सेनापतिरत्न** – गंगा-सिंधु के किनारे 4 खण्ड जीतता है।

(12) **गृहपतिरत्न** – घर के रसोई आदि काम करता है।

(13) **वर्धकी (सुथार) रत्न** – घर बनाता है तथा वैताढ्य पर्वत की गुफा में उमग्ना एवं निमग्ना नदी पर पुल बांधता है।

(14) **स्त्रीरत्न** – अत्यंत अद्भुत रुपवती स्त्री चक्रवर्ती के भोगने योग्य होती है। (नोट : सुंदरी -यह भरत की स्त्री रत्न नहीं थी। भरतचक्री का स्त्री रत्न नमि-विनमी की बहन सुभद्रा थी। स्त्रीरत्न मरकर अवश्य छट्ठी नरक में जाती हैं। सुंदरी तो मोक्ष में गई है।)

14 रत्नों में से चक्र, छत्र, दण्ड एवं खड्ग ये 4 रत्न आयुधशाला में उत्पन्न होते हैं। चर्म, मणि एवं काकीणी रत्न राजभण्डार में उत्पन्न होते हैं। सेनापति, गृहपति, पुरोहित एवं सुथार ये रत्न राजधानी में उत्पन्न होते हैं। स्त्रीरत्न राजकुल में उत्पन्न होता है। हस्ती एवं अश्वरत्न वैताढ्य पर्वत के पास उत्पन्न होते हैं।

चक्रवर्ती की षट्खण्ड साधना –

उत्कट पुण्य के योग से जीव चक्रवर्ती की पदवी प्राप्त करता है। योग्य काल में चक्ररत्न की उत्पत्ति के बाद चक्रवर्ती दिग्विजय के लिए जाते हैं। तब प्रथम खण्ड से चौथे खण्ड में जाने के लिए वैताढ्य पर्वत की 50 योजन लम्बी तमिस्रा नामक गुफा का द्वार दण्ड रत्न से खोलते हैं। हाथी के मस्तक पर मणिरत्न होने से गुफा प्रकाशित बनती है। गुफा की दीवार पर चक्रवर्ती काकीणी रत्न से मंडल का आलेखन 1-1 योजन की दूरी पर करते हैं। इस मंडल का प्रकाश 1 योजन तक फैलता हैं। जिससे ये गुफाएँ चक्रवर्ती के काल में सदा सूर्य के समान प्रकाशित रहती है। वहाँ से चौथे (4) खण्ड में जाकर चक्रवर्ती म्लेच्छों के साथ भयंकर युद्ध में विजय प्राप्त करते हैं। गंगा-सिंधु नदी के दूसरे किनारे पर रहे 2,3,5,6 खण्ड को चक्रवर्ती के आदेश से सेनापति जीतकर आते हैं। इस प्रकार छः खण्ड जीतकर चौथे (4) खण्ड में रहे हुए रत्नमय ऋषभ कूट पर चक्रवर्ती अपना नाम लिखने जाते हैं। परन्तु ऋषभ कूट पर नाम लिखने की जगह न होने से दूसरों का नाम मिटाकर अपना नाम लिखते हैं। भरत चक्री को उस समय अतिशय दुःख हुआ कि भविष्य में बनने वाले चक्रवर्ती मेरा भी नाम मिटा देंगे अतः उनकी आँखों में पानी आ गया। नाम लिखकर खण्डप्रपाता नामक वैताढ्य पर्वत की दूसरी गुफा से पुनः मध्य खण्ड में आते हैं। इस गुफा में भी मंडल का आलेखन करते हैं। मध्य खण्ड को जीतते-जीतते जब गंगा एवं लवण समुद्र के संगम स्थान रुप मागध तीर्थ पर आते हैं। उस समय चक्रवर्ती के पुण्य से आकर्षित नव-निधान पाताल मार्ग से होकर चक्रवर्ती की राजधानी में आते हैं।

चक्रवर्ती के 14 रत्न, नव निधान एवं अट्ठम तप द्वारा आराधित देव आदि सतत सेवा में हाजिर रहते हैं। चक्री के शासन काल तक तमिस्रा एवं खण्ड प्रपाता गुफाओं के द्वार खुले रहते हैं। जब चक्रवर्ती दीक्षा लेते हैं या मृत्यु प्राप्त करते हैं। तब पुन: निधियाँ आदि स्व-स्थान में चली जाती हैं।

चक्रवर्ती की ऋद्धि : चक्रवर्ती के पास 14 रत्न होते हैं। प्रत्येक रत्न पर 1-1 हजार देवता अधिष्ठित होते हैं एवं दोनों भुजाएँ 2000 देवों से अधिष्ठित होती है। कुल 16,000 देव हमेशा सेवा में हाजिर होते हैं। 32,000 मुकुटबद्ध राजा, 64,000 स्त्रियाँ, 9 निधियाँ, 72,000 श्रेष्ठनगर, 84 लाख हाथी, 84 लाख घोड़े एवं 84 लाख रथ, 96 क्रोड़ ग्राम एवं 6 खण्ड के ये मालिक होते हैं।

नव निधियों में विविध शास्त्र एवं चक्री के भोगने योग्य आभरण आदि सर्व श्रेष्ठ वस्तुएँ होती हैं। इतनी ऋद्धि वाले चक्रवर्ती यदि संसार का त्याग करे तो मोक्ष या वैमानिक देवलोक में जाते हैं। अन्यथा यह ऋद्धि उनको नरकगामी बनाती है। इस चौवीसी में 8 चक्रवर्ती मोक्ष में गये, 2 चक्रवर्ती सनत्कुमार एवं मघवा तीसरे देवलोक में गए तथा सुभूम एवं ब्रह्मदत्त ये दो चक्रवर्ती सातवीं नरक में गए।

चक्री के सैन्य जब पड़ाव डालते हैं तब आत्मांगुल से 12 योजन जगह रोकते हैं। चक्रवर्ती की सेना के लिए रोज वहाँ हमेशा 10 लाख मण नमक एवं 4 क्रोड मण अनाज पकता है। दस-दस हजार गाय वाले कुल 1 क्रोड गोकुल होते हैं।

महाविदेह क्षेत्र

महाविदेह क्षेत्र के मुख्य पदार्थ : मेरु पर्वत, देव-कुरु, उत्तर-कुरु, भद्रशाल वन, 16 वक्षस्कार, 12 अंतर्नदी, 32 विजय, 4 गजदंत पर्वत। प्रत्येक विजय में भरत क्षेत्र के समान छ: खण्ड, वैताढ्य पर्वत एवं गंगा-सिंधु या रक्ता-रक्तवती नदी से विभाजित है।

महाविदेह क्षेत्र के मध्य में मेरु पर्वत है। निषध पर्वत के पास से दो गजदंत पर्वत निकलकर मेरु को स्पर्श करते हैं। इन दो पर्वतों के बीच का क्षेत्र देवकुरु है एवं नीलवंत पर्वत के पास से दो

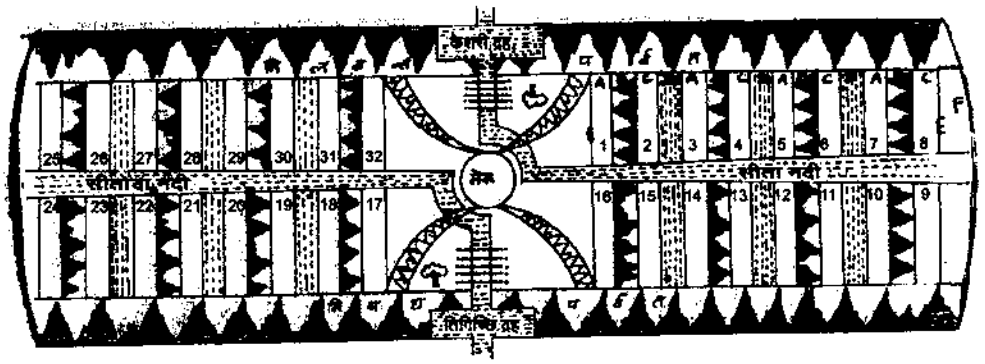

गजदंत पर्वत निकलकर मेरु को स्पर्श करते हैं। इनके बीच का क्षेत्र उत्तरकुरु है। इन दोनों कुरुक्षेत्रों में 5-5 विशाल द्रह है। सीता-सीतोदा नदी के कारण ये द्रह एवं कुरुक्षेत्र दो भागों में विभाजित हो जाते है। 5 द्रहों के दोनों तरफ 10-10 कंचनगिरि (सोने के बने हुए) पर्वत है। दोनों कुरुक्षेत्रों के मिलाकर कुल दो सौ कंचनगिरि है। देवकुरु में चित्र-विचित्र पर्वत एवं पश्चिम में 116 वृक्षों से घिरा हुआ एवं सुंदर देवभवनों एवं प्रासादों से युक्त विशाल तथा पृथ्वीकायमय शाल्मली वृक्ष है। उसी प्रकार उत्तर कुरु क्षेत्र में यमक-समक पर्वत एवं शाल्मली वृक्ष के समान जम्बू नाम का वृक्ष पूर्वार्ध में है। इस वृक्ष पर जम्बू द्वीप के अधिपति अनादृत देव के भवनादि है। इन जम्बू वृक्षों के कारण इस द्वीप का नाम जम्बूद्वीप है।

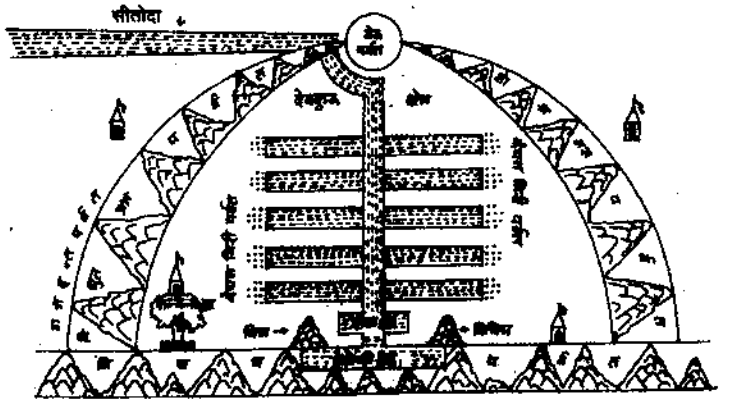

मेरु पर्वत के चारों तरफ गजदंत पर्वत तक भद्रशाल वन है। इस वन की आठ दिशाओं में 8 करिकूट है। वन के अंत में चारों तरफ वेदिका है। उसके बाद विजयों की शुरुआत होती है। केशरी द्रह में से निकलने वाली सीता नदी उत्तर कुरु के मध्य में होकर मेरु पर्वत के पास से मोड़ लेकर पूर्व महाविदेह को दो भागों में बाँटती हुई पूर्व लवण समुद्र में मिलती है। इसी प्रकार सीतोदा नदी तिगिच्छिद्रह में से निकलकर देव कुरु के मध्य में से बहती हुई पश्चिम महाविदेह को दो भागों में बाँटती हुई पश्चिम लवण समुद्र में मिलती है। कुरु क्षेत्रों में से निकलते समय कुरुक्षेत्रों की 84,000-84,000 नदियाँ दोनों नदियों में मिलती हैं।

चित्र नं. 1 के अनुसार पूर्व महाविदेह के उत्तरार्ध में 8 विजय उत्तर-दक्षिण लम्बी है। इसके उत्तर में नीलवंत पर्वत एवं दक्षिण में सीता नदी है। इन 8 विजयों के बीच में 4 वक्षस्कार एवं 3 अन्तर्नदियाँ हैं। अर्थात् 1 विजय 1 पर्वत, 1विजय, 1नदी, 1विजय, 1पर्वत, 1विजय, 1नदी इस क्रम से 8 विजयों के 7 आंतरे में 4 पर्वत एवं 3 नदियाँ है। 8 वीं पुष्कलावती विजय में सीमंधर प्रभु विचर रहे हैं। 8 वीं विजय के बाद जगति एवं वन प्रमुख है।

इसी प्रकार पूर्व महाविदेह के दक्षिणार्ध में निषध एवं सीता नदी के बीच 9 से 16 तक की 8 विजय, 4 वक्षस्कार एवं 3 अन्तर्नदियाँ हैं। 9वीं विजय में युगमंधर परमात्मा विचर रहे हैं।

इसी प्रकार पश्चिम महाविदेह के दक्षिणार्ध में 17 से 24 तक की 8 विजय के बीच में 4 वक्षस्कार पर्वत एवं 3 अन्तर्नदियाँ है एवं उत्तरार्ध में 25 से 32 तक की 8 विजय के बीच में 4 वक्षस्कार पर्वत एवं 3 अन्तर्नदियाँ है। इनमें 24 वीं एवं 25 वीं विजय में बाहु-सुबाहु परमात्मा विचर रहे हैं।

इस प्रकार कुल मिलाकर 32 विजय, 16 वक्षस्कार एवं 12 अंतर्नदियाँ हुई। इन विजयों के छः खण्ड भरत क्षेत्र के समान समझने चाहिए। अंतर इतना ही है कि 1 से 8 (पूर्व महाविदेह के उत्तर की आठ विजय) एवं 17 से 24 (पश्चिम महाविदेह के दक्षिण की 8 विजय) में गंगा-सिंधु नाम की नदियाँ बहती है और बाकि विजय यानि 9 से 16 एवं 25 से 32 तक की विजयों में रक्ता-रक्तवती नदियाँ बहती है एवं भरत क्षेत्र की तरह ये नदियाँ प्रत्येक विजय को 6 भाग में बाँटती हैं।

महाविदेह की प्रत्येक विजय का स्पष्टीकरण -

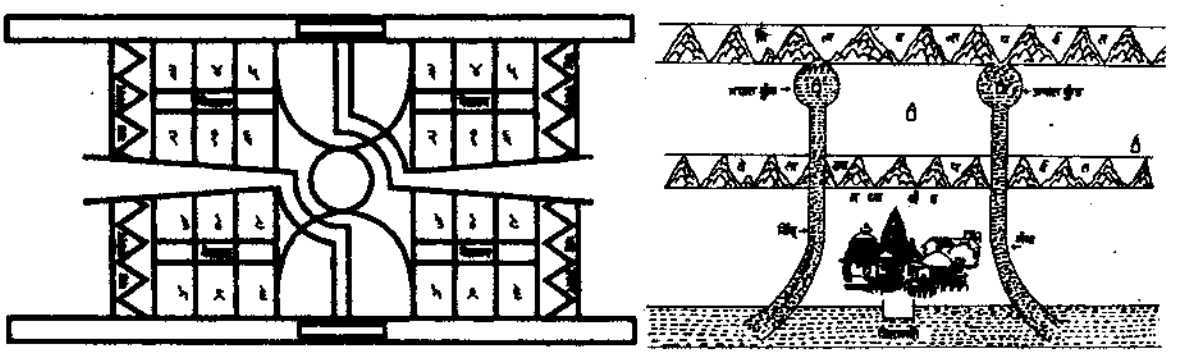

विजय में बहने वाली गंगा-सिंधु एवं रक्ता-रक्तावती नदियाँ यथा योग्य निषध अथवा नीलवंत पर्वत की तलेटी में रहे हुए कुंड में से निकलती है एवं सीता-सीतोदा में मिलती है।

यहाँ चित्र में चारों तरफ की एक-एक विजय के खण्ड एवं नदियाँ बताने में आयी है। इसी प्रकार अन्य विजयों के लिए समझ लेना। आगे भी धातकी खण्ड एवं पुष्करार्ध की विजयों के लिए इसी प्रकार समझना। यहाँ खास ध्यान में रखना चाहिए कि महाविदेह की प्रत्येक विजय भरत क्षेत्र से बहुत बडी है। लगभग 31 गुणा बडी है। क्योंकि भरतक्षेत्र जितने 64 खण्ड महाविदेह में है। इसमें से आधे खण्ड यानि 32 खण्ड एक विजय को मिलते हैं। एवं सीता या सीतोदा नदी मानो कि 1 खण्ड रोके तो भी भरत क्षेत्र जितने 31 खण्ड एक विजय में समा जाते हैं।

तीर्थ : भरतक्षेत्र में गंगा-सिंधु दो नदियाँ हैं। इन नदियों के लवण समुद्र के साथ संगम स्थान को तीर्थ कहते हैं। गंगा का संगम स्थान मागध तीर्थ एवं सिंधु का संगम स्थान प्रभास तीर्थ है। दोनों के बीच में वरदाम नामक तीर्थ है। भरतक्षेत्र की तरह ऐरावत एवं बत्तीस विजयों में भी तीन-तीन तीर्थ होने से जबूंद्वीप में कुल 34×3=102 तीर्थ हैं।

छप्पन अन्तर्द्वीप का स्वरुप:-

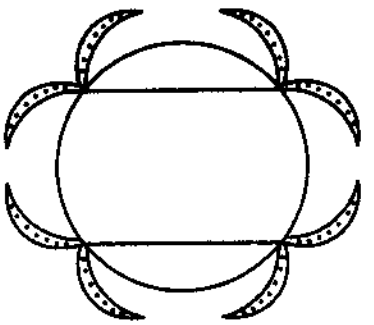

लघु हिमवंत एवं शिखरी पर्वत के पूर्व एवं पश्चिम किनारे से 2-2 दाढ़ाएँ लवण समुद्र की तरफ निकलती है। इस प्रकार कुल 8 दाढ़ाएँ हैं। 1-1 दाढ़ा में 7-7 द्वीप होने से 8 × 7 = 56 अंतर्द्वीप कहलाते है। इन द्वीपों में असंख्यात वर्ष के आयुष्य वाले युगलिक रहते हैं। समुद्र के अंदर होने से ये द्वीप अंतर्द्वीप कहलाते हैं।

विद्याधर राजाओं के स्थान तथा आभियोगिक देवों के स्थान :-

भरत-ऐरावत एवं 32 विजयों के मिलाकर कुल 34 दीर्घ वैताढ्य है। ये 50 योजन चौड़े एवं 25 योजन ऊँचे चाँदी के बने हुए है। नीचे से 10 योजन ऊपर जाने पर दोनों तरफ 10-10 योजन सपाट भूमि है। उसमें उत्तर श्रेणी एवं दक्षिण श्रेणी के नगरों में विद्याधर राजा राज्य करते हैं। आगे और 10 योजन जाने पर वहाँ भी 10-10 योजन की सपाट भूमि है। यह दूसरी मेखला है। यहाँ आभियोगिक देव रहते हैं। इनकी भी उत्तर-दक्षिण दिशा में दो श्रेणियाँ हैं।

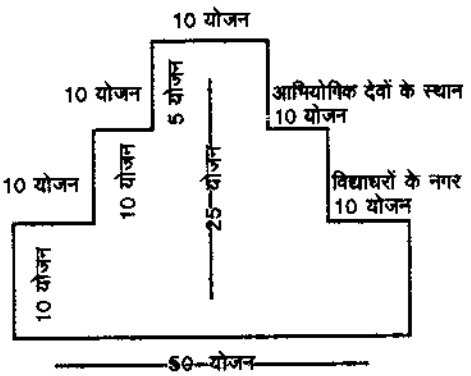

इस प्रकार प्रत्येक वैताढ्य पर 2 विद्याधर की एवं 2 अभियोगिक देवों की कुल 4 श्रेणियाँ है। अत: पूरे जंबूद्वीप में महाविदेह की 32 एवं भरत तथा ऐरावत क्षेत्र की मिलाकर कुल 34×4=136 श्रेणियाँ है।

चुने हुए मोती

जो स्वयं के पुण्य से भी अधिक अपेक्षा रखें उसे असमाधि हुए बिना नहीं रहती। जो स्वयं के पुण्य से अधिक न इच्छे वह समाधि में जीते है। और जो स्वयं के पुण्य में जितना है उसकी भी अपेक्षा न रखें वे परम समाधि में मग्न होते है।

शाश्वत चैत्य का स्वरुप :-

सभी शाश्वत मंदिर रत्न, सुवर्ण एवं मणियों के बने हुए है। ये मंदिर कम से कम 4 कि.मी. लम्बे है। इन मंदिरों के पूर्व-उत्तर एवं दक्षिण इन तीन दिशाओं में बड़े-बड़े दरवाज़े होते हैं। मंदिर के मध्य में पाँच सौ धनुष विस्तृत मणिमय पीठिका है। उस पर 500 धनुष लम्बा चौड़ा देवछंदक है। उस पर चारों दिशाओं में 27-27 प्रतिमाजी मिलकर कुल 108 प्रतिमाजी हैं तथा तीन दरवाज़े में 1-1 चौमुखजी होने से 3×4 = 12 प्रतिमाजी हैं। कुल एक चैत्य में 108+12 = 120 प्रतिमाजी है। ये सारी प्रतिमाजी उत्सेधांगुल से 500 धनुष की है।

प्रतिमाजी का वर्णन :-

इन मूर्तियों के नख अंक (सफेद रत्न) एवं लाल रत्न की छाँट वाले हैं। हाथ-पैर के तलिये, नाभि, जिव्हा, श्रीवत्स, स्तनाग्र एवं तालु तप्त (लाल) सुवर्णमय हैं। दाढ़ी एवं मूँछ के बाल रिष्ट (काले) रत्नों के हैं। होठ विद्रुम (लाल) रत्नों के हैं एवं नासिका लालरत्नों से युक्त सुवर्णमय है। भगवान के चक्षु लालरत्नों की छांट वाले अंक रत्नों के हैं। कीकी, आँख की पापण, केश एवं भ्रमर रिष्टरत्नमय है। शीर्षघटिका वज्रमय हैं तथा शेष अंग सुवर्णमय हैं।

प्रत्येक प्रतिमाजी के पीछे 1-1 छत्रधारिणी, दोनों तरफ पास में दो-दो चामर धारिणी एवं सन्मुख विनय से झुकी हुई 2 यक्ष की प्रतिमा, चरण स्पर्श करती हुई 2 भूत की प्रतिमा एवं हाथ जोड़ी हुई दो कुंडधारी प्रतिमाएँ हैं। प्रत्येक बिम्ब के सामने एक घंटा, एक धूपधानी, चंदन का कलश, झारी, दर्पण, थाल, छत्र, चामर तथा ध्वजा आदि वस्तुएँ रहती है। इस प्रकार ये शाश्वत मंदिर अति अद्भुत है।

जम्बूद्वीप में 635 शाश्वत मंदिर इस प्रकार है

(1) भरत क्षेत्र - इसके मध्य में वैताढ्य पर्वत है। इसके 9 (नव) शिखर है

पूर्व तरफ के प्रथम शिखर पर	- 1	शाश्वत चैत्य
तथा गंगा-सिंधु इन 2 नदी के प्रपात कुण्ड में	- 2	शाश्वत चैत्य
कुल	- 3	शा.चै.

भरतक्षेत्र में कुल - 3 शा.चै.×120 प्रतिमा= 360 प्रतिमा

(2) हिमवंत पर्वत - इसके बीच में पद्मद्रह में - 1 शा.चै.

इस पर 11 कूट है। पूर्व तरफ के प्रथम कूट पर - 1 शा.चै.

कुल - 2 शा.चै.

कुल - 2 शा.चै × 120 प्रतिमाजी = 240 प्रतिमा

(3) हिमवंत क्षेत्र - इस क्षेत्र के मध्य में 1 वृत्त वैताढ्य पर - 1 शा.चै.

रोहिता एवं रोहितांशा 2 नदियों के प्रपात कुण्ड में - 2 शा.चै.

कुल - 3 शा.चै.

कुल-3 शा.चै. × 120 = 360 प्रतिमा

(4) महाहिमवंत पर्वत - बीच में महापद्मद्रह में - 1 शा.चै.

इस पर 8 कूट है। पूर्व तरफ के प्रथम कूट पर - 1 शा.चै.

कुल - 2 शा.चै.

कुल - 2 शा.चै. × 120 = 240 प्रतिमा

(5) हरिवर्ष क्षेत्र - इस क्षेत्र के बीच में 1 वृत्त-वैताढ्य पर - 1 शा.चै.

हरिकांता-हरिसलिला नदी के दो प्रपात कुण्ड में - 2 शा.चै.

कुल - 3 शा.चै.

कुल - शा.चै. × 120 = 360 प्रतिमा

(6) निषध पर्वत - मध्य में तिगिच्छिद्रह में - 1 शा.चै.

इसके 9 कूट है। पूर्व तरफ के प्रथम कूट पर - 1 शा.चै.

कुल - 2 शा.चै.

कुल - 2 शा.चै. × 120 = 240 प्रतिमा

(7) महाविदेह क्षेत्र - इस क्षेत्र के पाँच भाग है। (1) मेरु पर्वत (2) देव कुरु (3) उत्तर कुरु (4) पूर्व महाविदेह (5) पश्चिम महाविदेह

(1) मेरु पर्वत - मेरु पर्वत की तलेटी में भद्रशाल वन है।

उसकी चार दिशा में - 4 शाश्वत चैत्य

तलेटी में ही 4 दिशा एवं 4 विदिशा में 8 करिकूट पर - 8 शा.चै.

नंदनवन की चार दिशा में - 4 शा.चै.

	सोमनस वन की चार दिशा में	- 4	शा.चै.
	पाण्डुक वन की चार दिशा में	- 4	शा.चै.
	पाण्डुक वन के ऊपर चूलिका में	- 1	शा.चै.
		कुल - 25	शा.चै.

कुल 25 शा.चै. ×120 = 3000 प्रतिमाजी

(2) देवकुरु	- सीतोदा कुण्ड में	- 1	शा.चै.
	सीतोदा कुण्ड के पश्चिम भाग में	- 1	शा.चै.
	2 गजदंत के ऊपर	- 2	शा.चै.
	पाँच बड़े द्रह (सरोवर) में	- 5	शा.चै.
	5 सरोवर के दोनों किनारे 100 कंचनगिरि पर	- 100	शा.चै.
	शाल्मली वृक्ष-इसकी पीठिका पर - 1 उसके चारों तरफ आठ छोटे वृक्ष पर - 8 उसके भी चारों तरफ 108 छोटे वृक्ष पर - 108	- 117	शा.चै.
	दो गजदंत के पास चित्र एवं विचित्र दो पर्वत पर	- 2	शा.चै.
		कुल - 228	शा.चै.

कुल 228 शा.चै.×120=27360 प्रतिमाजी

(3) उत्तरकुरु	- सीता कुण्ड में	- 1	शा.चै.
	सीता नदी के पश्चिम भाग में	- 1	शा.चै.
	2 गजदंत के ऊपर	- 2	शा.चै.
	पाँच बड़ें द्रह (सरोवर) में	- 5	शा.चै.
	5 सरोवर के दोनों किनारे 100 कंचनगिरि पर	- 100	शा.चै.
	जम्बू वृक्ष - मूल पीठिका पर - 1 उसके चारों तरफ आठ छोटे वृक्ष पर - 8 उसके भी चारों तरफ 108 छोटे वृक्ष पर - 108	- 117	शा.चै.
	दो गजदंत के पास यमक एवं समक दो पर्वत पर	- 2	शा.चै.
		कुल - 228	शा.चै.

कुल 228 शा.चै.×120=27360 प्रतिमाजी

(4) पूर्व महाविदेह मेरु पर्वत के पूर्व में 16 विजय है।

प्रत्येक विजय में 2 नदी के प्रपात कुण्ड एवं

वैताढ्य पर्वत के कूट पर 1-1 शा.चैत्य है। अत: 16×3 - 48 शा.चैत्य

8 वक्षस्कार के 9 शिखर है। इनके प्रथम शिखरों पर - 8 शा.चैत्य

6 अन्तर्नदी में - 6 शा.चैत्य

कुल - 62 शा.चैत्य

कुल 62 शा.चैत्य ×120 = 7440 प्रतिमाजी

(5) पश्चिम महाविदेह – पूर्व विदेह के समान पश्चिम विदेह में भी कुल - 62 शा.चैत्य

कुल 62 शा.चैत्य ×120 = 7440 प्रतिमाजी

(8) नीलवंत पर्वत – इसके केशरी द्रह पर - 1 शा.चैत्य

एवं कूट पर - 1 शा.चैत्य

कुल - 2 शा.चैत्य

कुल 2 शा.चैत्य×120 = 240 प्रतिमाजी

(9) रम्यक क्षेत्र – नरकांता नारीकांता दो नदी के प्रपात कुण्ड में - 2 शा.चैत्य

वृत्त वैताढ्य पर - 1 शा.चैत्य

कुल - 3 शा.चैत्य

कुल 3 शा.चैत्य × 120 = 360 प्रतिमाजी

(10) रुक्मि पर्वत इसके महापुंडरीक द्रह पर - 1 शा.चैत्य

कूट पर - 1 शा.चैत्य

कुल - 2 शा.चैत्य

कुल - 2 शा.चैत्य×120 = 240 प्रतिमाजी

(11) हैरण्यवंत क्षेत्र रुप्यकुला एवं सुवर्णकुला नदी के प्रपात कुण्ड पर - 2 शा.चैत्य

वृत्त वैताढ्य पर - 1 शा.चैत्य

कुल - 3 शा.चैत्य

कुल - 3 शा.चैत्य×120 = 360 प्रतिमाजी

(१२) शिखरी पर्वत	इसके पुंडरिक द्रह पर		- 1 शा.चैत्य
	तथा कूट पर		- 1 शा.चैत्य
		कुल	- 2 शा.चैत्य
	कुल - 2 शा.चैत्य×120= 240 प्रतिमाजी		
(१३) ऐरावत क्षेत्र	इसके रक्ता-रक्तवती नदी के प्रपात कुण्ड में		- 2 शा.चैत्य
	वैताढ्य पर्वत के कूट पर		- 1 शा.चैत्य
		कुल	- 3 शा.चैत्य
	कुल - 3 शा.चैत्य ×120 = 360 प्रतिमाजी		

संक्षेप में महाविदेह सिवाय	6 क्षेत्रों में - 3 शा.चैत्य = 6×3		- 18 शा.चैत्य
	6 कुल गिरि पर्वत पर - 2 शा.चैत्य = 6×2		- 12 शा.चैत्य
महाविदेह क्षेत्र में	देवकुरु में		- 228 शा.चैत्य
	उत्तर कुरु में		- 228 शा.चैत्य
	मेरु पर्वत पर		- 25 शा.चैत्य
	पूर्व विदेह में		- 62 शा.चैत्य
	पश्चिम विदेह में		- 62 शा.चैत्य
		कुल	- 635 शा.चैत्य
	कुल 635×120 = 76200 प्रतिमाजी है।		
	कर्म भूमि में शा.चैत्य		- 155 शा.चैत्य
	अकर्म भूमि में शा.चैत्य		- 468 शा.चैत्य
	6 पर्वत पर		- 12 शा.चैत्य
		कुल	- 635 शा.चैत्य

पर्वत के ऊपर के शा.चैत्य		**नदी के शा. चै.**	
34 दीर्घ वैताढ्य के	- 34	महानदी के कुंड के	- 90
4 वृत्त वैताढ्य के	- 4		
6 कुलधर के	- 6		

16 वक्षस्कार के	- 16	पर्वत एवं नदी सिवाय के शा.चैत्य	
चित्र-विचित्र		शाल्मली वृक्ष के	- 117
यमक-समक के	- 4	जम्बू वृक्ष के	- 117
200 कंचन गिरि के	- 200	सीता सीतोदा कुंड के पास	- 2
मेरु के	- 25	कुरु क्षेत्र के द्रह के	- 10
द्रह	- 6		
गजदंत के	- 4		
कुल	- 299	कुल	- 246

पर्वत के ऊपर कुल शाश्वत चैत्य - 299
महानदी के कुंड के शा.चैत्य - 90
पर्वत सिवाय के शा.चैत्य - 246
कुल शा.चैत्य -635

कब क्या कहना?

1. **जिन मंदिर का शिखर/ध्वजा** : नमो जिणाणं कहना चाहिए।
2. **मंदिर में जितने भी भगवान हो उनको** : नमो जिणाणं कहना चाहिए।
3. **अन्य जैनेत्तर व्यक्ति (Non Jain) मिलने पर** : जय जिनेन्द्र कहना चाहिए।
4. **गुरु महाराज मिलने पर** : सिर झुकाकर मत्थएण वंदामि कहना चाहिए।
5. **रात्री में गुरु भगवंत को** : त्रिकाल वंदन कहना चाहिए।
6. **घर से बाहर जाते समय** : 3 नवकार अवश्य गिनना चाहिए।
7. **अपने द्वारा कोई भूल हो जाने पर** : मिच्छामि दुक्कडम् कहना चाहिए।
8. **गुरु भगवंत जब हमें आज्ञा प्रदान करे तब** : हाँ जी अथवा तहत्ति कहना चाहिए।
9. **गुरु भगवंत से विदा लेते समय** : सुख शाता में रहना, कहना चाहिए।
10. **कोई शाता पूछे तब** : देव-गुरु पसाय, कहना चाहिए।

शास्त्रानुसार अंगुल के तीन प्रकार

1. **प्रमाणांगुल :** श्री ऋषभदेव प्रभु का अंगुल (खुद के अंगुल से उनका देहमान 120 अंगुल था।)
2. **उत्सेधांगुल :** श्री महावीर स्वामी के अंगुल से आधा (वीर प्रभु का देहमान खुद के अंगुल से 84 अंगुल का था।)
3. **आत्मांगुल :** किसी भी काल में किसी भी व्यक्ति के खुद के अंगुल का माप।

शास्त्र में पृथ्वी आदि शाश्वत पदार्थों का जो माप दिया है, वह प्रमाणांगुल से बताया गया है और शरीर आदि की ऊँचाई उत्सेधांगुल से बताने में आयी है। उत्सेधांगुल से प्रमाणांगुल 400 गुना बड़ा है।

उत्सेधांगुल से ऋषभदेव एवं वीर प्रभु की काया : ऋषभदेव प्रभु के 120 अंगुल को उत्सेधांगुल बनाने के लिए 400 से गुणा करना। 120×400=48000। इसे धनुष बनाने के लिए 96 से भाग देना । जिससे 500 धनुष की काया होती है।

वर्तमान कालीन माप की समझ : वर्तमान कालीन अंगुल लगभग उत्सेधांगुल जितना है। इसलिए शाश्वत पदार्थो का वर्तमान कालीन माप निकालने के लिए 400 से गुणना। जिसका गुणन निम्नानुसार है।

शाश्वत पदार्थो का 1 योजन = वर्तमान कालीन 400 योजन

शाश्वत पदार्थो का 4 गाउ = वर्तमान कालीन 1600 गाउ

शाश्वत पदार्थो का 12 कि.मी. = वर्तमान कालीन 4800 कि.मी.

नोट : 1. नाम, पता आदि भरकर ही जवाब लिखना प्रारंभ करें। 2. सभी प्रश्नों के उत्तर, उत्तर पत्र में ही लिखें। 3. उत्तर स्वयं अपनी मेहनत से पुस्तक में से खोज निकालें। 4. अपने श्रावकपणे की रक्षा के लिए नकल मारने की चोरी के पाप से बचें। 5. जवाब साफ-सुथरे अक्षरों में लिखें तथा इसी पुस्तक की फाईनल परीक्षा के समय उत्तर पत्र के साथ संलग्न कर दें।

Q.A रिक्त स्थानों की पूर्ति करें। (Fill in the blanks) :- **12 Marks**

1. संस्कारों के जड़ रूप में ..... का ज्ञान है।
2. अपनी पत्नी के साथ ..... ने 32 वर्ष की भर युवानी में ब्रह्मचर्य व्रत स्वीकार किया।
3. चंद्र को देखकर जैसे चकोर हर्षित होता है, वैसे ही सुनंदा को देखकर ..... पागल हो गया।
4. प्रभु समवसरण में ..... को वंदन करते हैं।
5. नवमें देवलोक में देवों का शरीर ..... हाथ ऊँचा होता है।
6. जीवन रूपी सिक्के का दूसरा पहलु ..... है।
7. 72000 नगर के मालिक ..... होते हैं।
8. परमाधामी देव मरकर ..... मनुष्य के रुप में उत्पन्न होते हैं।
9. नेमिनाथ प्रभु का छद्मस्थ काल ..... दिन का था।
10. भरत क्षेत्र के ..... के मध्य खंड में तीर्थंकर का जन्म होता है।
11. सांपातिक जीवों की रक्षा ..... के उपयोग से होती है।
12. उर्ध्वलोक में मेरुपर्वत ..... योजन है।

Q.B सही उत्तर चुनकर लिखें (Choose the right Answer) :- **12 Marks**

(25½ देश, करिकूट, अनंत, प्रेम, भीमा, असंख्य, 63000, केवलज्ञान, 32000 देश, जन्म, कौएँ, 84, सम्यग्दर्शन, विचार भेद, 80, स्वभाव भेद, वेदिका, क्षमा, हिरण, कर्मभूमि)

1. स्थूलिभद्रजी का नाम ..... चौवीसी तक याद रहेगा।
2. ..... धर्म करने के लिए योग्य क्षेत्र है।
3. एकेन्द्रिय की कायस्थिति ..... उत्सर्पिणी-अवसर्पिणी है।

4. ..... ने मंदिर निर्माण हेतु सात पैसों का दान दिया। (पेथड़, लुणिग, भीमा)
5. क्रोध के आगे ..... दिखाकर तुम दिल जीत सकते हो।
6. ..... देव आगे के 25-25 योजन देखते-देखते भरत क्षेत्र तक आ जाते है।
7. भद्रशाल वन की 8 दिशाओं में ..... है।
8. ..... के बाद ही देवता समवसरण की रचना करते हैं।
9. वाजिंत्रों की मधुर आवाज़ में ..... ने रंग में भंग डाला।
10. नव ग्रैवेयक के एक विमान में ..... चैत्य है।
11. ..... होने के कारण शब्दों में मिठास नहीं आती।
12. सोमनस से भद्रशाल वन ..... योजन नीचे है।

Q.C मुझे पहचानो? Who am I? **12 Marks**

1. मेरा अर्थ है वातावरण की शुद्धि से जीव मात्र का मंगल हो।
2. मैंने अपनी बहू को उसकी माँ की याद दिलाई।
3. सुख मात्र मेरे में ही है।
4. मेरे मध्य भाग में महा-पद्मद्रह है।
5 मैंने आबू पर जिनालय निर्माण के विघ्न निवारण हेतु अट्ठम तप किया था।
6. मैं जीवों की हिंसा करवाने वाला हूँ, जिसे नेमि प्रभु ने भी धिक्कारा है।
7. मैं लाल सोने का बना हूँ।
8. मेरी प्रेरणा से जीव मोक्ष की प्राप्ति के लिए समवसरण में पधारते हैं।
9. मैं गंगा नदी और लवण समुद्र का संगम स्थान हूँ।
10. मैंने अपने देवर को अपने जेठ की अंतिम इच्छा याद दिलाई।
11. मेरे विमान आधी मोसंबी के समान आकार वाले है।
12. पिता की मृत्यु के बाद राजा ने मुझे मंत्री पद दिया।

Q.D सही जोड़ी बनाइयें। (Match the following) :- **10 Marks**

1.	केशरी द्रह	तीर्थंकर नामकर्म
2.	चंदेसु निम्मलयरा	92,59,25,925
3.	गुरुकुल	प्रियमती

4.	मेरु पर्वत	भूमि का समीकरण
5.	अपराजित	25 श्वासोच्छ्वास
6.	ब्रह्मलोक	कल्पोपन्न
7.	दण्डरत्न	25 शाश्वत चैत्य
8.	सामायिक	रुप
9.	आरण	कीर्तिदेवी
10.	अष्टापद	संगीतकला

Q.E प्रश्नों के उत्तर लिखें। Write the answers of the following. **12 Marks**

1. सामायिक में क्या-क्या नहीं करना चाहिए?
2. देवलोक की प्रतिमाजी शाश्वत क्यों होती हैं?
3. मोक्षा ने अपनी सासुमाँ का दिल जीतने के लिए क्या-क्या किया?
4. जगड़ ने अपने पाँच रत्नों का उपयोग कहाँ किया?
5. अकर्मभूमि किसे कहते है?
6. सातों भव में रुपसेन की मृत्यु कैसे हुई?

Q.F अक्षर हमारे उत्तर आपके। Complete the following table. **15 Marks**

1. यक्षदिन्ना के भाई का नाम .....।
2. जयणा के जमाई के छोटे भाई का नाम .....।
3. चक्रवर्ती के एक रत्न का नाम .....।
4. संयुक्त परिवार में ..... सहन करने पर भी हम सुरक्षित है।
5. चक्रवर्ती दीक्षा न ले तो ..... बनते है।
6. नंद राजा ..... की दुर्बुद्धि नहीं जानता था।
7. नृपदेव सिंह के पिताजी का नाम .....
8. तीसरे भव में राजीमती का जीव ..... था।
9. समभुतला के 884 योजन उपर ..... है।
10. सामायिक मंडल में ..... की सुंदर आराधना करवानी चाहिए।

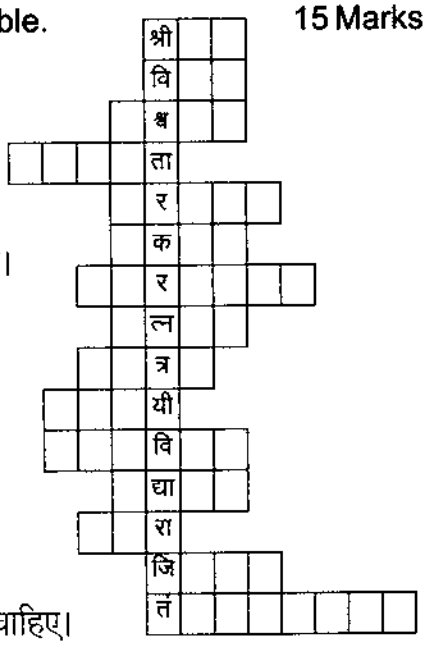

11. चतुर्दश पूर्वधर मुनि का नाम ..... है।

12. दक्षिण श्रेणी के नगरों में ..... राजा राज्य करते है।

13. नरक की एक वेदना .....

14. संप्रति महाराज ने 36000 ..... बंधाव्या।

15. ''उन धर्म चक्रवर्ती को'' यह ..... शब्द का अर्थ है।

सूत्र अर्थ एवं काव्य विभाग :-

Q.G 1. गाथा पूर्ण करे:

1. नीचे दिये गए M.P.S. शब्द में एक गाथा के अक्षर बिखरे हुए है। इन अक्षरों को काना मात्रा लगाकर गाथा तैयार करें। 10 Marks

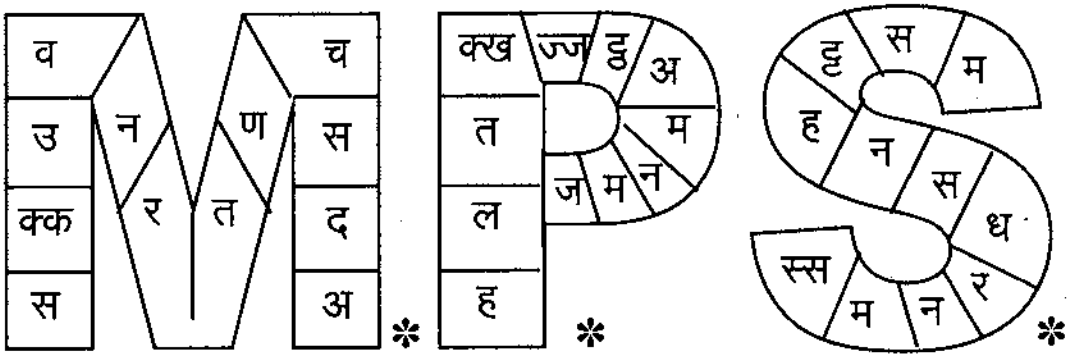

2. सिद्धे भो ..... गण।

3. निस्संकिय ..... अट्ठ।

4. अ..... हो, का ..... वईक्कंतो।

5. तिएहं गुत्तीणं ..... दुक्कड़ं।

2. अर्थ लिखें। write the meaning of the following. 4 Marks

1 अइयारो कओ 2 सव्वस्स वि देवसिअ 3 काय-दुक्कड़ाए 4 तेरहमें अभ्याख्यान।

Q.H सभी के प्रथम अक्षर मिलने पर एक भगवान का नाम बनता है। 5 Marks

1. चक्रवर्ती ..... कूट पर स्वयं का नाम लिखता है।

2. चक्रवर्ती ..... खंड जितता है।

3. ..... से मिला तीर्थंकर पद।

4. 8वें देवलोक के ऊपर ..... का आगमन नहीं होता।

5. स्थापनाचार्यजी पडिलेहनना के 13 बोल में से एक बोल .....

एक भगवान का नाम .....

खंड 2 काव्य विभाग

A. पूर्ण करें। Complete the following. **3 Marks**

1. I प्रभु ..... वंदन करुँ।

2. 2 सवि .....रहुं।

B. चैत्यवंदन पूर्ण करें। Complete the following. **3 Marks**

1. सहु ..... वंदन (या) शरणे ..... जाय।

2. कुशल ..... कुलभाण (या) प्रभु ..... दहीअे।

C. स्तुंति (थोय) पूर्ण करें। Complete the following. **3 Marks**

1. सर्वज्ञ ..... सुखकारिता (या) पास ..... भावेजी।

2. जश ..... जाणे (या) विश्वसेन ..... शुंभकर।

D. स्तवन पूर्ण करें। Complete the following. **3 Marks**

1. अहि ..... हरनारा (या) तु ..... झोल झोल रे।

2. नाथ ..... दुलारा (या) दु:ख ..... अमारी।

E. उत्तर लिखें। Write the Answer of following. **2 Marks**

चैत्यवंदन की विधि लिखों।

खण्ड 3 काव्य विभाग

A. पूर्ण करें। Complete the following. **3 Marks**

1. क्यारे ..... बनुं। 2. कोई ..... हुं बनु

B. चैत्यवंदन पूर्ण करें। Complete the following. **3 Marks**

छ:री ..... सेवे (या) सिद्धारथ ..... गायो।

बीजापुरने ..... पीर (या) दश ..... राजुलनार।

C. स्तुति पूर्ण करें। Complete the following. 3 Marks

1 श्री नेमि ..... उजमाल (या) दान ..... भाविजेजी।

2 अति ..... भासे (या) करुणारस ..... जाणी।

D. स्तवन पूर्ण करें। Complete the following. 3 Marks

1 पशु ..... आणी (या) महावीर ..... मारे।

2 ओगणीस ..... सहकारी (या) झरमर ..... अंग।

E. विधि लिखें। Write the following. 2 Marks

1 तीसरी बार नमुत्थुणं आए वहाँ से देववंदन की विधि पूर्ण करे।

श्री विश्वतारक रत्नत्रयी विद्या राजितं

॥ श्री मोहनखेड़ा तीर्थ मण्डन आदिनाथाय नमः ॥
॥ श्री राजेन्द्र-धन-भूपेन्द्र-यतीन्द्र-विद्याचन्द्र सूरि गुरूभ्यो नमः ॥

त्रिवर्षीय **जैनिज़म कोर्स** खण्ड 2

लेखिका
सा. श्री मणिप्रभाश्रीजी म.सा.

विद्यार्थी का नाम _____ उम्र _____ रोल नं. _____

विद्यार्थी का पता एवं फोन नं. _____

_____ मूल वतन _____

सेंटर का नाम एवं एड्रस _____

Q.A:

1 .....
2 .....
3 .....
4 .....
5 .....
6. .....
7. .....
8. .....
9. .....
10. .....
11. .....
12. .....

Q.B:

1 .....
2 .....
3 .....
4 .....
5 .....
6. .....
7. .....
8. .....
9. .....
10. .....
11. .....
12. .....

Q.C:

1 .....
2 .....
3 .....
4 .....
5 .....
6. .....
7. .....
8. .....
9. .....
10. .....
11. .....
12. .....

Q.D:

1 .....
2 .....
3 .....
4 .....
5 .....
6. .....
7. .....
8. .....
9. .....
10. .....

Q.E:

1 .....

.....

.....

.....

2 .....

.....

.....

.....

3 .....

.....

.....

.....

4 .....

.....

.....

.....

5 .....

.....

.....

.....

6 .....

.....

.....

.....

Q.F:

1 ..... 2 ..... 3 .....

4 ..... 5 ..... 6 .....

7 ..... 8 ..... 9 .....

10 ..... 11 ..... 12 .....

13 ..... 14 ..... 15 .....

Q.G:

1 .....

.....

2 .....

.....

3 .....

.....

4 .....

.....

5 .....

.....

2 1 ..... 2 .....

3 ..... 4 .....

Q.H: 1 ..... 2 ..... 3 .....

4 ..... 5 .....

भगवान का नाम :- .....

खण्ड-2 काव्य विभाग

A. 1.....

.....

2.....

.....

B. 1.....

.....

2.....

.....

C. 1.....

.....

2.....

.....

D. 1.....

.....

2.....

.....

E. .....

.....

.....

खण्ड–3 काव्य विभाग

A. 1.....

.....

2.....

.....

B. 1.....

.....

2.....

.....

C. 1.....

.....

2.....

.....

D. 1.....

.....

2.....

.....

E. .....

.....

.....

TURNING DREAMS IN TO REALITY .... JAINISM IS WORKING ON FOUR LEVELS ...

Physical Level न डॉक्टर, न महंगी दवाईयॉ, न अस्पताल, न जहरीली सुईयाँ
सुन्दर और स्वस्थ शरीर के लिए अपनाईये कुछ जैनिज़म कोर्स के Tips

Mental Level प्राप्त में असंतोष और अप्राप्त की लालसा ही मानव के समस्त दुःखों का कारण है। इन्ही दुःखों को दूर करने का जरीया है। Jainism

Social Level जैनिज़म कोर्स पूर्ण करने पर प्राप्त प्रमाण–पत्र से आप समाज में गौरवपूर्ण स्थान प्राप्त कर सकेंगे।

Spiritual Level जैनिज़म कोर्स की शुभ किरणों से आप अपनी आत्मा के साथ–साथ दूसरी अनेक आत्माओं को भी प्रकाश का प्रशस्त मार्ग दिखाने में समर्थ बनेंगे।

इसलिए विद्यार्थी बनने से ना डरो, ना भागो सिर्फ जागो ... जागो जैनो जागो जैनीज़म कोर्स की ओर भागो ....

जैनिज़म कोर्स की परीक्षा *एक परिचय*

* 15 से 45 वर्ष के श्रावक–श्राविका इसमें भाग ले सकते है।

* विद्यार्थी बनने के इच्छुक पुण्यशाली मुख्य कार्यालय से संपर्क कर अपने नजदीकि सेंटर में प्रवेश प्राप्त कर सकते है।

* जैनिज़म कोर्स के विद्यार्थी बनने के लिए **51रु.** जमा करवाकर प्रवेश फॉर्म एवं प्रथम वर्ष के कोर्स की 3 पुस्तकें प्राप्त करें।

* सेमेस्टर सिस्टम के हिसाब से एक वर्ष में अर्द्धवार्षिक व वार्षिक परीक्षा जनवरी के प्रथम या द्वितीय रविवार एवं जुलाई के प्रथम या द्वितीय रविवार को होगी।

* अर्द्धवार्षिक व वार्षिक परीक्षा के बाद नये विद्यार्थी को प्रवेश दिया जायेगा।

* परीक्षा के समय पुस्तक के साथ संलग्न ओपनबुक उत्तर पुस्तिका को भरकर साथ लाए और मुख्य परीक्षा की उत्तर पुस्तिका के साथ संलग्न कर सेंटर में जमा करवाए।

* कुल 100% मार्क्स में ओपन बुक एक्ज़ाम के 40% मार्क्स एवं मेन एक्ज़ाम के 60% मार्क्स रहेंगे।

* कोर्स Joint करने वाले विद्यार्थी को प्रतिवर्ष प्रमाण पत्र एवं प्रोत्साहन पुरस्कार दिया जायेगा। इसकी विस्तृत जानकारी विद्यार्थी सिलेबस बुक से प्राप्त करें।

प्रतिनिधि कैसे बने ? करण–करावण ने अनुमोदन सरिखा फल निपजाया .....

यदि आप विद्यार्थी बनकर स्वयं कोर्स न कर सके तो अपने AREA में जैनिज़म कोर्स का प्रचार कर जैनिज़म के विद्यार्थी बनाकर उनका प्रतिनिधित्व संभाले। प्रतिनिधि बनने के इच्छुक पुण्यशाली मुख्य कार्यालय से प्रतिनिधि केटलॉग प्राप्त कर प्रतिनिधि के सारे कर्तव्य को समझ कर तद्नुसार विद्यार्थी बनावे एवं विद्यार्थी FORM & BOOK आदि प्रवेश सामग्री मुख्य कार्यालय से प्राप्त करें।

हजारो AWARDS है इस आसमां के नीचे, जरा एक नजर इधर भी गौर कीजिए ....

जिस CENTER पर 50 STUDENTS परीक्षा देंगे उस प्रतिनिधि को SILVER MEDAL से, जिस CENTER पर100 STUDENTS परीक्षा देंगे उस प्रतिनिधि को GOLDEN MEDAL से, जिस CENTER पर 150 STUDENTS एवं अधिक परीक्षा देंगे। उस प्रतिनिधि को DIAMOND MEDAL से श्री विश्वतारक रत्नत्रयी विद्या राजितं द्वारा संचालित शिविरों में विशेष अतिथि के रुप में बुलाकर इन MEDALS द्वारा विभूषित किया जायेगा .....।

परीक्षा संबंधी समस्त जानकारी मुख्य कार्यालय : 022 65500387 से प्राप्त करें।

Title Song

(राग : अगर तुम मिल जाओ ...)

जैनिज़म कोर्स को विश्व-व्यापी बनायेंगे,
प्रभु वीर के संदेशों से जिनशासन महकायेंगे ...
हम है महावीर के अनुयायी, चाहे दिगम्बर, श्वेताम्बर,
जिन-शासन पर कष्ट पड़े तो, कर देंगे जीवन न्यौछावर,
गच्छ के भेद भले ही हो, मन में हम भेद न लायेंगे...
जैनिज़म कोर्स .....।।1।।

जैन धर्म के आचारों को, जैनाचार से जानेंगे,
विधि जयणा बहुमान से, प्रभु भक्ति करेंगे,
देव-गुरु धर्म को जानकर, समकित का दीप प्रगटायेंगे ...
जैनिज़म कोर्स .....।।2।।

वस्त्रों में हो शील मर्यादा, यहीं नारी की सुंदरता,
लज्जा विनय संस्कार बिना, झूठी है सारी पवित्रता,
सीता, मयणा के आदर्श से, **Indian culture** अपनायेंगे ...
जैनिज़म कोर्स .....।।3।।

प्रभु की वाणी के मर्म को, सूत्र अर्थों से जानेंगे,
स्तुति स्तवन के गान से, प्रभु की भक्ति करेंगे,
प्रभु की क्षायिक प्रीति से, सिद्ध स्वरुप प्रगटायेंगे ...
जैनिज़म कोर्स .....।।4।।

जिनके रग-रग में प्रभु भक्ति का, है सिंधु लहराता,
कष्ट आये लाखों फिर भी, जिन्होंने धर्म न छोड़ा अपना,
वस्तुपाल जैसे महापुरुषों की, राह को हम अपनायेंगे ...
जैनिज़म कोर्स .....।।5।।

नरक की वेदना को जान, पापों को छोड़ देंगे हम,
रात्री भोजन, जमीनकंद और बासी न खायेंगे हम,
चौद राजलोक के ज्ञान से, जीवों के प्रति मैत्री लायेंगे ...
जैनिज़म कोर्स .....।।6।।

जैनिज़म में मणिप्रभाश्रीजी, ऐसी भावना करते है,
पद्मनंदी संग समर्पित परिवार, प्रभु से प्रार्थना करते है,
अर्हम् मैया की कृपा पाकर, ज्ञान की ज्योति जलायेंगे
जैनिज़म कोर्स को विश्व व्यापी बनायेंगे .....।।7।।

Print @ KANCHAN Rajgarh-mohankheda (M.P.)
09893005032, 09926277871